केवल विभागीय उपयोग के लिए

दण्ड न्यायालयों, पुलिस एवं जेल अधिकारियों को उच्चतम न्यायालय के निर्देश

निदेशक की सदभावनाओं सहित

[illegible]

न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान

उत्तर प्रदेश

1/19, विश्वास खण्ड-1, गोमती नगर, लखनऊ-16

प्रस्तावना

संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को प्राण और देह की स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 39-क में समान न्याय व मुफ्त कानूनी सहायता के संबंध में शासन के सभी अंगों को निर्देश दिये गये है। संविधान के इन प्रावधानों व संयुक्त राष्ट्र महासंघ द्वारा अनुमोदित मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में माननीय उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर अपने निर्णयों में इन अधिकारों की रक्षा के हेतु व इन प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से न्यायिक, पुलिस व जेल अधिकारियों के लिए विभिन्न निर्देश दिये है। उन्होंने कुछ निर्देश राज्य सरकारों के लिये भी दिये है। यही नही, उन्होंने कई फैसलों में इस बात पर भी बल दिया है कि उनके इन निर्देशों का अधिक से अधिक परिचालन भी किया जाय ताकि सम्बन्धित अधिकारीगण उन्हें सदैव याद रखें व क्षुब्ध व्यक्ति भी अपने अधिकारों का प्रवर्तन करा सकें।

सभी सम्बन्धित अधिकारियों, न्यायालयों व सरकारों की सहायता के लिए व उन्हें अपनी संबंधित जिम्मेदारियों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने हेतु इस संस्थान ने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्धित निर्णयों को पुस्तकाकार में संकलित किया है। अधिकतर फैसलों का हिन्दी अनुवाद भारत सरकार द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका से लिया गया है। केवल दो-तीन ऐसे फैसले है, जो उस पत्रिका में नही छपे थे, उनका अनुवाद इस संस्थान द्वारा कराया गया है। यह अनुवाद सहायक निदेशक श्री प्रद्युम्न कुमार ने किया है और उसे डा॰ मोती बाबू ने पुनरीक्षित किया है।

जिन फैसलों को उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका से लिया गया है, उनकी छपाई पत्रिका के पृष्ठों से ही फोटो बनवाकर करायी गयी है। इस प्रकार उस पत्रिका में दी गयी पृष्ठ संख्या भी पृष्ठ के ऊपर छपी

रहने दी गयी है ताकि सन्दर्भ में सहायता मिले। पुस्तिका की अपनी पृष्ठ संख्या पृष्ठ के नीचे छापी गयी है। विषय सूची में पुस्तिका की पृष्ठ संख्याएं दी गयी हैं। प्रत्येक फैसले के सन्दर्भ हेतु विभिन्न अन्य विधि पत्रिकाओं का भी उल्लेख किया गया है।

आशा है संस्थान द्वारा चलाये जा रहे अनवरत प्रशिक्षण कार्यक्रम की श्रृंखला में यह पुस्तिका भी उपयोगी साबित होगी।

(कैलाश नाथ गोयल)
अवैतनिक निदेशक
न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान

निर्णय-सूची

निर्णय	पृष्ठ संख्या
हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (i)	1
हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (ii)	21
हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (iii)	30
हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (iv)	51
हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (v)	63
सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन	68
किशोर सिंह रविन्द्र देव बनाम राजस्थान राज्य	136
कादरा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य (i)	154
कादरा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य (ii)	160
खत्री बनाम बिहार राज्य	166
सन्तबीर बनाम बिहार राज्य	189
सुखदास बनाम अरुणाचल प्रदेश	196
शीला बरसे बनाम भारत संघ (i)	208
शीला बरसे बनाम भारत संघ (ii)	218
रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य	228

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)

–धारा 27, 29 और 61–(सपठित पंजाब प्रिजन मैनुअल, पैरा 41, 47, 49 और 53)–एकांत परिरोध–ऐसा परिरोध केवल न्यायाधीश के न्यायिक आदेश पर उसके द्वारा जांच-पड़ताल करके ही किया जाना चाहिए।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन — 68

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–धारा 29 –धारा 27 देखिये –68

–धारा 46 और राजस्थान प्रिजन रूल्स का नियम 1 (एक) 46 और 79–इनका निर्वचन संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुकूल किया जाना चाहिए।

किशोर सिंह रविन्द्र देव बनाम राजस्थान राज्य — 136

–धारा 56 –संविधान अनुच्छेद 21 देखिये –154

–धारा 61 –धारा 27 देखिए – 68

–धारा 79 –धारा 46 देखिये –136

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

–धारा 57 –गिरफ्तारी के 24 घण्टे के भीतर गिरफ्तार किए गये व्यक्ति को न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने सम्बन्धी अपेक्षा का ध्यानपूर्वक अनुपालन किया जाना चाहिए।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य — 166

(पुलिस के लिए)

–धारा 167– विचारणाधीन बन्दी को क्षति पहुंचाना –क्षतियों के प्रति निर्देश करते हुए पुलिस भारसाधक अधिकारी द्वारा अग्रेषण रिपोर्ट भेजी जाना–न्यायिक मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह इस विषय की खोज करे और यह उचित नहीं

होगा कि वह यन्त्रवत् प्रतिप्रेषण के आदेश पर हस्ताक्षर कर दे भले ही अभियुक्त अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष स्वयं पेश नहीं किया जाता है।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 166

–धारा 167(2) परन्तुक–विचारणाधीन कैदियों के 15 दिन से अधिक की कालावधि के लिए निरोध को प्राधिकृत करते समय मजिस्ट्रेट को यन्त्रवत् कार्य नहीं करना चाहिए बल्कि अपना यह समाधान भली प्रकार कर लेना चाहिए कि उन्हें समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किए जाने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान है।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 21

–धारा 167(2) परन्तुक–यदि विचारणाधीन कैदी, यथास्थिति, 90 या 60 दिन तक कारावास में रह चुका हो, तो उसे और आगे न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश देने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणाधीन कैदी को यह बता दिया जाना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित होने का हकदार है।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 51

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–धारा 167(2) परन्तुक (क), धारा 309(2), 437(5), 439 (2), 331, 442 (1) और 444–उक्त धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर–जमानत समय बीतने, बाद में प्रतिभू के मुक्त किये जाने, आरोप-पत्र फाइल किये जाने अथवा धारा 309 (2) के अधीन अभिरक्षा में भेजे जाने से निर्वापित नहीं होती-वह तब तक प्रभावी रहती है जब तक कि धारा 437(5) और 439 (2) के अधीन वह रद्द न कर दी जाए।

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य 228

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–धारा 167 (5)–यदि समन मामले में, अन्वेषण अभियुक्त को गिरफ्तार किये जाने की तारीख से छह मास के

भीतर पूरा न हुआ हो और मजिस्ट्रेट का यह समाधान न करा दिया गया हो कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के बाद भी अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है तो अभियुक्त को उन्मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना — 21

–धारा 211–संविधान अनुच्छेद-32 देखिये –228

–धारा 216–संविधान अनुच्छेद–32 देखिये –228

–धारा 309–अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाना चाहिए, जिससे कि उन्हें ऐसे मामलों में जिनमें उनकी जमानत मंजूर नहीं की जाती, अनावश्यक रूप से अधिक समय तक कारावास में न रहना पड़े।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना — 30

–धारा 309 (2)–धारा 167 (2) देखिये–228

–धारा 331–धारा 167 (2) देखिये –228

–धारा 436 और 437–विचारणाधीन कैदी के लम्बी अवधि से विचारण के बिना ही कारावास में बन्द होने पर तथा अन्य समुचित मामलों में अभियुक्त को वित्तीय बाध्यता के बिना ही स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य — 1

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–धारा 437–धारा 431 देखिये – 1

–धारा 437(5)–धारा 167(2) देखिये –228

–धारा 439(2)–धारा 167(2) देखिए –228

–धारा 441 व 442–संविधान अनुच्छेद 136 देखिए-228

–धारा 442 (1)–धारा 167 (2) देखिए –228

–धारा 444–धारा 167(2) देखिये –228

–धारा 468(2) –जिन विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध इस धारा में उपबन्धित परिसीमाकाल के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किए जाते उन्हें तत्काल छोड़ दिया जाना

चाहिए, क्योंकि उनका और आगे निरोध विधि–विरुद्ध और अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होगा ।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 21

बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60)

–धारा 1 व 5–संविधान अनुच्छेद–39 (च) देखिये–208

–धारा 5–संविधान अनुच्छेद–21 देखिये –218

संविधान, 1950

–अनुच्छेद 1, 2, 14 और 19–मानविक गरिमा–बंदीगृहों में, भी उक्त मानविक गरिमा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए-बंदी को एकान्त परिरोध तथा बेड़ियों में सर्वथा जकड़कर रखा जाना–ऐसा कदम केवल सुरक्षा कारणोंवश सर्वथा असाधारण मामलों में ही उठाया जाना चाहिए ।

किशोर सिंह रविन्द्र देव बनाम राजस्थान राज्य 136

(कारागार अधिकारियों के लिए)

–अनुच्छेद –2– अनुच्छेद –1 देखिये –136

–अनुच्छेद 14–विधि के समक्ष समता–मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना–प्रस्तुत मामले का विचारण प्रश्नगत न्यायालय को सुरक्षा के हित में एवं अभियुक्त की सुविधा के लिए सौंपा गया था–इससे विधि सम्मत शासन का और विधि के समक्ष समता के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता ।

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य 228

–अनुच्छेद–14–अनुच्छेद–1 देखिये –136

–अनुच्छेद–19–अनुच्छेद–1 देखिए –136

–अनुच्छेद 19(1)(घ)–अबाध रूप से विचरण का अधिकार–कारागार में परिरुद्ध कैदी को अनियमित रूप से एकान्त परिरोध में रखा जाना–ऐसे परिरोध की अयुक्तियुक्तता –कैदी का कारागार में विचरण का अधिकार–जहाँ पर कारागार अधिकारियों द्वारा किसी कैदी के विचरण में अयुक्तियुक्त रूप से बन्धन लगाए जाते हैं वहां ऐसे बन्धन अवैध हैं और संविधान द्वारा प्रदत्त संचरण के अधिकार का उल्लंघन

करते हैं।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 68

(कारागार अधिकारियों के लिए)

–अनुच्छेद 19, 21, और 39–क–पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए विचारणाधीन बन्दियों को अन्धा बनाया जाना–राज्य द्वारा ऐसे अन्धे बनाए गए विचारणाधीन बन्दियों की चिकित्सा को सुनिश्चित बनाए जाने के लिए उन्हें नई दिल्ली भेजे जाने का आदेश दिया जाना–यह आदेश उन बन्दियों के विषय में होना जिन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया था–राज्य द्वारा यह निर्देश भी दिया जाना कि प्रत्येक प्रतिप्रेषण के समय ऐसे विचारणाधीन बन्दियों को विधिक अभ्यावेदन करने की सुविधा प्रदान की जाए–सम्बद्ध जिला न्यायाधीश तथा प्रतिप्रेषण मजिस्ट्रेट को भी यह निर्देश दिया जाना कि वे जानकारी दें कि वे निःशुल्क विधिक सहायता के हकदार हैं–चिकित्सा के लिए भेजे गये बन्दियों को नकद राशि सम्बन्धी संदाय के लिए आदेश।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 166

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–अनुच्छेद–21–अनुच्छेद–19 देखिए –166

–अनुच्छेद 21–इस अनुच्छेद के अनुपालन के लिए यह आवश्यक है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत होनी चाहिए और यदि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अभियुक्त व्यक्ति के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित नहीं करती तो उसे "युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत" नहीं समझा जा सकता।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य 1

–अनुच्छेद 21–यदि विचारणाधीन कैदियों को उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाता है, जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था तो उससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव,

पृष्ठ संख्या

बिहार राज्य, पटना 30

—अनुच्छेद 21—विचारणाधीन कैदियों को उस कालावधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाना जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 51

—अनुच्छेद 21—जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, उससे भी अधिक समय तक कारावास में उन्हें रखा जाना संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 63

—अनुच्छेद 21—जीवन का अधिकार—कारागार में परिरुद्ध कैदी के साथ दुर्व्यवहार किया जाना तथा शारीरिक क्षति पहुंचाया जाना—उच्चतम न्यायालय को ऐसे क्रियाकलाप के बारे में रिपोर्ट—न्यायालय ऐसी दशा में संवैधानिक उपबन्धों को दृष्टि में रखते हुए हस्तक्षेप कर सकता है।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 68

(कारागार अधिकारियों के लिए)

—अनुच्छेद 21—शीघ्र विचारण—अनुच्छेद 21 के अधीन अभियुक्त का मूल अधिकार।

खात्रा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य 154

—अनुच्छेद 21—विचाराधीन बन्दियों को राज्य के खर्चे पर साधारणतः सक्षम वकील उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

खात्रा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य 154

—अनुच्छेद 21 —कारागार अधिनियम (1894 का 9) धारा 56—विचाराधीन बन्दी—न तो उन्हें पैरों में बेड़ी लगाकर रखा जा सकता है और न तो उन्हें कारागार की दीवारों के बाहर काम करने को कहा जा सकता है।

खात्रा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य 154

पृष्ठ संख्या

–अनुच्छेद 21–दाण्डिक विचारणों में किसी गरीब अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सहायता दिए जाने का मूल अधिकार–किसी अभियुक्त द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन करने में असफल रहने पर उसे उसके निःशुल्क विधिक सहायता पाने के मूल अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता–सामाजिक न्याय की अपेक्षा के अनुसार मजिस्ट्रेट ऐसे प्रत्येक अभियुक्त को, जो दोषसिद्धि के आधार पर कारावास के लिए दायी है, निःशुल्क विधिक सहायता पाने के मूल अधिकार के बारे में सूचित करने और यह पूछने के लिए आबद्ध है कि क्या वह राज्य के खर्च पर विधिक प्रतिनिधित्व करवाना चाहता है–अभियुक्त द्वारा जब तक इनकार न किया जाए, विधिक सहायता देने में असफलता से विचारण दूषित हो जाएगा।

सुखदास बनाम अरुणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र 196

(दण्ड न्यायालयों के लिए)

–अनुच्छेद 21–निर्धन अथवा कृपण अभियुक्त व्यक्तियों को, जो कि वकील की सहायता प्राप्त करने में असमर्थ हों, निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार होना–राज्य सांविधानिक दृष्टि से इस हेतु आबद्ध है कि वह ऐसी सहायता न केवल विचारण के प्रक्रम पर प्रदान करे बल्कि उस समय भी जब बन्दियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है अथवा उन्हें कारागार में प्रतिप्रेषित किया जाता है–ऐसे अधिकार से इस आधार पर वित्तीय निर्बन्धनों अथवा प्रशासनिक असमर्थता से प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता और न ही इस आधार पर कि अभियुक्त ने इसकी मांग नहीं की थी–मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे अधिकार के बारे में अभियुक्तों को सूचित करें।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 166

(राज्य सरकार एवं दण्ड न्यायालयों के लिए)

–अनुच्छेद 21–पुलिस द्वारा उत्पीड़न (थर्ड डिग्री मैथड्स) के उपयोग की भर्त्सना–पुलिस द्वारा की जाने वाली क्रूरताओं के प्रति सरकार का ध्यान आकृष्ट किया जाना–अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित मानव जीवन के महत्व पर जोर

पृष्ठ संख्या

दिया जाना ।

किशोर सिंह रविन्द्र देव बनाम राजस्थान राज्य (राज्य सरकार के लिए) 136

-अनुच्छेद 21–तेज गति से अन्वेषण और विचारण का अधिकार–अभियुक्तों के खिलाफ राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आरोप-अत्यन्त नाजुक और राजनीतिक प्रकृति की जटिल समस्याओं के मामले में अन्वेषण–अभियुक्त अपने अधिकारों का प्रावधान करने में समर्थ फिर भी इससे पहले विलम्ब के लिए आपत्ति न की जानी–मामले के तथ्यों में विचारण में विलम्ब अयुक्तियुक्त और अऋजु नहीं है–अतः अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं हुआ है ।

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य 228

–अनुच्छेद 21, 22–बन्दी आपराधिक पागल के रूप में 16 वर्ष से अधिक बिना किसी औचित्य के निरोध, यद्यपि वह पूर्णतः स्वस्थचित्त और उन्मोचित होने योग्य हो चुका था–राज्य सरकार के प्रशासन की तीव्र आलोचना–निदेश दिया गया की याची को तत्काल जेल से छोड़ा जाय ।

सन्तबीर बनाम बिहार राज्य 189

–अनुच्छेद 21 और 32–शीघ्र विचारण का अधिकार ऐसे अधिकार से वंचित होने (Denial) की दशा में उपचार ।

शीघ्र विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित (enshrined) जीवन व वैयक्तिक स्वतंत्रता की प्रत्याभूति में अन्तर्निहित एक मूल अधिकार है । कोई अभियुक्त, जिसको शीघ्र विचारण के इस अधिकार से वंचित किया गया है हकदार है कि वह ऐसे अधिकार को प्रवर्तित (enforce) कराने के उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय की शरण ले और उच्चतम न्यायालय अपने संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में राज्य सरकारों और अन्य समुचित प्राधिकारियों को आवश्यक निदेश देने की शक्ति रखता है जिससे कि अभियुक्त को यह अधिकार प्राप्त हो ।

कादा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य 160

–अनुच्छेद 21 और 39–क अकिंचन और निर्धन

अभियुक्तों को निःशुल्क विधिक सेवा प्रदान करने की बात अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित है और अनुच्छेद 39–क में इसके लिए स्पष्ट निर्देश है ।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 30

(राज्य सरकार के लिए)

–अनुच्छेद 21 और 39–क–ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था किए जाने का अधिकार है जो निर्धनता या सम्पर्क वर्जित स्थिति के कारण किसी विधि व्यवसायी की सेवा प्राप्त नहीं कर सकता ।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 51

(राज्य सरकार के लिए)

–अनुच्छेद 21 और 39 (च) [नवठित बालक अधिनियम, 1960 की धारा 5] तेजी से विचारण का अधिकार–बालकों को जेल में बन्द न रखकर सुधार–गृह आदि में रखना चाहिए–उनके द्वारा अपराध की सूचना मिलने पर अन्वेषण 3 मास के भीतर और विचारण आरोप–पत्र प्राप्त होने से 6 मास के भीतर पूरा होना चाहिए–अन्यथा उनके विरुद्ध मामला समाप्त समझा जाएगा ।

शीला बर्से और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 218

(राज्य सरकार के लिए)

–अनुच्छेद–22–अनुच्छेद–21–देखिये –189

–अनुच्छेद 32–उच्चतम न्यायालय अभियुक्तों के शीघ्रता से विचारण करने के अधिकार के लिए न्यायालय आदि की पर्याप्त व्यवस्था करने का निर्देश दे सकता है ।

हुसैन आरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना 30

(राज्य सरकार के लिए)

–अनुच्छेद–32–अनुच्छेद–21 देखिये –160

–अनुच्छेद–32–बन्दी प्रत्यक्षीकरण–कारागार में निरुद्ध बन्दी को कारागार कर्मचारियों द्वारा शारीरिक यंत्रणा

पृष्ठ संख्या

पहुंचाया जाना तथा मुलाकातियों से पैसे लेकर मिलने दिया जाना–बन्दी को एकान्त में अनियमित रूप से परिरुद्ध रखा जाना–ऐसी दशा में उच्चतम न्यायालय अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी कर सकता है।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 68

–अनुच्छेद 32–(सवंठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 211 और 216)–दाण्डिक याचिका-आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य था या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए उच्चतम न्यायालय अपने आपको विचारण न्यायालय में नहीं बदल सकता।

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य 228

–अनुच्छेद–39–क–अनुच्छेद–19–देखिये –166

–अनुच्छेद–39–क–अनुच्छेद–21–देखिये –30

–अनुच्छेद–39–क–अनुच्छेद–21–देखिये –51

–अनुच्छेद 39 (च) सवंठित बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60 की धारा 1 और 5)–लोक हितार्थ मुकदमे–16 वर्ष से कम आयु के बालकों का जेलों में निरुद्ध किया जाना–समाज–सेवक द्वारा उन्हें मुक्त किए जाने की ईप्सा की जानी–यद्यपि अनेक राज्यों में 1960 जैसे फायदाप्रद विधान पारित कर दिए गए है, तथापि उन्हें प्रवृत्त नहीं किया गया है–अतः उच्चतम न्यायालय ने ऐसे फायदाप्रद कानूनों को तुरंत प्रवृत्त किए जाने तथा उनके संबंध में प्रशासनिक कारवाई किए जाने का निर्देश इसलिए दिया क्योंकि बालक राष्ट्रीय संपत्ति होते है और उनके व्यक्तित्व का विकास सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य है।

शीला बरसे और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 208

–अनुच्छेद–39 (च)–अनुच्छेद 21–देखिये –218

–अनुच्छेद 136 (सवंठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 441, धारा 442)–उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप–प्रस्तुत मामले में जमानत मंजूर करने वाले आदेश निष्पादन न करने में असफल रहने पर अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

रघुबीर सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य 228

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	के लिए	पढ़े
6	अन्तिम	झसकोरने	झकझोरने
7	छठी	के	के
	अन्तिम	(1959)	(19 9)
34	छठी	=	65=
	बीसवीं	409	407
	बीसवीं	35	32
41	अन्तिम	404	407
	अन्तिम	35	32
71	नीचे से छठी	(1979) (1979)	(1978) (1978)
72	चौदहवीं	(1965) एस०	(1965) 3 एस०
94	अन्तिम	(1979)	(1978)
95	नीचे से दूसरी	(1979)	(1978)
100	अन्तिम	आर0 248	सी0 248
152	नीचे से दूसरी	(1980) 4 एस०	(1980) 3 एस०
153	नीचे से दूसरी	(1980) 4 एस०	(1980) 3 एस०
154	नीचे से नवीं	1984	1894
210	दसवीं	व्यतीय	व्यतीत
238	ग्यारहवीं	(1979) 5 एस०	(1979) 3 एस०
247	नीचे से तीसरी	(1979) 5 एस०	(1979) 3 एस०
258	अन्तिम	(197) 3 उम०	(1975) 3 उम०
		नि० प० 2184	नि० प० 1284
	अन्तिम	आर० 1977 एस०	आर० 1975 एस०

(1980) 2 उम० नि० प० 743 :
AIR 1979 SC 1360 :
(1980) 1 SCC 81 :

हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य

(Hussainara Khatoon and Others
v.
Home Secretary, State of Bihar)

(12 फरवरी, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, आर० एस० पाठक और ए० डी० कोशल)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 436 और 437—विचारणाधीन कैदी के, लम्बी अवधि से विचारण के बिना ही, कारावास में बन्द होने पर तथा अन्य समुचित मामलों में अभियुक्त को वित्तीय बाध्यता के बिना ही स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

संविधान, 1950—इस अनुच्छेद 21—अनुच्छेद के अनुपालन के लिए यह आवश्यक है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत होनी चाहिए और यदि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अभियुक्त व्यक्ति के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित नहीं करती, तो उसे 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' नहीं समझा जा सकता।

बिहार-राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे दस वर्ष तक की विभिन्न कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे और उनका विचारण अभी आरम्भ नहीं हुआ था। इनमें से कुछ पर ऐसे तुच्छ अपराधों का आरोप था, जिनके साबित होने पर भी उन्हें केवल कुछ महीनों या एक-दो वर्ष तक के कारावास का ही दण्ड दिया जा सकता था, किन्तु निर्धनता के कारण वे अपनी उन्मुक्ति के लिए जमानत देने में असमर्थ थे और इसलिए इतनी लम्बी कालावधियों से जेल में पड़े हुए थे। इस सम्बन्ध

में समाचारपत्रों में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया था। इस पर उच्चतम न्यायालय ने 5 फरवरी, 1979 को कुछ व्यक्तियों को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित किए जाने का आदेश दिया था। उस आदेश के लिए कारण बताते हुए,

अभिनिर्धारित—(न्यायाधिपति पी०एन० भगवती और ए० डी० कौशल के मतानुसार) इस समय विद्यमान विधि के अधीन भी न्यायालयों को उस पुरानी संकल्पना को छोड़ देना चाहिए जिसके अधीन विचारण से पूर्व उन्मुक्ति का आदेश केवल प्रतिभुओं सहित जमानत दिए जाने पर ही जाता है। यह संकल्पना पुरानी हो गई है और अनुभव से यह दर्शित होता है कि इससे भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक हुई है। अब विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के सम्बन्ध में हमारे न्यायालयों के विनिश्चय विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के विषय में नए दृष्टिकोण के अनुरूप होने चाहिएं जिनका सामाजिक रूप से विकसित देशों और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में विकास हुआ है। यदि न्यायालय का, उसके समक्ष प्रस्तुत की गई जानकारी के आधार पर, यह समाधान हो जाए कि अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है और उसके फरार होने की संभाव्यता नहीं है, तो वह अभियुक्त को आसानी से उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ सकता है। यह अवधारित करने के लिए कि अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है या नहीं, जो उसे भागने से रोकेगा, न्यायालय को अभियुक्त के सम्बन्ध में इन बातों का ध्यान रखना चाहिए : समुदाय में उसके निवास की अवधि, उसके नियोजन की हैसियत, इतिहास और उसकी वित्तीय स्थिति, उसके पारिवारिक बन्धन और नातेदारियां, उसकी ख्याति, चरित्र और मानसिक स्थिति; उसके पूर्ववर्ती दाण्डिक अभिलेख जिसमें मुचलके या जमानत पर उसकी पहले उन्मुक्ति का अभिलेख सम्मिलित है; समुदाय के ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों से परिचय जो उसकी विश्वसनीयता को प्रमाणित करते हैं, आरोपित अपराध की प्रकृति और दोषसिद्धि की प्रकट सम्भाव्यता और सम्भावित दण्ड, उस हद तक जिस हद तक ये बातें अनुपस्थिति के जोखिम से सुसंगत हैं; और कोई अन्य बात जिससे समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध उपदर्शित होते हैं या जिसका उपस्थित होने में जानबूझकर किए गए व्यतिक्रम की जोखिम पर प्रभाव पड़ता है। यदि सुसंगत बातों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध हैं और अनुपस्थित की कोई सारवान जोखिम नहीं है, तो

अभियुक्त को यथासम्भव उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ा जा सकता है। निस्सन्देह, यदि न्यायालयों को ऐसे तथ्यों की जानकारी दी जाती है जिनसे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त की अवस्था और पृष्ठभूमि, उसके पूर्ववर्ती अभिलेख और अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण के समय उसकी अनुपस्थिति की सारवान जोखिम हो सकती है, उदाहरण के लिए, यदि अभियुक्त कुख्यात दुराचारी है या पुराना अपराधी है या अपराध गम्भीर है (ये उदाहरण केवल दृष्टान्तों के रूप में हैं), तो न्यायालय अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त न करे और प्रतिभुओं सहित जमानत का आग्रह करे। किन्तु अधिकतर मामलों में पारिवारिक बन्धन और नातेदारी, समुदाय में बद्धमूल स्थान, नियोजन की हैसियत आदि विचार न्यायालय को अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करने के लिए और विशेष रूप से ऐसे मामलों में प्रभावी हो सकते हैं जिनमें अपराध गम्भीर नहीं है और अभियुक्त निर्धन है या समुदाय के कमजोर वर्ग का है, स्वीय बन्धपत्र को, यथासम्भव, अधिमानता दी जाए। किन्तु अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करते समय भी न्यायालय के लिए यह पूर्वावधानी आवश्यक है कि उसके द्वारा नियत की गई बन्धपत्र की रकम केवल आरोप की प्रकृति पर आधारित नहीं होनी चाहिए। बन्धपत्र की रकम के सम्बन्ध में विनिश्चय अभियुक्त की वित्तीय स्थिति और उसके फरार होने की सम्भाव्यता पर आधारित व्यष्टिपरक विनिश्चय होना चाहिए। बन्धपत्र की रकम का अवधारण इन सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और उसे आरोप की प्रकृति की अनुसूची के अनुसार यन्त्रवत् नियत नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा अभियुक्त के लिए स्वीय बन्धपत्र निष्पादित करके भी उन्मुक्ति प्राप्त करना कठिन हो जाएगा। (पैरा 4)

अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को यह मूल अधिकार प्रदान करता है कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा और उस अनुच्छेद की अपेक्षा के अनुपालन के लिए यही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा प्रक्रिया जैसी कोई बात विहित की जानी चाहिए, बल्कि प्रक्रिया युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को ऐसी प्रक्रिया के अधीन उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है जो युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं है, तो ऐसा वंचन अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार

का अतिक्रमण करने वाला होगा और वह ऐसे मूल अधिकार को प्रवृत्त करने और अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने का हकदार होगा। स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए विधि द्वारा विहित प्रक्रिया तब तक युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं हो सकती जब तक कि उस प्रक्रिया में ऐसे व्यक्ति के अपराध के अवधारण के लिए शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित न हो। ऐसी प्रक्रिया को, जिसमें युक्तियुक्त शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित नहीं किया गया है, युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत नहीं समझा जा सकता और वह अनुच्छेद 21 के विरुद्ध होगी। इसलिए, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि शीघ्रता से विचारण, और शीघ्रता से विचारण से हमारा अभिप्राय युक्तियुक्त रूप से सत्वर विचारण है, अनुच्छेद 21 में विद्यमान प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अभिन्न और आवश्यक अंग है। (पैरा 5)

न्यायाधिपति आर० एस० पाठक के मतानुसार—यह निर्विवाद है कि विचारण किए जाने से पूर्व विचारणाधीन लोगों का कारावास में अनावश्यक रूप से लम्बी कालावधि के लिए अवरोध मानवीय स्वाधीनता के सभी सभ्य विचारों के प्रतिकूल है। व्यक्तिगत स्वाधीनता की अर्थपूर्ण संकल्पना के अनुसार, जो सभ्य विधिक व्यवस्था का मूल आधार है, विचारण की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्तियों की ओर न्याय प्रशासन का ध्यान जाने से पूर्व कारावास की लम्बी कालावधि स्पष्ट रूप से दुख की बात समझी जाएगी। (पैरा 7)

दण्ड प्रक्रिया संहिता में ऐसा स्पष्ट उपबन्ध नहीं है जो समुचित मामलों में विचारणाधीन कैदी को प्रतिभुओं के बिना और किसी वित्तीय बाध्यता के बिना उसके बन्धपत्र के आधार पर उन्मुक्त करने में समर्थ बनाता हो। स्पष्ट उपबन्ध की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय कारागारों में इस समय जो विचारणाधीन हजारों कैदी है, उनमें से अनेक ऐसे है जो विचारण से पूर्व अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने में इसलिए असमर्थ है कि वे अपनी उपस्थिति के लिए पर्याप्त वित्तीय गारण्टी पेश नहीं कर सकते। जहां उनको कारावास में जारी रखने के लिए एकमात्र कारण यही है, वहां दैयजनक भेदभाव का परिवाद करने का उचित आधार हो सकता है। (पैरा 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 3 उम०नि० प० 278 = [1978] 4 एस० सी० सी० 47 : मोतीराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (Moti Ram and Others *V.* State of Madhya Pradesh).	8
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243 = [1978] 2 एस० सी० आर० 621 : मेनका गांधी बनाम भारत संघ (Maneka Gandhi *V.* Union of India)	2,5

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57.

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एल० एन० झा और यू०पी० सिंह

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती—

बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) के रिट के लिए इस पिटीशन से बिहार राज्य में न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में निन्दनीय स्थिति प्रकट होती है। बहुत बड़ी संख्या में पुरुष और स्त्री, जिनमें बच्चे भी सम्मिलित हैं, अनेक वर्षों से न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने की प्रतीक्षा में कारावास में पड़े हुए हैं। उनमें से कुछ पर तुच्छ अपराधों का आरोप है, जिनसे, साबित होने पर, कुछ महीनों या सम्भवतः एक या दो वर्ष से अधिक दण्ड अपेक्षित नहीं होगा, फिर भी ये दुर्भाग्यशाली उपेक्षित मानव तीन से दस वर्ष तक की कालावधियों से जेल में हैं और अपनी स्वतन्त्रता से वंचित हैं और उनका विचारण

प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। यह ऐसी न्यायिक पद्धति के लिए बड़े शर्म की बात है जो विचारण के बिना इतनी लम्बी कालावधियों के लिए पुरुषों और स्त्रियों के कारावास की अनुज्ञा देती है। हम बड़े जोर-शोर से मानव अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन के बारे में बातें करते हैं। हम मूल स्वतन्त्रताओं के अनुरक्षण और संरक्षण के बारे में वाक्-पीनी और पटुतापूर्ण बातें करते हैं। किन्तु क्या हम इन अनाम व्यक्तियों को मानवीय अधिकारों से वंचित नहीं कर रहे हैं जो वर्षों से उन अपराधों के लिए जेलों में सड़ रहे हैं जिनके विषय में सम्भवतः यह अन्तिम निष्कर्ष हो सकता है कि उन्होंने वे अपराध नहीं किए हैं ? क्या हम इन उपेक्षित और असहाय मानवों की मूल स्वतन्त्रताओं को भी नहीं छीन रहे हैं जिन्हें वर्षों तक के लिए कारावास और अपमान के जीवन में धकेल दिया गया है ? क्या तत्पर विचारण और निरोध से स्वतन्त्रता मानव अधिकारों और मूल स्वतन्त्रताओं का अंग नहीं है ? इन दुर्भाग्यशाली पुरुषों और स्त्रियों में से अनेक को यह याद भी नहीं होगा कि वे जेल में कब और किस अपराध के लिए आए थे। वे वर्षों से मानवता से वंचित हैं—वे मात्र टिकट संख्या रह गए हैं। अब समय आ गया है कि जनसाधारण की अन्तरात्मा जागृत हो और सरकार तथा न्यायपालिका को यह अनुभव होने लगे कि हमारे कारावास की अंधियारी कोठरियों में बड़ी संख्या में ऐसे पुरुष और स्त्री हैं जो धैर्यपूर्वक या सम्भवतः अधीरता से, किन्तु निरर्थक रूप से, न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो उनकी पहुंच और पकड़ से पूर्णतया बाहर की वस्तु है। उनके लिए विधि अन्याय का साधन बन गई है और वे विधिक और न्याय पद्धति की क्रूरता के असहाय और निराश शिकार हैं। अब वह समय आ गया है जब विधिक और न्याय पद्धति का पुनर्निर्माण और पुनर्गठन करना होगा ताकि ऐसा अन्याय न हो और हमारे नवीन प्रजातन्त्र के स्वच्छ और अन्यथा दमकते हुए चेहरे को विकृत न करे।

2. यद्यपि हमने बिहार राज्य को दो सप्ताह पहले सूचना जारी की थी, तथापि बड़े दुर्भाग्य की बात है कि 5 फरवरी, 1979 को राज्य की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है और इसलिए हमें इस प्रक्रम पर इस आधार पर अग्रसर होना होगा कि तारीख 8 और 9 जनवरी, 1979 वाले इण्डियन एक्सप्रेस के संस्करणों में विद्यमान अभिकथन, जो रिट पिटीशन में दिए गए हैं, सही हैं। समाचार पत्र की इन कतरनों में दी गई जानकारी बहुत दुखद है और यह समाजोन्मुख विधि व्यवसायी या न्यायाधीश की अन्तरात्मा को झकझोरने और उसके मन को विचलित करने के लिए पर्याप्त है। जिन

विचारणाधीन बंदियों के नाम समाचारपत्रों की कतरनों में दिए गए हैं, उनमें से कुछ 5, 7 या 9 वर्षों तक और उनमें से कुछ तो 10 वर्ष से भी अधिक की कालावधि से जेल में रह चुके हैं, और उनका विचारण आरम्भ नहीं हुआ है। इन भूली हुई आत्माओं का ऐसी न्याय व्यवस्था में क्या विश्वास हो सकता है जो उन्हें इतने वर्षों तक विचारण से वंचित रखकर कारावास में रखती है' इसलिए नहीं कि वे अपराधी हैं, बल्कि इसलिए कि वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते और न्यायालयों के पास उनके विचारण का समय नहीं है। यह न्याय का उपहास है कि अनेक निर्धन अभियुक्त 'क्षुद्र भारतीय क्षुद्र अपराधों के लिए लम्बे समय तक काल कोठरियों में बन्द हैं, क्योंकि जमानत देना उनके तुच्छ साधनों से परे है और विचारण आरम्भ नहीं हुए हैं और यदि होते हैं, तो भी कभी पूरे नहीं होते। इस न्यायालय द्वारा मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] में किए गए अनुच्छेद 21 के गतिशील निर्वचन के पश्चात् इस बात में संदेह नहीं हो सकता कि जो प्रक्रिया इतनी बड़ी संख्या में लोगों को विचारण के बिना इतने लम्बे समय के लिए कारावास में रखती है, उसे युक्तियुक्त, न्यायसंगत या उचित नहीं समझा जा सकता जिससे कि वह उस अनुच्छेद की अपेक्षाओं के अनुरूप हो जाए। इसलिए यह आवश्यक है कि विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित और न्यायालयों द्वारा लागू की जाने वाली विधि में विचारण से पूर्व निरोध के प्रति दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना चाहिए और उसके द्वारा युक्तियुक्त, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया सुनिश्चित होनी चाहिए जिसका मेनका गांधी[1] वाले मामले के पश्चात् सर्जनात्मक अर्थ है।

3. हमारी विधि और न्यायव्यवस्था द्वारा निर्धन व्यक्तियों को अनेक वर्षों तक विचारण से पूर्व निरोध में रखकर निरन्तर न्याय से वंचित किए जाने का एक कारण हमारी बहुत ही असंतोषजनक जमानत-पद्धति है। इसमें सम्पत्ति की ओर उन्मुख दृष्टिकोण का दोष है जो इस गलत उपधारणा पर अग्रसर प्रतीत होता है कि न्याय से बचकर भागने के विरुद्ध एकमात्र अवरोध धन सम्बन्धी हानि है। दण्ड प्रक्रिया संहिता में, उसके पुनः अधिनियम न के पश्चात् भी, वही पुरातन दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है जो पूर्ववर्ती संहिता में पिछली शताब्दी के अंतिम भाग में अपनाया गया था और जहां अभियुक्त को उसके स्वीय बंधपत्र पर उन्मोचित किया जाना होता है, वहां भी इसमें

[1] [1978] 2 उम० नि० प० 243—(1978) 2 एस० सी० आर० 621.

इस बात पर जोर दिया गया है कि बंधपत्र में धन विषयक बाध्यता होनी चाहिए जिसमें अभियुक्त से उस दशा में कुछ धनराशि का संदाय करने की अपेक्षा होनी चाहिए जब वह विचारण के समय उपस्थित न हो। इसके अतिरिक्त, मानो कि यह निर्धन व्यक्तियों के लिए पर्याप्त अवरोधक नहीं था, न्यायालय यंत्रवत् और -सामान्य प्रक्रिया के रूप में इस बात पर जोर देते हैं कि अभियुक्त को ऐसे प्रतिभू पेश करने चाहिएं जो उसके लिए जमानत दे सकें और इन प्रतिभुओं को भी अभियुक्त के आरोप का उत्तर देने के लिए उपस्थित होने में असफल होने की दशा में जमानत की रकम का संदाय कर सकने की अपनी शोध्य क्षमता सिद्ध करनी पड़ती है। जमानत की यह पद्धति निर्धन लोगों के लिए बड़ी कठोर है और केवल धनी लोग ही अपने को जमानत पर छुड़वाकर इसका फायदा उठा सकते हैं। निर्धन लोग प्रतिभुओं के बिना भी जमानत देने में कठिनाई अनुभव करते हैं, क्योंकि न्यायालयों द्वारा नियत जमानत की रकम प्रायः इतनी अधिक होती है कि अधिकतर मामलों में निर्धन लोग पुलिस या मजिस्ट्रेट को जमानत की रकम के लिए अपनी शोध्य क्षमता के प्रति संतुष्ट करने में असमर्थ होते हैं और यदि जमानत प्रतिभुओं सहित है, जैसा कि सामान्यतया होता है, तो निर्धन लोगों के लिए पर्याप्त संख्या में शोध्यक्षम व्यक्ति प्रतिभू बनाने के लिए जुटा पाना लगभग असम्भव होता है। परिणाम यह है कि या तो उनका पुलिस और राजस्व अधिकारियों द्वारा या दलालों और वृत्तिक प्रतिभुओं द्वारा शोषण किया जाता है और कभी-कभी उन्हें अपने को छुड़ाने के लिए कर्ज भी लेना पड़ता है या अपने को छुड़ाने में असमर्थ होने पर उन्हें तब तक जेल में रहना पड़ता है जब तक कि न्यायालय उनके मामलों का विचारण आरम्भ न कर दे जिसके गम्भीर परिणाम होते हैं, अर्थात् (1) उनके निर्दोष होने की उपधारणा होने पर भी उन्हें जेल के जीवन का मानसिक और शारीरिक एकाकीपन सहन करना पड़ता है, (2) उन्हें अपना प्रतिवाद तैयार करने में योगदान देने से रोका जाता है और (3) वे अपने काम धंधे से, यदि कोई है तो, वंचित हो जाते हैं और अपना और अपने परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण करने के लिए काम करने के अवसर से वंचित हो जाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उनके निरोध का भार प्रायः सदैव परिवार के निर्दोष सदस्यों के लिए भारी पड़ता है। इसी कारण निर्धन लोगों को हमारी विधि और न्याय व्यवस्था दमनकारी और उनके बहुत अधिक विरुद्ध प्रतीत होती है और उनमें विवशता और निराशा की भावना भर जाती है, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति धनी लोगों से बहुत अधिक असमान है। हममें से एक,

न्यायाधिपति भगवती की अध्यक्षता में गुजरात सरकार द्वारा नियुक्त विधिक सहायता समिति ने इस स्पष्टतः गम्भीर असमानता पर निम्नलिखित शब्दों में जोर दिया है—

"जमानत पद्धति, जो आजकल दाण्डिक न्यायालयों में अपनाई जाती है, अत्यन्त असंतोषजनक है और इसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। पहली बात तो यह है कि अभियुक्त की अनुपस्थिति के जोखिम को सही-सही धन की मात्रा में परिवर्तित करना वास्तव में असम्भव है और इसकी इस मूल प्रतिपादना की विद्यमानता भी संदेहपूर्ण है कि अभियुक्त को भागने से रोकने के लिए वित्तीय हानि की जोखिम आवश्यक है। अनेक ऐसी बातें हैं जो अभियुक्त को न्याय से भागने से रोकती हैं और वित्तीय हानि की जोखिम उनमें से एक है और वह भी प्रमुख नहीं है। संयुक्त राज्य अमरीका में सफल जमानत परियोजनाओं, जैसे मैनहट्टन जमानत परियोजना, डी० सी० जमानत परियोजना, का प्रयोग यह दर्शित करता है कि धन विषयक जमानत के बिना भी बड़ी संख्या में मामलों में विचारण के समय अभियुक्त की उपस्थिति को सुनिश्चित करना सम्भव हुआ है। इसके अतिरिक्त, जमानत पद्धति निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेद करती है, क्योंकि निर्धन लोग अपनी निर्धनता के कारण जमानत नहीं दे सकते, जबकि धनी लोग अन्यथा समान स्थिति में होने पर, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं, क्योंकि वे जमानत दे सकते हैं। यह विभेद तब भी उत्पन्न होता है जब मजिस्ट्रेट द्वारा नियत की गई जमानत की रकम अधिक नहीं भी होती है, क्योंकि वे लोग जिन्हें दाण्डिक मामलों में न्यायालयों के समक्ष लाया जाता है, बड़ी संख्या में इतने निर्धन होते हैं कि उनके लिए छोटी रकम की जमानत देना भी कठिन होता है।"

गुजरात वाली समिति ने यह भी बताया है कि किसी प्रकार जमानत की रकम सुसंगत बातों, जैसे अभियुक्त की व्यक्तिगत वित्तीय परिस्थिति और विचारण से पूर्व उसके भागने की सम्भाव्यता को ध्यान में रखे बिना आरोप की प्रकृति के प्रति निर्देश से नियत करना कठोर और दमनकारी है और वह निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेदकारी होता है—

"जमानत पद्धति की विभेदकारी प्रकृति उस यंत्रवत् ढंग के कारण और भी अधिक तीव्र हो जाती है जिससे उसे सामान्यतः

प्रवर्तित किया जाता है। निस्संदेह यह सही है कि सैद्धान्तिक रूप से मजिस्ट्रेट को जमानत की रकम नियत करने का व्यापक विवेकाधिकार है, किन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि जमानत की रकम प्रायः सदैव अपराध की गम्भीरता पर आधारित होती है। यह, आरोप की प्रकृति से सम्बन्धित अनुसूची के अनुसार नियत की जाती है। इस सम्भाव्यता को कि अभियुक्त अपने विचारण से पूर्व भागने का प्रयास करेगा, या उसकी व्यक्तिगत वित्तीय परिस्थितियों को जो उस दशा में सर्वाधिक सुसंगत बातें प्रतीत होती हैं जब जमानत का प्रयोजन विचारण के समय अभियुक्त की उपस्थिति को सुनिश्चित करना होता है, महत्व नहीं दिया जाता। इन बातों की अवहेलना करने और केवल अपराध की गम्भीरता का ध्यान रखते हुए जमानत की रकम यन्त्रवत् नियत करने का परिणाम निर्धन लोगों के विरुद्ध विभेद होता है जो जमानत देने की हैसियत के सम्बन्ध में उस स्थिति में नहीं होते जिसमें धनी लोग होते हैं। धनी और निर्धन की जमानत देने की भिन्न हैसियत की अवहेलना करके और उनसे समान व्यवहार करके न्यायालय धनी और निर्धन के बीच असमानता पैदा करते हैं। धनी व्यक्ति, जिस पर उन्हीं परिस्थितियों में उसी अपराध का आरोप होता है, अपने को छुड़वा लेता है जबकि निर्धन व्यक्ति अपनी निर्धनता के कारण ऐसा करने में असमर्थ होता है। आजकल अपनाई जाने वाली जमानत-पद्धति में ये कुछ प्रमुख त्रुटियां हैं।"

राष्ट्रपति लिण्डन बी० जॉन्सन ने भी 'बेल रिफार्म्स ऐक्ट, 1966' पर हस्ताक्षर करते समय यही दुःख प्रकट किया था—

"आज, हम अपनी दाण्डिक न्याय पद्धति में महत्वपूर्ण विकास को मान्यता दे रहे हैं, जो जमानत व्यवस्था का सुधार है। यह व्यवस्था ज्युडिशियरी ऐक्ट, 1789 से प्राचीन, अन्यायोचित और वस्तुतः अपरीक्षित बनी रही है।

जमानत का मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तारी के पश्चात् छोड़ दिया जाएगा, तो वह विचारण के लिए वापस आ जाएगा।

वर्तमान व्यवस्था में यह प्रयोजन कैसे पूरा होता है? साधन-युक्त प्रतिवादी जमानत का संदाय कर सकता है। वह अपनी

स्वतन्त्रता खरीद सकता है, किन्तु निर्धन प्रतिवादी उसकी कीमत नहीं चुका सकता। वह विचारण से पूर्व सप्ताहों, महीनों और सम्भवत: वर्षों तक जेल में सड़ता रहता है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि वह अपराधी है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि उस पर कोई दण्ड अधिरोपित करदिया गया है।

वह जेल में इसलिए नहीं रहता कि विचारण से पूर्व उसके भाग जाने की अधिक सम्भाव्यता है।

वह केवल इस कारण जेल में रहता है कि वह निर्धन है......"

आजकल प्रचलित जमानत-व्यवस्था निर्धन लोगों के लिए भारी कठिनाई का कारण बन गई है और यदि हम वास्तव में निर्धनता के दुष्प्रभाव को समाप्त करना और न्याय प्रशासन में निर्धन लोगों के लिए उचित और न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित करना चाहते हैं, तो यह अनिवार्य है कि जमानत व्यवस्था में आमूल सुधार किया जाए जिससे निर्धन लोगों के लिए न्याय के हित को हानि पहुंचाए बिना विचारण से पूर्व उन्मुक्ति उतनी ही आसानी से प्राप्त करना सम्भव हो जाए जितनी आसानी से धनी लोग करते हैं।

4. हमारी संसद् के लिए यह अनुभव करने का अब समय आ गया है कि न्याय से भागने के विरुद्ध एकमात्र अवरोध पैसे की हानि का जोखिम नहीं है, अपितु कुछ अन्य बातें भी हैं जो भागने के विरुद्ध समान अवरोधों का कार्य करती हैं। हमारा देश समाजवादी गणतन्त्र है जिसमें हमारे संविधान का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक न्याय है और संसद् के लिए यह विचार करना उचित होगा कि क्या यह हमारे संविधान की विशेषता के अधिक अनुरूप नहीं होगा कि वित्तीय हानि की जोखिम के बजाय अन्य सुसंगत बातें, जैसे पारिवारिक सम्बन्ध, समुदाय में स्थान, कार्य की सुरक्षा, स्थायी संगठनों की सदस्यता आदि, जमानत मंजूर करने में निर्णायक बातें होनी चाहिए और समुचित मामलों में अभियुक्त को वित्तीय दायित्व के बिना उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ दिया जाना चाहिए। निस्सन्देह ऐसे मामले में दाण्डिक विधि में संशोधन करके यह उपबन्ध करना आवश्यक हो सकता है कि यदि अभियुक्त जानबूझकर स्वीय बन्धपत्र में दिए गए वचन का अनुपालन करके उपस्थित होने में असफल रहता है, तो वह दाण्डिक कार्यवाही के दायित्वाधीन होगा। किन्तु इस विद्यमान विधि के अधीन भी न्यायालयों को

उस पुरानी संकल्पना को छोड़ देना चाहिए जिसके अधीन विचारण से पूर्व उन्मुक्ति का आदेश केवल प्रतिभूओं सहित जमानत दिए जाने पर ही दिया जाता है। यह संकल्पना पुरानी हो गई है और अनुभव से यह दर्शित होता है कि इससे भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक हुई है। अब विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के सम्बन्ध में हमारे न्यायालयों के विनिश्चय विचारण से पूर्व उन्मुक्ति के विषय में नये दृष्टिकोण के अनुरूप होने चाहिए जिनका सामाजिक रूप से विकसित देशों और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में विकास हुआ है। यदि न्यायालय का, उसके समक्ष प्रस्तुत की गई जानकारी के आधार पर, यह समाधान हो जाए कि अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है और उसके फरार होने की सम्भाव्यता नहीं है, तो वह अभियुक्त को आसानी से उसके स्वीय बन्ध-पत्र पर छोड़ सकता है। यह अवधारित करने के लिए अभियुक्त का समुदाय में दृढ़ स्थान है या नहीं, जो उसे भागने से रोकेगा, न्यायालय को अभियुक्त के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. समुदाय में उसके निवास की अवधि,

2. उसके नियोजन की हैसियत, इतिवृत्त और उसकी वित्तीय स्थिति,

3. उसके पारिवारिक बन्धन और नातेदारियां,

4. उसकी ख्याति, चरित्र और मानसिक स्थिति,

5. उसके पूर्ववर्ती दाण्डिक अभिलेख जिनमें मुचलके या जमानत पर उसकी पहले उन्मुक्ति का अभिलेख सम्मिलित है,

6. समुदाय के ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों से परिचय जो उसकी विश्वसनीयता को प्रमाणित करते हैं,

7. आरोपित अपराध की प्रकृति और दोषसिद्धि की प्रकट सम्भाव्यता और सम्भावित दण्ड, उस हद तक जिस हद तक ये बातें अनुपस्थिति के जोखिम से सुसंगत हैं, और

8. कोई अन्य बात जिससे समुदाय के साथ अभियुक्त के सम्बन्ध उपदर्शित होते हैं या उपस्थित होने में जानबूझकर किए गए व्यतिक्रम के जोखिम पर जिसका प्रभाव पड़ता है।

यदि सुसंगत बातों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि अभियुक्त के सम्बन्ध समुदाय के साथ हैं और अनुपस्थिति

का कोई सारवान् जोखिम नहीं है, तो अभियुक्त को यथासम्भव उसके स्वीय बन्धपत्र पर छोड़ा जा सकता है। निस्सन्देह, यदि न्यायालयों को ऐसे तथ्यों की जानकारी दी जाती है जिनसे यह दर्शित होता है कि अभियुक्त की अवस्था और पृष्ठभूमि, उसके पूर्ववर्ती अभिलेख और अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण के समय उसकी अनुपस्थिति का सारवान् जोखिम हो सकता है, उदाहरण के लिए, यदि अभियुक्त कुख्यात दुराचारी है या पक्का अपराधी है या अपराध गम्भीर है (ये उदाहरण केवल दृष्टान्तों के रूप में हैं), तो न्यायालय अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मुक्त न करे और प्रतिभुओं सहित जमानत का आग्रह करे। किन्तु अधिकतर मामलों में पारिवारिक बन्धन और नातेदारी, समुदाय में भद्र स्थान, नियोजन की हैसियत आदि विचार न्यायालय को अभियुक्त को उसके स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करने के लिए और विशेष रूप से ऐसे मामलों में अधिभावी हो सकते हैं जिनमें अपराध गम्भीर नहीं है और अभियुक्त निर्धन है या समुदाय के कमजोर वर्ग का है, स्वीय बन्ध पत्र को, यथासम्भव, अधिमानता दी जा सकती है। किन्तु अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित करते समय भी न्यायालय के लिए यह पूर्वावधानी आवश्यक है कि उसके द्वारा नियत की गई बन्धपत्र की रकम केवल आरोप की प्रकृति पर आधारित नहीं होनी चाहिए। बन्धपत्र की रकम के सम्बन्ध में विनिश्चय अभियुक्त की वित्तीय स्थिति और उसके फरार होने की सम्भाव्यता पर आधारित व्यष्टि-परक विनिश्चय होना चाहिए। बन्धनपत्र की रकम का अवधारण इन सुसंगत बातों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए और उसे आरोप की प्रकृति की अनुसूची के अनुसार यन्त्रवत् नियत नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा अभियुक्त के लिए स्वीय बन्धपत्र निष्पादित करके भी उन्मुक्ति प्राप्त करना कठिन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त जब अभियुक्त को स्वीय बन्धपत्र पर उन्मोचित किया जाता है, तो उस दशा में यह बात बहुत कठोर और दमनकारी होगी जब उससे न्यायालय का यह समाधान कराने की अपेक्षा की जाती है—और हमने जो कुछ न्यायालय के सम्बन्ध में कहा है, वह जमानत मंजूर करते समय पुलिस के सम्बन्ध में भी समान रूप से लागू होगा—कि वह उस दशा में बन्धपत्र की रकम का संदाय करने के लिए पर्याप्त रूप से शोधनक्षम है जब वह विचारण के समय उपस्थित होने में असफल रहता है और उसके परिणामस्वरूप बन्धपत्र का समपहरण कर लिया जाता है। अभियुक्त की शोधनक्षमता के विषय में जांच उसके लिये भारी दिक्कत का साधन बन सकती है और प्रायः उसके परिणाम जमानत

से इनकार और स्वतन्त्रता से वंचित किया जाना हो सकता है और इसलिए स्वीय बन्धपत्र की स्वीकृति की शर्त के रूप में इसका आग्रह नहीं किया जाना चाहिये। हमें इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि विद्यमान विधि के अधीन भी जमानत की व्यवस्था को उस रीति से लागू किया जाता है जो हमने इस निर्णय में उपदर्शित की है तो इससे निर्धन लोगों की कठिनाई दूर करने में बहुत सहायता मिलेगी और इससे उनको विचारण से पूर्व के कारावास से उन्मुक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। इसी कारण से हमने निदेश दिया है कि उन विचारणाधीन कैदियों को, जिनके नाम इण्डियन एक्सप्रेस के दो संस्करणों में दिए गए हैं, उनके वैयक्तिक बन्धपत्र पर तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए। सामान्यतः हम यही कहते कि उनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले स्वीय बन्धपत्र वित्तीय बाध्यता सहित होने चाहिए', किन्तु हमने असाधारण उपाय के रूप में यह निदेश दिया है कि स्वीय बन्धपत्र पर कोई वित्तीय बाध्यता होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें पता चला है कि ये सभी व्यक्ति अनेक वर्षों से विचारण के बिना जेल में रहे हैं और कुछ मामलों में ऐसे अपराधों के लिए जेल में रहे हैं जिनके लिए सभी सम्भाव्यताओं में दण्ड उनके अवरोध की अवधि से कम होता और इसके अतिरिक्त हमारे द्वारा किया जाने वाला आदेश केवल अन्तरिम आदेश था। मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के कारण ऐसी असामान्य कार्यवाही करनी पड़ी।

5. विधिक और न्यायिक व्यवस्था में एक और त्रुटि भी है जो विचारणाधीन कैदियों को न्याय के इस स्पष्ट इनकार के लिए उत्तरदायी है और वह मामलों के निपटारे में कुख्यात विलम्ब है। यह विधिक और न्यायिक व्यवस्था के लिए बहुत लज्जा की बात है कि अभियुक्त का विचारण अनेक वर्षों तक आरम्भ ही नहीं होता। विचारण आरम्भ करने में एक वर्ष का विलम्ब भी बहुत बुरा है जब विलम्ब 3, 5, 7 या 10 वर्ष तक की लम्बी अवधि का होता है, तो इससे अधिक वह बुरा और क्या हो सकता है। दाण्डिक न्याय का सार शीघ्रता से विचारण करना है और इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि विचारण में विलम्ब करना स्वयं न्याय से इनकार करना है। यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में शीघ्रता से विचारण संविधान द्वारा गारन्टीकृत अधिकारों में से एक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के छठे संशोधन में यह उपबन्ध है कि—

> "सभी दाण्डिक अभियोजनों में अभियुक्त को शीघ्रता से और सार्वजनिक रूप से विचारण का अधिकार होगा।"

इसी प्रकार यूरोपियन कनवेंन्शन ऑन ह्यूमन राइट्स के अनुच्छेद 3 में भी यह उपबन्ध है कि—

> "गिरफ्तार और निरुद्ध किया गया प्रत्येक व्यक्ति युक्तियुक्त समय के भीतर विचारण का या विचारण लम्बित रहने के दौरान उन्मुक्त किए जाने का हकदार होगा ।"

हमारे विचार से, यद्यपि हमारे संविधान में शीघ्रता से विचारण को विनिर्दिष्ट रूप से मूल अधिकारों में प्रगणित नहीं किया गया है, तथापि यह इस न्यायालय द्वारा मेनका गान्धी बनाम भारत संघ[1] में यथा-निर्वचित अनुच्छेद 21 के व्यापक अर्थ और भाषा में अन्तर्निहित है । हमने उस मामले में अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को यह मूल अधिकार प्रदान करता है कि उसे उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर, अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा और उस अनुच्छेद की अपेक्षा के अनुपालन के लिए यही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा प्रक्रिया जैसी कोई बात विहित की जानी चाहिए बल्कि प्रक्रिया "युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत" होनी चाहिए । यदि किसी व्यक्ति को ऐसी प्रक्रिया के अधीन उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है जो "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं है तो ऐसा बंधन अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला होगा और वह ऐसे मूल अधिकार को प्रवृत्त करने और अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने का हकदार होगा । स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए विधि द्वारा विहित प्रक्रिया तब तक "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं हो सकती जब तक कि उस प्रक्रिया में ऐसे व्यक्ति के अपराध के अवधारण के लिए शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित न हो । ऐसी प्रक्रिया को, जिसमें युक्तियुक्त शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित नहीं किया गया है, "युक्तियुक्त, उचित या न्यायसंगत" नहीं समझा जा सकता और वह अनुच्छेद 21 के विरुद्ध होगी । इसलिए, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि शीघ्रता से विचारण, और शीघ्रता से विचारण से हमारा अभिप्राय युक्तियुक्त रूप से तत्पर विचारण है, अनुच्छेद 21 में विद्यमान प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अभिन्न और आवश्यक अंग है । तथापि, प्रश्न यह है कि उस दशा में परिणाम क्या होगा जब अपराध के अभियुक्त

---

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 2 एस० सी० आर० 621.

व्यक्ति को शीघ्रता से विचारण से वंचित किया जाता है और अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण करके लम्बे समय तक विलम्बित विचारण के परिणामस्वरूप कारावास द्वारा उसे उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है । क्या इस आधार पर कि असम्यक् रूप से लम्बी कालावधि के पश्चात् उसका विचारण किया जाना और ऐसे विचारण के पश्चात् उसकी दोषसिद्ध करनी अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण है, वह अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप से बिना शर्त मुक्त होकर उन्मोचित किए जाने का हकदार होगा ? इस प्रश्न पर हमें उस समय विचार करना होगा, जब हम स्थगित तारीख को गुणागुण के आधार पर रिट पिटीशन की सुनवाई करेंगे । किन्तु एक बात निश्चित है और हम इस बात के विषय में राज्य सरकार पर जितना भी जोर दें, कम है क्योंकि अब समय आ गया है कि राज्य सरकार न्याय के प्रशासन के विषय में लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझे और मामले के विचारण के लिए अधिक न्यायालयों की स्थापना करे । हम यह बता देना चाहते हैं कि यदि राज्य सरकार न्याय-प्रशासन की पद्धति में सुधार करना चाहती है और इसे जनसाधारण तक न्याय पहुंचाने का प्रभावशालीपूर्ण माध्यम बनाना चाहती है जिनके लिए न्याय आज अर्थहीन और व्यर्थ की बात बन गया है । केवल अधिक न्यायालयों की स्थापना करना पर्याप्त नहीं होगा। बल्कि राज्य सरकार को उनमें सक्षम न्यायाधीशों की नियुक्ति भी करनी होगी और सक्षम न्यायाधीशों की भर्ती के प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, जैसे उनकी सेवा की शर्तों में सुधार, वह राज्य सरकार को करना होगा ।

6. इन्हीं कारणों से हमने तारीख 5 फरवरी, 1979 वाला अपना आदेश किया था । अब हम 19 फरवरी, 1979 को रिट पिटीशन की सुनवाई करेंगे ।

न्यायाधिपति पाठक—

7. यह निर्विवाद है कि विचारण किए जाने से पूर्व, विचारणाधीन लोगों का कारावास में अनावश्यक रूप से लम्बी कालावधि के लिए किया गया अवरोध मानवीय स्वाधीनता के सभी सभ्य विचारों के प्रतिकूल है । व्यक्तिगत स्वाधीनता की अर्थपूर्ण संकल्पना के अनुसार, जो सभ्य विधिक व्यवस्था का मूल आधार है, विचारण की प्रतीक्षा कर रहे व्यक्तियों की ओर न्याय प्रशासन का ध्यान जाने से पूर्व कारावास की लम्बी कालावधि स्पष्ट रूप से दुःख की

बात समझी जाएगी। दाण्डिक विधि का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कारावास अपराध के निर्णय के अनुसरण में हो सकता है, किन्तु उससे पहले नहीं हो सकता। किन्तु एक अन्य सिद्धान्त इस बात को सुनिश्चित करना वांछनीय बनाता है कि अपराधी पाए जाने पर अभियुक्त अपना दण्ड प्राप्त करने के लिए उपस्थित रहे। दण्ड प्रक्रिया संहिता, पुरानी संहिता और नयी संहिता दोनों में व्यक्ति को अपनी उपस्थिति के लिए जमानत पर या प्रतिभुओं के बिना बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उन्मोचित किए जाने का उपबन्ध सम्मिलित है। फिर भी, जैसा कि हमारे समक्ष वाले अभिलेख से, प्रथमदृष्टया प्रतीत होता है, बड़ी संख्या में वे व्यक्ति जिनके नाम इण्डियन एक्सप्रेस की 8 जनवरी और 9 जनवरी, 1979 वाली प्रतियों में उल्लिखित हैं, विचारण किए बिना ही अनेक वर्षों से कारावास में पड़ रहे हैं। यद्यपि बिहार राज्य को किए गए अभिकथनों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, तथापि बड़े दुर्भाग्य की बात है कि राज्य की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन पर उत्पन्न होने वाले प्रश्नों के महत्व को देखते हुए हमने राज्य को उपस्थित होने का और अवसर दिया है और तदनुसार हमने पिटीशन की अन्तिम सुनवाई के लिए 19 फरवरी, 1979 की तारीख नियत की है, किन्तु इसके साथ ही हमें इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इन विचारणाधीन व्यक्तियों को अन्तरिम अनुतोष से वंचित क्यों किया जाए। हमने प्रत्येक विचारणाधीन व्यक्ति की बाबत कही गई बात पर सावधानीपूर्वक विचार कर लेने के पश्चात् न्याय के हित में 5 फरवरी, 1979 को यह आदेश देना उचित समझा जिसमें उन व्यक्तियों को जो उस आदेश में उपवर्णित थे, उनके द्वारा स्वीय बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उन्मोचित किए जाने का निदेश दिया गया था। यह आदेश कुछ असामान्य है, क्योंकि इसमें निदेश दिया गया है कि प्रत्येक मामले में लिया गया स्वीय बन्धपत्र किसी वित्तीय बाध्यता पर आधारित नहीं होना चाहिए। यह शर्त एक साधारण उपाय के रूप में, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के प्रेरक दबाव के अधीन, सम्मिलित की गई है।

8. विचारण की प्रतीक्षा कर रहे कैदियों की अपनी उपस्थिति के लिए जमानत पर या प्रतिभुओं के बिना स्वीय बन्धपत्र के निष्पादन पर उन्मुक्ति की न्यायिक शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहूंगा। दण्ड प्रक्रिया संहिता के विद्यमान उपबन्धों में इस सम्बन्ध में व्यापक शक्ति दी गई है और न्यायालयों को ही उसमें विद्यमान अपने विवेकाधिकार

की प्रकृति और मात्रा से अपने को पूर्ण रूप से परिचित कराना है। मेरे विचार से इस शक्ति के यन्त्रवत् प्रयोग का अनुमान करना अब सम्भव नहीं है। अपेक्षित प्रतिभूति की रकम या बन्धपत्र में मांगी गई वित्तीय बाध्यता के विषय में अनेक बातों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना अपेक्षित है। सम्पूर्ण उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना है कि विचारणाधीन व्यक्ति विचारण से न भागे और अपने आप को न छुपाए। उन सभी सुसंगत बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जो इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए आवश्यक हैं[1]। विचारणीय बातों के विषय में संक्षिप्त प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका के बेल रिफार्म्स ऐक्ट, 1965 के निम्नलिखित उपबन्ध से प्राप्त किया जा सकता है—

> *"यह अवधारित करने के लिए कि उन्मुक्ति की किन शर्तों से उपस्थिति युक्तियुक्त रूप से सुनिश्चित होगी, न्यायिक अधिकारी, उपलब्ध जानकारी के आधार पर, आरोपित अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों, अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य की प्रबलता, अभियुक्त के पारिवारिक बन्धन, नियोजन, वित्तीय साधन, चरित्र और मानसिक स्थिति, समुदाय में उसके निवास की अवधि, दोषसिद्धियों के उसके अभिलेख और न्यायालय की कार्यवाहियों में उपस्थिति के उसके अभिलेख या अभियोजन से बचने के लिए भागने या न्यायालय की कार्यवाही में उपस्थित होने में असफलता, को ध्यान में रखेगा।"[2]

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "In determing which conditions of releases will reasonably assure appearance, the judcial officer shall, on the basis of available information, take into account the nature and circumstances of the offence charged, the weight of the evidence against the accused, the accused's family ties, employment, financial resources, character and mental condition, the length of his residence in the community, his record of convictions, and his record of appearance at court proceedings or of flight to avoid prosecution or failure to appear at court proceedings."

[1] दण्ड प्रक्रिया संहिता, धारा 440.

[2] 18 यू० एस० एस० 3146 (बी).

यह ऐसी बात है जो प्रतिभूति की रकम या वित्तीय बाध्यता का अवधारण करते समय ध्यान में रखी जानी चाहिए। सम्भवतः, यदि ऐसा किया जाता है तो भारत में विचारण से पूर्व उन्मुक्ति की विद्यमान पद्धति की हानियों को टाला जा सकता है या हर हालत में, बहुत कुछ कम किया जा सकता है। मोती राम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य[1] वाला मामला देखिए।

9. मैं संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिलंघन के आधार पर या अन्य आधारों पर विचारणाधीन कैदियों का निरोध जारी रखने की विधिमान्यता और औचित्य पर अन्तिम टिप्पणी या मताभिव्यक्ति करने से बचना वांछनीय समझता हूं। मेरे विचार से बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन के अन्तिम अवधारण के समय ही ऐसा किया जाना चाहिए।

10. इन्हीं कारणों से, मैंने तारीख 5 फरवरी, 1979 वाला आदेश किया था।

11. निर्णय का उपसंहार करते समय, इस बात की ओर ध्यान दिलाया जाना वांछनीय प्रतीत होता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में ऐसा स्पष्ट उपबन्ध नहीं है जो समुचित मामलों में विचारणाधीन कैदी को प्रतिभुओं के बिना और किसी वित्तीय बाध्यता के बिना उसके बन्धपत्र के आधार पर उन्मुक्त करने में समर्थ बनाता हो। स्पष्ट उपबन्ध की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय कारागारों में इस समय जो विचारणाधीन हजारों कैदी हैं उनमें से अनेक ऐसे हैं जो विचारण से पूर्व अपनी उन्मुक्ति प्राप्त करने में इसलिए असमर्थ हैं कि वे अपनी उपस्थिति के लिए पर्याप्त वित्तीय गारण्टी पेश नहीं कर सकते। जहां उनको कारावास में जारी रखने के लिए एकमात्र कारण यही है, वहां द्वेषजनक भेद-भाव का परिवाद करने का उचित आधार हो सकता है। यह बात उस सांविधानिक पद्धति में और भी अधिक होती है जिसमें सभी नागरिकों के लिए सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय का वचन दिया गया है। वित्तीय निर्धनता के कारण स्वाधीनता से वंचित किया जाना ऐसे समाज में बेढंगा तत्व है। अनेक बातों से, जिनका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, उपस्थिति के लिए पर्याप्त गारण्टी हो जाती है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है

[1] [1979] 3 उम० नि० प० 278=(1978) 4 एस० सी० सी० 47.

कि यदि कानून में अविरतीय उन्मोचन का समुचित उपबन्ध कर दिया गया होता तो हमारे विधि निर्माताओं द्वारा व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया गया होता।

तदनुसार आदेश दिया गया।

श्या०/धी०

(1980) 2 उम० नि० प० 763:
(1980) 1 SCC 93:

हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussainara Khatoon and Others

v.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(26 फरवरी, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और ए० पी० सेन)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 167(2), परन्तुक—विचारणाधीन कैदियों के 15 दिन से अधिक की कालावधि के लिए निरोध को प्राधिकृत करते समय मजिस्ट्रेट को यन्त्रवत् कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि उसका यह समाधान भली प्रकार कर लेना चाहिए कि उन्हें समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किए जाने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)–धारा 468(2)—जिन विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध इस धारा में उपबन्धित परिसीमाकाल के भीतर आरोप-पत्र फाइल नहीं किए जाते, उन्हें तत्काल छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि उनका और आगे निरोध विधि विरुद्ध और अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होगा।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 167(5)—यदि समन मामले में अन्वेषण अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर पूरा न हुआ हो और मजिस्ट्रेट का यह समाधान न करा दिया गया हो कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के बाद भी अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है, तो अभियुक्त को उन्मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

प्रार्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे

लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे । इनमें से अनेक मामलों में अन्वेषण में दो वर्ष से भी अधिक समय का विलम्ब हुआ था । कुछ मामलों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 (2) में विहित परिसीमाकाल के भीतर आरोपपत्र फाइल नहीं किया गया था । उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया । उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री से न्यायालय को इस बात का निश्चय नहीं हुआ कि विचारणाधीन कैदियों को दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2) के परन्तुक द्वारा यथा-अपेक्षित नियत काल पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था या नहीं और जिन समन मामलों में अन्वेषण अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर समाप्त नहीं हुआ था, उनमें आगे अन्वेषण जारी रखने से पूर्व धारा 167(5) में यथा अपेक्षित मजिस्ट्रेट का यह समाधान करा दिया गया था या नहीं कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की अवधि से आगे अन्वेषण जारी रखने की आवश्यकता है । प्रत्यर्थी को आवश्यक आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—प्रतिशपथपत्र पढ़ने से हमें इस बात का निश्चय नहीं हुआ है कि विचारणाधीन उन कैदियों को, जिनकी विशिष्टियां उसमें दी गई है, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2) के परन्तुक द्वारा यथा-अपेक्षित नियत काल पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता रहा है या नहीं । न्यायालय ने जो ऐसे समुचित शपथपत्र में 3 मार्च, 1979 को या उसके पूर्व फाइल किया जाना चाहिए था, सरकार से यह जानना चाहा कि इन विचारणाधीन कैदियों को धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षाओं का अनुपालन करते हुए नियत काल पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था या नहीं । धारा 167(2) के परन्तुक में कहा गया है कि यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाए कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान है तो वह अभियुक्त व्यक्ति के 15 दिन से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत कर सकता है । यह निश्चित है कि इन मामलों में सम्बन्धित मजिस्ट्रेटों ने यन्त्रवत् कार्य नहीं किया है, बल्कि अपना दिमाग लगाया है और अपना यह समाधान कर लिया है कि इन व्यक्तियों को दो से लेकर दस वर्ष से भी-अधिक की कालावधियों के लिए समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने के पर्याप्त आधार विद्यमान है, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं था कि इन व्यक्तियों को पुलिस अन्वेषण के प्रयोजन के लिए दो वर्ष से दस वर्ष तक की लम्बी कालावधि के लिए न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने के पर्याप्त

आधारों की विद्यमानता के बारे में मजिस्ट्रेटों का समाधान कैसे हो सकता था। पटना उच्च न्यायालय को अब यह चाहिए कि वह विस्तृत जांच करने के पश्चात् इस मामले पर भी विचार करे। (पैरा 5)

जिन विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध पुलिस ने धारा 468 की उपधारा (2) में उपबन्धित परिसीमाकाल के भीतर आरोपपत्र फाइल नहीं किए हैं, उनके विरुद्ध कार्यवाही बिल्कुल नहीं की जा सकती और वे तत्काल उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं, क्योंकि उनका और आगे निरोध विधि विरुद्ध और अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण होगा। (पैरा 7)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(5) के अनुसार, यदि मजिस्ट्रेट द्वारा-समन मामले के रूप में विचारणीय किसी मामले में अन्वेषण अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने की तारीख से छह मास की कालावधि के भीतर समाप्त नहीं होता, तो मजिस्ट्रेट अपराध में आगे अन्वेषण को रोकने के लिए आदेश करेगा जब तक कि अन्वेषण करने वाला अधिकारी मजिस्ट्रेट का यह समाधान नहीं करा देता कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि से आगे अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है। न्यायालय को इस बात का बिल्कुल निश्चय नहीं हो सका कि क्या इस उपबन्ध का अनुपालन किया गया है, क्योंकि बहुत से ऐसे मामले हैं जिनमें विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध आरोपित अपराध समन मामले के रूप में विचारणीय हैं और फिर भी वे छह मास से बहुत अधिक अनेक वर्षों की लम्बी कालावधियों से जेल में सड़ रहे हैं। अतः बिहार सरकार को यह निदेश दिया गया कि वह इन मामलों में जांच करे और जहां यह पाया जाए कि अन्वेषण मजिस्ट्रेट का यह समाधान किए बिना कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की अवधि से आगे अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है, छह मास से अधिक की कालावधि के लिए चलता रहा है, वहां बिहार सरकार विचारणाधीन कैदियों को उस दशा में उन्मोचित कर देगी, यदि आज से एक मास की कालावधि के भीतर मजिस्ट्रेट से आवश्यक आदेश न प्राप्त कर लिए जाएं। (पैरा 8)

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57.

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री लाल नारायण सिन्हा, यू० पी० सिंह और एस० एन० झा

महान्यायवादी की ओर से — सर्वश्री एस० वी० गुप्ते, महान्यायवादी और आर० एन० सचदे

अभिलेख-अधिवक्ता

विरोधकर्तों की ओर से — श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से — श्री यु० पी० सिंह

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और ए० पी० सेन ने न्यायालय का निम्नलिखित आदेश 26 फरवरी, 1979 को दिया।

आदेश

बिहार सरकार ने तारीख 19 फरवरी, 1979 वाले आदेश में दिए गए हमारे सुझाव के अनुसरण में तारीख 9 फरवरी, 1979 वाले सरकारी आदेश के पैरा 2 (ई) के प्रस्तावित स्पष्टीकरण वाला एक टिप्पण हमारे समक्ष फाइल किया है। इस स्पष्टीकरण के पैरा 1 में यह कहा गया है कि जहां किसी मामले में पुलिस अन्वेषण में दो वर्ष से अधिक समय का विलम्ब हुआ है, वहां पुलिस अधीक्षक यह ध्यान रखेगा कि अन्वेषण शीघ्रता से पूरा हो जाए और पुलिस अन्तिम रिपोर्ट और आरोप-पत्र यथासम्भव शीघ्रता से प्रस्तुत कर दे और इसे सुनिश्चित करने का दायित्व व्यक्तिगत रूप से पुलिस अधीक्षक पर डाला गया है। यह जानकर हमें प्रसन्नता हुई है कि सरकार ने हमारे इस सुझाव को मान लिया है, किन्तु हमें इस बात का बिल्कुल विश्वास नहीं है कि क्या केवल यह उपबन्ध कर देना पर्याप्त होगा कि अन्वेषण शीघ्रता से पूरा किया जाएगा और अन्तिम रिपोर्ट या आरोप-पत्र यथासम्भव शीघ्रता से प्रस्तुत किया जाएगा। हमारा मत है कि राज्य सरकार को ऐसी युक्तियुक्त कालसीमा निर्धारित करनी चाहिए जिसके भीतर ये कदम उठाए जाने चाहिएं ताकि अन्तिम रिपोर्ट या आरोप-पत्र प्रस्तुत करने में आगे विलम्ब न हो। हमारी समझ में यह नहीं आता कि पुलिस के अन्वेषण में दो वर्ष की लम्बी कालावधि कैसे लग सकती है और यदि पुलिस का अन्वेषण दो वर्षों के भीतर पूरा नहीं हो सकता, तो निश्चय ही बिहार राज्य के पुलिस बल में कुछ न कुछ मौलिक दोष है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे असंख्य मामले हैं जिनमें पुलिस अन्वेषण दो वर्ष से भी अधिक समय से पूरा नहीं हुआ है और लोग विचारणाधीन कैदियों के रूप में लम्बी

कालावधि तक जेल में रहे हैं। जहाँ तक न्याय और व्यवस्था के प्रशासन का सम्बन्ध है, यह हृदय विदारक स्थिति है। इसलिए हमारा सुझाव है कि ऐसे मामलों में जिनमें पुलिस अन्वेषण में दो वर्ष से भी अधिक का विलम्ब हुआ है, उनमें पुलिस द्वारा अन्तिम रिपोर्ट या आरोप-पत्र तीन मास की अतिरिक्त कालावधि के भीतर प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए और यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो राज्य सरकार का ऐसे मामलों को वापिस ले लेना उचित होगा, क्योंकि यदि दो वर्ष से भी अधिक कालावधि और तीन मास की अतिरिक्त कालावधि के पश्चात् पुलिस आरोप-पत्र फाइल करने में समर्थ नहीं हुई है-तो यह उपधारणा युक्तियुक्त रूप से की जा सकती है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता।

2. बिहार सरकार ने बिहार के सहायक कारागार महानिरीक्षक श्री मृण्मय चौधरी द्वारा प्रस्तुत प्रतिशपथपत्र भी फाइल किया है, जिसमें उन 18 विचारणाधीन व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिन्हें उनके व्यक्तिगत बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित करने का आदेश हमने दिया है विशिष्टियां उपवर्णित हैं। प्रतिशपथपत्र में दी गई विशिष्टियां बहुत ही दुखद हैं। प्रतिशपथपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत-सी स्त्रियां कैदी हैं, जिन पर किसी अपराध का आरोप लगाए बिना ही उन्हें जेल में केवल इसलिए रखा गया है कि वे किसी अपराध की शिकार हुई हैं। या साक्ष्य देने के लिए उनकी आवश्यकता है या वे "संरक्षात्मक अभिरक्षा" में हैं। 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' अभिव्यक्ति वास्तव में और सच्चाई के रूप में कारावास को छुपाने के लिए मधुर अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति का आशय—अन्तरात्मा को संतुष्ट करने के लिए है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जिन स्त्रियों को संरक्षात्मक अभिरक्षा' के बहाने जेल में रखा गया है, उन्हें अपने किसी कसूर के बिना लम्बी कालावधि तक अनिच्छा से स्वाधीनता से वंचित रहना पड़ा है। हम यह बता देना चाहते हैं कि तथाकथित 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत दैहिक स्वाधीनता के नृशंस अतिक्रमण से कम कुछ नहीं है, क्योंकि हमारी जानकारी के अनुसार, विधि का ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन किसी स्त्री को संरक्षात्मक अभिरक्षा' के रूप में या केवल इसलिये जेल में रखा जा सके कि साक्ष्य देने के लिए उसकी आवश्यकता है। सामाजिक कल्याण वाले राज्य में सरकार को ऐसी स्त्रियों और बच्चों की देखभाल के प्रयोजन से बचाव और कल्याण-गृह स्थापित करने चाहिए जिनके पास और कहीं जाने का स्थान नहीं है और जिनकी देखभाल समाज अन्यथा नहीं करता। उन स्त्रियों और बच्चों की संरक्षा करना सरकार

का कर्तव्य है जो गृहहीन या अनाथ हैं और यह आश्चर्य की बात है कि बिहार सरकार ने यह स्पष्टीकरण दिया है कि उसे विवश होकर स्त्रियों को इसलिए 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के लिए जेल में रखना पड़ा क्योंकि राज्य द्वारा चलाया जा रहा कल्याण केन्द्र बन्द हो गया था, हम निदेश देते हैं कि उन सभी स्त्रियों और बच्चों को जो बिहार राज्य में 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के लिए जेलों में हैं या जो इसलिए जेल में हैं कि साक्ष्य देने के लिए उनकी उपस्थिति की आवश्यकता है या जो अपराध के शिकार हैं, उन्मोचित कर दिया जाए और तत्काल कल्याण-केन्द्रों या बचाव केन्द्रों में ले जाया जाए और वहां रखा जाए तथा उनकी समुचित रूप से देखभाल की जाए।

3. प्रतिशपथपत्र से हमें यह भी पता चला है कि भोला महतो 23 फरवरी, 1968 से 16 फरवरी, 1979 तक जेल में था और 16 फरवरी, 1979 को उसे तारीख 5 फरवरी, 1979 वाले हमारे निदेश के अनुसरण में उसके स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित किया गया था। वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 363 और 368 के अधीन वाले मामले में अभियुक्त है और उसे 13 सितम्बर, 1972 को सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया था, किन्तु उसका सेशन विचारण अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे व्यक्ति का सेशन विचारण लगभग सात वर्ष तक भी प्रारम्भ नहीं हुआ है जिसे बहुत पहले 13 सितम्बर, 1972 को सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया था। हम निदेश देते हैं कि पटना का सेशन न्यायाधीश पटना उच्च न्यायालय के माध्यम से इस न्यायालय को स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे कि भोला महतो का सेशन विचारण अभी तक प्रारम्भ क्यों नहीं हुआ। इस मामले में हम पटना उच्च न्यायालय का ध्यान भी आकृष्ट करना चाहेंगे। यही बात राम सागर मिस्त्री के विषय में भी कही जा सकती है, जिसे 28 मार्च, 1971 को जेल में डाला गया था और 28 जून, 1972 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन आरोप के आधार पर सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया था, किन्तु जिसका सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ है, यद्यपि उसकी सुपुर्दगी की तारीख से 6 वर्ष से भी अधिक की कालावधि व्यतीत हो चुकी है और कारावास में उसके डाले जाने की तारीख से 8 वर्ष की कालावधि व्यतीत हो चुकी है।

4. प्रतिशपथपत्र से यह दर्शित होता है कि बन्धु राय, जिसके विषय में यह रिपोर्ट है कि वह नक्सलवादी है, 15 मई, 1975 से जेल में है।

उसके विषय में यह अभिकथित है कि वह पांच मामलों में अन्तर्वलित है जो प्रतिशपथपत्र में उपवर्णित है। जहां तक उसका सम्बन्ध है उसे मजिस्ट्रेट को, जिसके समक्ष उसे पेश किया जाएगा, यह आवेदन करने का हक होगा कि उसे जमानत पर या उसके स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित कर दिया जाए और मजिस्ट्रेट मोटे तौर से किए गए उन मार्ग दर्शनों के अनुसार आवेदन पर विचार करेगा जोकि हमने तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले अपने निर्णय में अधिकथित किया है।

5. प्रतिशपथपत्र पढ़ने से हमें इस बात का निश्चय नहीं हुआ है कि विचारणाधीन उन कैदियों को, जिनकी विशिष्टियां उसमें दी गई हैं, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के परन्तुक द्वारा यथा-अपेक्षित नियत काल पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता रहा है या नहीं। हम ऐसे समुचित शपथपत्र में जोकि 3 मार्च, 1979 को या उसके पूर्व फाइल किया जाए सरकार से यह जानना चाहेंगे कि इन विचारणाधीन कैदियों को धारा 167 (2) के परन्तुक की अपेक्षाओं का अनुपालन करते हुए, नियत काल पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था या नहीं। धारा 167(2) के परन्तुक में कहा गया है कि यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाए कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं, तो वह अभियुक्त व्यक्ति के 15 दिन से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत कर सकता है। हमें आशा और विश्वास है कि इन मामलों में सम्बन्धित मजिस्ट्रेटों ने यन्त्रवत् कार्य नहीं किया है, बल्कि अपना दिमाग लगाया है और अपना यह समाधान कर लिया है कि इन व्यक्तियों को दो से लेकर दस वर्ष से भी अधिक की कालावधियों के लिए समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रति प्रेषित करने के पर्याप्त आधार विद्यमान है, यद्यपि हमारी समझ में यह नहीं आता कि इन व्यक्तियों को पुलिस अन्वेषण के प्रयोजन के लिए दो वर्ष से दस वर्ष तक की लम्बी कालावधि के लिए न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने के पर्याप्त आधारों की विद्यमानता के बारे में मजिस्ट्रेटों का समाधान कैसे हो सकता था। हम चाहते हैं कि पटना उच्च न्यायालय विस्तृत जांच करने पश्चात् इस विषय पर भी विचार करे।

6. बिहार सरकार ने हमारे समक्ष एक सूची भी फाइल की है जिसमें उन विचारणाधीन कैदियों की विशिष्टियां दी गई हैं जिन्हें बिहार में 1 फरवरी, 1979 तक 18 मास से भी अधिक के लिए बिहार की 17 जेलों में परिरुद्ध रखा गया है। सारणी से यह दर्शित होता है कि इन जेलों में लम्बी काला-

अवधि से विचारणाधीन कैदी परिरुद्ध हैं और कुछ मामलों में ये कालावधियां उस अधिकतम दण्ड से भी अधिक हैं जो उन्हें उस दशा में दिया जा सकता था, जब उन्हें उनके विरुद्ध आरोपित अपराधों का अपराधी पाया जाता। उदाहरण के लिए, मद संख्या 30 के सामने, हम यह पाते हैं कि लम्बोदर गौराई नाम का एक व्यक्ति आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराध के लिए जिसके लिए अधिकतम दण्ड दो वर्ष है, 18 जून, 1970 से ही रांची जेल में है जिसके परिणामस्वरूप वह ऐसे अपराध के लिए 8-1/2 वर्ष तक विचारणाधीन कैदी के रूप में जेल में रह चुका है जिसके लिए दोषसिद्ध हो जाने पर भी उसे दो वर्ष से अधिक का कारावास नहीं दिया जा सकता था। सारणी में ऐसे अनेक मामले हैं, किन्तु सारणी से आसानी से उनकी पहचान करना सम्भव नहीं है, क्योंकि सारणी में विचारणाधीन कैदियों के नाम बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। अतः हम बिहार सरकार को निदेश देते हैं कि वह 3 मार्च, 1979 को या उससे पूर्व एक पुनरीक्षित सारणी प्रस्तुत करे जिसमें उन्हें मोटे तौर से दो प्रवर्गों, एक छोटे अपराधों के और दूसरा बड़े अपराधों के प्रवर्ग में विभाजित करने के पश्चात् इन जेलों में विचारणाधीन कैदियों की वर्षानुसार अलग-अलग विशिष्टियां दर्शित की गई हों।

7. हमारा ध्यान दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 468 की ओर भी दिलाया गया है जिसकी उपधारा (1) में यह उपबन्ध है कि इस संहिता में अन्यत्र अन्यथा यथा उपबन्धित के सिवाय, कोई न्यायालय उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रवर्ग के किसी अपराध का संज्ञान परिसीमा काल की समाप्ति के पश्चात् नहीं करेगा और उपधारा (2) में उपबन्धित परिसीमा काल, यदि अपराध केवल जुर्माने से दण्डनीय है तो छह मास, यदि अपराध एक वर्ष से अनधिक की कालावधि के कारावास से दण्डनीय है, तो एक वर्ष, और यदि अपराध एक वर्ष से अधिक किन्तु तीन वर्ष से अनधिक की कालावधि के कारावास से दण्डनीय है, तो तीन वर्ष होगा। इसलिए यह उल्लेखनीय है कि जिन विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध पुलिस ने धारा 468 की उपधारा (2) में उपबन्धित परिसीमा काल के भीतर आरोप-पत्र फाइल नहीं किए हैं, उनके विरुद्ध कार्यवाही बिल्कुल नहीं की जा सकती और वे तत्काल उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं, क्योंकि उनका और आगे निरोध विधि-विरुद्ध और अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण होगा। इसलिए हम बिहार सरकार को निदेश देते हैं कि वह उन विचारणाधीन कैदियों के मामलों की संवीक्षा करे जिन पर ऐसे अपराधों का आरोप है जो केवल जुर्माने से दण्डनीय हैं या एक वर्ष से अनधिक की

कालावधि के कारावास से दण्डनीय है या एक वर्ष से अधिक किन्तु तीन वर्ष से अनधिक की कालावधि के कारावास से दण्डनीय है और उनमें से ऐसे लोगों को उन्मोचित कर दे, जिनके विरुद्ध परिसीमा काल समाप्त हो जाने के कारण कार्यवाही नहीं की जा सकती। बिहार सरकार आज से छह सप्ताह की कालावधि के भीतर इस निदेश को कार्यान्वित कर देगी और विशिष्टियों सहित अनुपालन रिपोर्ट इस न्यायालय को पहले चार सप्ताह के अन्त में और फिर अगले दो सप्ताह के अन्त में प्रस्तुत की जाएगी।

8. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(5) से हम यह भी पाते हैं कि यदि मजिस्ट्रेट द्वारा समन मामले के रूप में विचारणीय किसी मामले में अन्वेषण अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने की तारीख से छह मास की कालावधि के भीतर समाप्त नहीं होता, तो मजिस्ट्रेट अपराध में आगे अन्वेषण को रोकने के लिए आदेश करेगा, जब तक कि अन्वेषण करने वाला अधिकारी मजिस्ट्रेट का यह समाधान नहीं करा देता कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि से आगे अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है। हमें इस बात का बिल्कुल निश्चय नहीं है कि क्या इस उपबन्ध का अनुपालन किया गया है, क्योंकि बहुत से ऐसे मामले हैं जिनमें विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध आरोपित अपराध समन मामले के रूप में विचारणीय है फिर भी वे छह मास से बहुत अधिक अनेक वर्षों की लम्बी कालावधियों से जेल में सड़ रहे हैं। अतः हम बिहार सरकार को निदेश देते हैं कि वह इन मामलों में जांच करे और जहां यह पाया जाए कि अन्वेषण मजिस्ट्रेट का यह समाधान किए बिना कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की अवधि से आगे अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है, छह मास से अधिक की कालावधि के लिए चलता रहा है वहां बिहार सरकार विचारणाधीन कैदियों को उस दशा में उन्मोचित कर देगी यदि आज से एक मास की कालावधि के भीतर मजिस्ट्रेट से आवश्यक आदेश न प्राप्त कर लिए जाएं। हम उच्च न्यायालय से भी इस मामले की ओर ध्यान देने और अपना यह समाधान करने का निवेदन करते हैं कि क्या बिहार में मजिस्ट्रेट धारा 167(5) के उपबन्धों का अनुपालन करते रहे हैं।

9. हम रिट पिटीशन की सुनवाई को 5 मार्च, 1979 तक के लिए स्थगित करते हैं और उस तारीख को अवधारण के लिए उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रश्नों के विषय में गुणागुण के आधार पर सुनवाई करके रिट पिटीशन का निपटारा करेंगे।

क्या०/धी० तदनुसार आदेश किया गया।

(1980) 2 उम० नि० प० 772:
(1980) 1 SCC 98:
AIR 1979 SC 1369:

हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussainara Khatoon and Others

v.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(9 मार्च, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और डी० ए० देसाई)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—यदि विचारणाधीन कैदियों को उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाता है, जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, तो उससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21 और 39-क— अकिंचन और निर्धन अभियुक्तों को निःशुल्क विधिक सेवा प्रदान करने की बात अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित है और अनुच्छेद 39-क में इसके लिए स्पष्ट निर्देश है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 309—अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाना चाहिए, जिससे कि उन्हें ऐसे मामलों में, जिनमें उनकी जमानत मंजूर नहीं की जाती, अनावश्यक रूप से अधिक समय तक कारावास में न रहना पड़े।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—उच्चतम न्यायालय अभियुक्तों के शीघ्रता से विचारण करने के अधिकार के लिए न्यायालय आदि की पर्याप्त व्यवस्था करने का निदेश दे सकता है।

प्रत्यर्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे। इनमें से अनेक मामलों में विचारणाधीन कैदी उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके थे जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था। ये कैदी अपनी निर्धनता के कारण अपनी जमानत देने और अपने बचाव के लिए वकील की सेवा प्राप्त करने में असमर्थ थे। उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया। दण्ड की अधिकतम सीमा से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों की उन्मुक्ति का आदेश देते हुए और निर्धन विचारणाधीन कैदियों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था का निदेश देते हुए तथा प्रत्यर्थी को अभियुक्तों के शीघ्रता से विचारण के लिए अतिरिक्त न्यायालय आदि की आवश्यकता का अनुमान लगाने में उच्चतम न्यायालय को समर्थ बनाने वाली सामग्री प्रस्तुत करने का आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—ये सम्बन्धित चार्ट में उपवर्णित विचारणाधीन कैदी उन कालावधियों से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं जो उनकी दोषसिद्धि पर उनके दण्ड की अधिकतम अवधि हो सकती थी। इससे दारुण स्थिति प्रकट होती है और मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता का पूर्ण अभाव झलकता है। इससे हमारी विधिक और न्यायिक पद्धति की क्रूरता प्रकट होती है जो दैहिक स्वाधीनता के पूर्ण रूप से अन्यायोचित अपवंचन के परिणामस्वरूप होने वाले इतने अतीव दुःख और कष्ट से भी अप्रभावित रह सकती है। यह समझना वास्तव में कठिन है कि राज्य सरकार इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर कारावास के प्रति, जो उनका विचारण प्रारम्भ हुए बिना ही वर्षों तक चलता रहा, असावधान कैसे रह सकी। बिहार राज्य में न्यायपालिका भी दोष के अपने उत्तरदायित्व से नहीं बच सकती, क्योंकि वह इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती थी कि हजारों विचारणाधीन कैदी ऐसे विचारण की प्रतीक्षा में जेलों में सड़ रहे हैं जो कभी भी प्रारम्भ हुआ प्रतीत नहीं होता। सुसंगत सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर निरोध को न्यायोचित कैसे ठहराया जा सकता है जबकि वे पहले ही उस अवधि से अधिक समय तक जेल में रहे हैं जिसके लिए, दोषसिद्ध होने पर, उन्हें दण्ड दिया जा सकता था। वास्तव में जेल की कुछ अवधि उनके जमाखाते में है। सुसंगत सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों को तत्काल उन्मुक्त कर दिया जाए,

क्योंकि उनके विरोध का जारी रखा जाना स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला है । (पैरा 5)

अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जिन पर जमानतीय अपराधों का आरोप है, किन्तु जो अभी भी सम्भवतया इसलिए जेल में हैं कि उनकी ओर से जमानत का कोई आवेदन नहीं किया गया है या वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते । यह असामान्य बात नहीं है कि जिन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है वे जमानत पर छूटने के अपने अधिकार से अनभिज्ञ होते हैं और अपनी निर्धनता के कारण वे वकील की जो उन्हें जमानत के लिए आवेदन करने के उनके अधिकार से परिचित करा सके और इस निमित्त मजिस्ट्रेट को समुचित आवेदन करके जमानत पर छूटने में उनकी सहायता कर सके, सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं । विधिक प्रक्रिया के फायदे निर्धनों तक पहुंचाना, अन्याय के विरुद्ध उनकी संरक्षा करना और उनके सांविधानिक और कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए राष्ट्रव्यापी विधिक सेवा कार्यक्रम न हो । यह सुस्थिर है कि जब अनुच्छेद 21 में यह उपबन्ध है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा तब इतना ही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया जैसी कोई चीज हो बल्कि जिस प्रक्रिया के अधीन किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वाधीनता से वंचित किया जा सकता है, उसे युक्तियुक्त, उचित वह न्यायसंगत होनी चाहिए । जो प्रक्रिया ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं रख सकता और इसलिए जिसे विधिक सहायता के बिना विचारण करवाना पड़ता है, विधिक सेवा उपलभ्य नहीं होती, उस प्रक्रिया को युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत समझना सम्भव नहीं है । जिस कैदी को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयास करना है, उसके लिए युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का यह आवश्यक लक्षण है कि उसे विधिक सेवा उपलभ्य होनी चाहिए । (पैरा 6)

अनुच्छेद 39-क में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि निःशुल्क विधिक सेवा युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, क्योंकि

इसके बिना आर्थिक या अन्य असमर्थताओं वाला व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जाएगा। अतः निःशुल्क विधिक सेवा युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक लक्षण है जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और इसके बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि यह अनुच्छेद 21 की गारन्टी में अन्तर्निहित है। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो निर्धनता, गरीबी या सम्पर्कहीनता की स्थितियों जैसे कारणों से वकील रखने या विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है और राज्य को यह परमादेश है कि वह अभियुक्त व्यक्ति के लिए उस दशा में वकील की व्यवस्था करे जब मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताओं में ऐसा अपेक्षित है परन्तु निस्सन्देह यह तभी होगा जबकि अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था पर आपत्ति नहीं करता। (पैरा 7)

यह नितान्त आवश्यक है कि अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाए जिससे कि ऐसे मामलों में जिनमें जमानत, विवेकाधिकार का समुचित प्रयोग करते हुए, नामंजूर कर दी जाती है, अभियुक्त व्यक्ति नितान्त आवश्यक कालावधि से अधिक तक के लिए जेल में न रहे, क्योंकि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो कारावास की उस अधिकतम अवधि से आधे से अधिक तक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था। (पैरा 8)

राज्य अभियुक्त के लिए शीघ्रता से विचारण की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से वित्तीय या प्रशासनिक असमर्थता का अभिवचन करके नहीं बच सकता। राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करे और इस प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह राज्य को करना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालय की भी, लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में और सजग प्रहरी के रूप में राज्य को आवश्यक निदेश जारी करके, जिनमें सकारात्मक कार्यवाही करना, जैसे अन्वेषणतन्त्र में बढ़ोतरी करना और उसे सबल बनाना, नए न्यायालय स्थापित करना, नए न्यायालय भवनों का निर्माण करना, न्यायालयों के लिए अधिक कर्मचारिवृन्द और साधनों की व्यवस्था करना, अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति करना और शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के लिए

प्रकल्पित अन्य उपाय करना सम्मिलित है, अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार को प्रवृत्त करने की सांविधानिक आवश्यकता भी है। (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 3 उम० नि० प०= [1978] 3 एस० सी० सी० 544 : माधव हयवादन राव होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य (Madhava Hyavadan Rao Hoskot *V.* State of Maharashtra);	6
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243= [1978] 1 एस० सी० सी० 248 : मेनका गांधी बनाम भारत संघ (Maneka Gandhi *V.* Union of India);	6
[1974]	(1974) 377 एफ० सप्लीमेण्ट 995 : जेम्स रैम बनाम जस्टिस बेंजामिन मैल्कम (James Rhem *V.* Justice Benjamin Malcolm);	10
[1972]	(1972) 409 यू० एस० 25=35 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 530 : जान रिचर्ड आर्गेरसिंगर बनाम रेमण्ड हैमलिन (Jon Richard Argersinger *V.* Raymond Hamlin);	6
[1972]	(1972) 349 एफ० सप्लीमेण्ट 881 : नजारेथ गेट्स बनाम जान कोलियर (Nazareth Gates *V.* John Collier);	10
[1972]	(1972) 349 एफ० सप्लीमेण्ट 278 : एन० एच० न्यूमैन बनाम स्टेट ऑफ अलबामा (N. H. Newman *V.* State of Albama);	10

[1971]	(1971) 330 एफ० सप्लीमेण्ट 707 : चार्ल्स जोन्स बनाम सोल विट्टनबर्ग (Charles Jones *V.* Sol Wittenberg):	10
[1970]	(1970) 309 एफ० सप्लीमेण्ट 362 : जस्टिस लारेन्स होल्ट बनाम राबर्ट सार्वेर (Justice Lawrence Holt *V.* Robert Sarver);	10
[1968]	(1968) 404 एफ० सैकण्ड 571 : विलियम किंग जैक्सन बनाम ओ० ई० बिशप (William King Jackson *V.* O E. Bishop);	10
[1962]	(1962) 372 यू० एस० 335= 9 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 799 : गिडियोन बनाम वेनराइट (Gideon *V.* Wainwright).	6

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन सं० 57.

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती—

यह रिट पिटीशन 26 फरवरी, 1979 को हमारे द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में पुन: हमारे समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत किया गया है और आज प्रत्यर्थियों की ओर से तीन अतिरिक्त प्रति-शपथपत्र फाइल किए गए हैं : एक मृणमय चौधरी, सहायक महानिरीक्षक कारावास ने दूसरा बागेश्वरी प्रसाद पाण्डे, अधीक्षक, पटना केन्द्रीय जेल ने और तीसरा प्रदीप

कुमार गांगुली, अधीक्षक, मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल ने फाइल किया था। मृण्मय चौधरी ने अपने शपथपत्र में 26 फरवरी, 1979 को पहले ही प्रस्तुत 17 जेलों में विचारणाधीन कैदियों की विशिष्टियों के अतिरिक्त, बिहार राज्य की 48 जेलों में विचारणाधीन कैदियों की विशिष्टियां दी हैं। हमने अपने 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश द्वारा बिहार राज्य को निदेश दिया था कि वह पुनरीक्षित चार्ट फाइल करे जिसमें स्थूल रूप से दो प्रवर्गों में, अर्थात्, छोटे अपराधों और बड़े अपराधों में विभाजित करने के पश्चात् विचारणाधीन कैदियों के प्रत्येक वर्ग के अलग-अलग आंकड़े दर्शित किए जाएं, किन्तु बिहार राज्य ने इस निदेश का पालन नहीं किया है। तथापि, मृण्मय चौधरी ने अपने शपथपत्र में हमें विश्वास दिलाया है कि न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निदेशों के सम्बन्ध में अनेक बातों को तत्परता से कार्यान्वित किया जा रहा है, किन्तु समय की कमी के कारण उसे 3 मार्च, 1979 तक पूरा करना सम्भव नहीं हुआ है। हम यह निदेश देते हैं कि बिहार राज्य सभी 65 जेलों में विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में पुनरीक्षित चार्ट आज से तीन सप्ताह के भीतर ऐसी रीति से फाइल करेगा जिससे स्पष्ट रूप से प्रत्येक वर्ग के लिए यह दर्शित होगा कि उनमें से प्रत्येक किस तारीख से जेल में है और दो प्रवर्गों में, अर्थात्, छोटे अपराधों और बड़े अपराधों में मोटे तौर से विभाजन किया जाएगा। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि जहां तक "संरक्षात्मक अभिरक्षा" में स्त्रियों का सम्बन्ध है, राज्य ने मृण्मय चौधरी के शपथपत्र में हमें विश्वास दिलाया है कि "संरक्षात्मक अभिरक्षा" में स्त्रियों को जेलों से कल्याण विभाग द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं में अन्तरित करने के लिए कार्यवाही की गई है और सरकार द्वारा इस विषय में निदेश जारी कर दिए गए हैं। हमें आशा और विश्वास है कि हमारे तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले पूर्ववर्ती आदेश में दिए गए इस निदेश का सरकार द्वारा पालन किया जाएगा और हमें उसके अनुपालन की रिपोर्ट विहित समय के भीतर प्रस्तुत की जाएगी।

2. यद्यपि हमने अपने तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश द्वारा बिहार राज्य को यह निदेश दिया था कि वह 3 मार्च, 1979 को या उससे पूर्व समुचित शपथपत्र फाइल करके न्यायालय को यह सूचित करे कि वे विचारणाधीन कैदी जिनकी विशिष्टियां 26 फरवरी, 1979 वाले प्रतिशपथपत्र में दी गई हैं, धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन में मजिस्ट्रेटों के समक्ष नियत काल पर पेश किए गए थे या नहीं, तथापि हम यह पाते हैं कि

बागेश्वरी प्रसाद पाण्डे द्वारा इस निदेश के उत्तर में अपने शपथपत्र में केवल यह प्रकथन किया गया है कि कैदी संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और 17, जो अपने उन्मोचन से पूर्व पटना केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध थे, 'जब कभी न्यायालयों ने चाहा', न्यायालय के समक्ष नियमित रूप से पेश किए गए थे। हमने जो निदेश दिए थे, इस प्रकथन से उसका अनुपालन नहीं होता। हम बिहार राज्य से ऐसे समुचित शपथपत्र में जोकि आज से दो सप्ताह के भीतर फाइल किए जाएं, यह जानना चाहेंगे कि हमने जिन विचारणाधीन कैदियों को उनके रवीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित करने का निदेश दिया था, क्या उन्हें धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षाओं का अनुपालन करके मजिस्ट्रेटों के समक्ष नियत काल पर पेश किया गया था या नहीं। हम सुझाव देना चाहेंगे कि राज्य को वे तारीखें देनी चाहिएं जिनको वे विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किए गए थे जिससे कि हम यह समाधान कर सकें कि परन्तुक की अपेक्षाओं का पालन किया गया था।

3. हम प्रदीप कुमार गांगुली के शपथपत्र में यह प्रकथन भी पाते हैं कि कैदी संख्या 10, 11, 12, 13, 15, 16 और 18, जिन्हें उनकी उन्मुक्ति से पूर्व मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध रखा गया था, "जब कभी न्यायालयों ने चाहा" न्यायालय के समक्ष नियमित रूप से पेश किए गए थे। जैसा कि हमने बता दिया है, यह प्रकथन पूर्ण रूप से असंतोषजनक है और इससे न्यायालय को यह जानकारी नहीं मिलती कि इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर किन तारीखों को प्रतिप्रेषित किया गया था। जब ये विशिष्टियां प्रस्तुत कर दी जाएंगी, तभी हम 'धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षाओं के अनुपालन के सम्बन्ध में अपना समाधान कर सकते हैं और इसीलिए हम बिहार राज्य को निदेश देते हैं कि वह आज से दो सप्ताह के भीतर शपथपत्र फाइल करके हमें ये विशिष्टियां दे।

4. हम उन तारीखों की विशिष्टियां भी प्राप्त करना चाहेंगे जिनको प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुत रांची केन्द्रीय जेल में विचारणाधीन कैदियों की सूची की मद संख्या 4, 5, 6, 7, 8, 13, 21, 22, 24, 28, 29, 30, 43, 56, 69, 71, 72, 79, 85, 92, 96, 97, 101, 129, 133, 136 से 142, 165 से 167, 170 से 174, 177, 191, 199, 210 और 236 के सामने दिए गए विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर प्रतिप्रेषण आदेश किए गए थे। ये विचारणाधीन कैदी छह-सात

वर्ष से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं और हम अपना यह समाधान करना चाहेंगे कि उनके मामले में धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन किया गया था। राज्य सरकार को इन विशिष्टियों से युक्त शपथपत्र आज से तीन सप्ताह के भीतर दे देना चाहिए। बड़ी संख्या में ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो लम्बी कालावधि से जेल में सड़ रहे हैं और धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन के सम्बन्ध में अपना समाधान करने के प्रयोजन से हमारे लिए इन विचारणाधीन कैदियों के व्यक्तिगत मामलों की जांच करना सम्भव नहीं है, किन्तु हम पटना उच्च न्यायालय से यह निवेदन करना चाहेंगे कि वह बिहार राज्य द्वारा 26 फरवरी, 1979 और 5 मार्च, 1979 को हमारे समक्ष फाइल की गई विचारणाधीन कैदियों की सूचियों में से कुछ नामों को चुने और अपना यह समाधान करे कि इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों द्वारा समय-समय पर नियत काल पर प्रतिप्रेषित किया गया है या नहीं, जैसा कि धारा 167(2) के परन्तुक द्वारा अपेक्षित है। हम बिहार राज्य को यह निदेश देना चाहेंगे कि वह विचारणाधीन कैदियों की इन सूचियों की प्रतियां आज से 10 दिन के भीतर पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को दे दे।

5. बिहार राज्य की ओर से हमारे समक्ष विचारणाधीन कैदियों की जो सूचियां फाइल की गई हैं, उनसे हम यह पाते हैं कि वे विचारणाधीन कैदी जिनके नाम, श्रीमती हिंगोरानी ने आज फाइल किए गए चार्ट में उपवर्णित किए हैं, उन कालावधियों से भी अधिक समय तक जेल में रहे हैं जो उनकी दोषसिद्धि पर उनके दण्ड की अधिकतम अवधि हो सकती थी। इससे दारुण स्थिति प्रकट होती है और मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता का पूर्ण अभाव झलकता है। इससे हमारी विधिक और न्यायिक पद्धति की क्रूरता प्रकट होती है, जो दैहिक स्वाधीनता के पूर्ण रूप से अन्यायोचित अवबन्धन के परिणामस्वरूप होने वाले इतने अतीव दुख और कष्ट से भी अप्रभावित रह सकती है। हमारे लिए यह समझना वास्तव में कठिन है कि राज्य सरकार इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर कारावास के प्रति, जो उनका विचारण प्रारम्भ हुए बिना ही वर्षों तक चलता रहा, असावधान कैसे रह सकी। बिहार राज्य में न्यायपालिका भी दोष के अपने हिस्से से नहीं बच सकती, क्योंकि वह इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती थी कि हजारों विचारणाधीन कैदी ऐसे विचारण की प्रतीक्षा में जेलों में सड़ रहे हैं जो कभी भी प्रारम्भ हुआ प्रतीत नहीं होता। हम यह समझने में असफल रहे हैं कि श्रीमती हिंगोरानी की सूची में उल्लिखित इन विचारणाधीन कैदियों के निरन्तर निरोध को न्यायोचित

कैसे ठहराया जा सकता है जबकि हम यह पाते हैं कि वे पहले ही उस अवधि से अधिक समय तक जेल में रहे हैं जिसके लिए, दोषसिद्ध होने पर उन्हें दण्ड दिया जा सकता था । वास्तव में, जेल की कुछ अवधि उनके जमाखाते में है । अतः हम निदेश देते हैं कि इन विचारणाधीन कैदियों को जिनके नाम श्रीमती हिंगोरानी द्वारा फाइल की गई सूची में दिए गए हैं, तत्काल छोड़ दिया जाए, क्योंकि उनके निरोध का जारी रखा जाना स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने वाला है ।

6. अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जिन पर जमानतीय अपराधों का आरोप है, किन्तु जो अभी भी सम्भवतया इसलिए जेल में हैं कि उनकी ओर से जमानत का कोई आवेदन नहीं किया गया है या वे इतने निर्धन हैं कि जमानत नहीं दे सकते । यह असामान्य बात नहीं कि जिन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता है, वे जमानत पर छूटने के अपने अधिकार से अनभिज्ञ होते हैं और अपनी निर्धनता के कारण वे ऐसे वकील की जो उन्हें जमानत के लिए आवेदन करने के उनके अधिकार से परिचित करा सके और इस निमित्त मजिस्ट्रेट को समुचित आवेदन करके जमानत पर छूटने में उनकी सहायता कर सके सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं । कभी-कभी मजिस्ट्रेट भी अपने समक्ष पेश किए गए विचारणाधीन कैदियों को स्वीय बन्धपत्र के आधार पर छोड़ने से इन्कार कर देते हैं और, प्रतिभुओं सहित, धन-विषयक जमानत का आग्रह करते हैं, जिसे विचारणाधीन कैदी अपनी निर्धनता के कारण देने में असमर्थ होते हैं, और इसलिए विचारण से पूर्व उनकी उन्मुक्ति की सम्भाव्यता प्रभावी रूप से समाप्त हो जाती है । यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पुकार-पुकार कर पर्याप्त और व्यापक विधिक सेवा कार्यक्रम चालू करने की बात कहती है, किन्तु अभी तक इन पुकारों का कोई प्रत्युत्तर मिला प्रतीत नहीं होता । हमारे विचार से विधिक प्रक्रिया के दायरे निर्धनों तक पहुंचाना, अन्याय के विरुद्ध उनकी संरक्षा करना और उनके सांविधानिक और कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए राष्ट्रव्यापी विधिक सेवा-कार्यक्रम न हो । अब मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय के परिणामस्वरूप यह सुस्थिर है कि जब अनुच्छेद 21 में यह उपबन्ध है कि

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 1 एस० सी० सी० 248.

किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा, तब इतना ही पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया जैसी कोई चीज़ हो, बल्कि जिस प्रक्रिया के अधीन किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वाधीनता से वंचित किया जा सकता है, उसे 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' होनी चाहिए। जो प्रक्रिया ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को जो इतना निर्धन है कि वकील नहीं रख सकता और इसीलिए जिसे विधिक सहायता के बिना विचारण करवाना पड़ता है, विधिक सेवा उपलब्ध नहीं कराती, उस प्रक्रिया को 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' समझना सम्भव नहीं है। जिस कैदी को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयास करना है, उसके लिए 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का यह आवश्यक लक्षण है कि उसे विधिक सेवा उपलब्ध होनी चाहिए। इसलिए न्यायालय ने **माधव हयावदनराव होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य**[1] में बताया है कि "प्रक्रियागत जटिलताओं, विधिक निदेशों और साक्ष्य की निकट से परीक्षा सहित, न्यायिक न्याय, वृत्तिक-प्रवीणता की ओर उन्मुख है और जहां एक पक्ष के लिए ऐसी समर्थक निपुणता का अभाव है, वहां विधि के अधीन समान न्याय की असफलता हो सकती है। हमारी न्याय-व्यवस्था, जो एंग्लो-अमरीकी नमूने पर बनी है, और हमारी न्यायिक प्रक्रिया, जो उसी प्रकार की विधिक तकनीक से प्रेरित है, विधि के अधीन समान न्याय की गाड़ी चलाने के लिए वकील की शक्ति के सहयोग को अनिवार्य बनाती है।" निर्धनों और अभावग्रस्त लोगों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा "युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत" प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। न्यायाधीशों और न्यायविदों द्वारा इस मत के समर्थन में की गई प्राधिकारिक घोषणाओं को उद्धृत करना आवश्यक नहीं है कि वकील की सेवा के बिना अभियुक्त व्यक्ति 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया से वंचित हो जाएगा। जस्टिस ब्लैक ने **गिडियान बनाम वेनराइट**[2] में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था:—

> "इन पूर्व-निर्णयों द्वारा ही नहीं, बल्कि तर्क और विचार द्वारा भी हम से यह मानने की अपेक्षा है कि हमारी आपराधिक न्याय-पद्धति में जिसमें विरोधी पक्ष होते हैं, न्यायालय में आने वाले उस व्यक्ति के लिए जो वकील नहीं रख सकता, उचित विचारण तब तक सुनिश्चित

---

[1] [1979] 3 उम० नि० प०—(1978) 3 एस० सी० सी० 544.

[2] [1962] 372 यू० एस० 335—9 ला० एड० एडीशन सेकण्ड 799.

नहीं किया जा सकता जब तक कि उनके लिए काउन्सेल की व्यवस्था न कर दी जाए। हमें यह स्पष्ट बात प्रतीत होती है। राज्य और संघ दोनों की सरकारें बिल्कुल उचित ही अपराधों के अभियुक्त प्रतिवादियों के विचारण के लिए तन्त्र स्थापित करने के लिए बड़ी-बड़ी धनराशि व्यय करती हैं। अभियोजन के लिए वकील सर्वत्र व्यवस्थित समाज में लोक-हित की संरक्षा के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। इसी प्रकार, अपराध से आरोपित बहुत कम ऐसे प्रतिवादी हैं जो अपने प्रतिवाद तैयार करने और प्रस्तुत करने के लिए ऐसे सर्वोत्तम वकील रखने में असफल रहते हों, जिन्हें वे प्राप्त कर सकते हैं। यह बात कि सरकार अभियोजन के लिए वकील रखती है और प्रतिवादी, जिनके पास धन होता है, प्रतिवाद के लिए वकील रखते हैं, इस व्यापक विश्वास का दृढ़तम संकेत है कि दाण्डिक न्यायालयों में वकील आवश्यकता के लिए होते हैं, सुखोपभोग के लिए नहीं होते। यह हो सकता है कि कुछ देशों में अपराध से आरोपित व्यक्ति का काउन्सेल रखने का अधिकार उचित विचारण के लिए मौलिक और आवश्यक न समझा जाता हो, किन्तु हमारे देश में ऐसा समझा जाता है। प्रारम्भ से ही हमारे राज्यों के और राष्ट्रीय संविधानों और विधियों में ऐसे प्रक्रियागत और अधिष्ठायी सुरक्षोपायों पर बहुत जोर दिया गया है जो निष्पक्ष अधिकरणों के समक्ष, जिनमें प्रत्येक प्रतिवादी विधि के समक्ष समान होता है, उचित विचारणों को सुनिश्चित करने के लिए परिकल्पित हैं। इस श्रेष्ठ विचार को इस दशा में मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता, यदि अपराध से आरोपित निर्धन व्यक्ति को अपने पर अभियोग लगाने वाले का सामना अपनी सहायता के लिए वकील के बिना करना पड़ता है।"

उचित प्रक्रिया के आवश्यक तत्व के रूप में निःशुल्क विधिक सेवा का वर्णन **जॉन रिचर्ड आर्गरसिंगर बनाम रेमण्ड हेमलिन**[1] में न्यायाधिपति डगलस के निर्णय से उद्धृत निम्नलिखित उद्धरण में भी पाया जाता है :—

"अनेक मामलों में सुनवाई के अधिकार का उस दशा में कोई फायदा नहीं है, यदि उसके अन्तर्गत काउन्सेल द्वारा सुनवाई का

[1] [1972] 404 यू० एस० 25=35 लाइयर्स एडीशन सैकण्ड 530.

अधिकार न आता हो। बुद्धिमान और शिक्षित सामान्य व्यक्ति के पास भी विधि के विज्ञान का थोड़ा ही ज्ञान होता है और कभी-कभी तो कुछ भी नहीं होता। अपराध का आरोप लगने पर वह साधारणतया स्वयं इस बात का अवधारण करने में असमर्थ होता है कि अभ्यारोपण उचित है या अनुचित। वह साक्ष्य के नियमों से अपरिचित होता है। काउन्सेल की सहायता न मिलने पर उसका विचारण समुचित आरोप के बिना हो सकता है और उसे असक्षम साक्ष्य या विवाद्यक से असंगत साक्ष्य या अन्यथा अग्राह्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है। उसमें अपने परिवाद की पर्याप्त रूप से तैयारी के लिए कुशलता और ज्ञान दोनों का अभाव होता है, चाहे उसके पास पूर्ण ज्ञान होता है। उसे अपने विरुद्ध कार्यवाही में पग-पग पर काउन्सेल के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसके बिना उसे, अपराधी न होने पर भी, दोषसिद्धि का खतरा होता है, क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि अपनी निर्दोषिता को कैसे सिद्ध किया जाए। यदि यह बात बुद्धिमान लोगों के विषय में सत्य है, तो अज्ञानी और अशिक्षित या कमजोर बुद्धि वाले लोगों के विषय में तो बहुत अधिक सत्य है।

यह हो सकता है कि कुछ देशों में अपराध से आरोपित व्यक्ति के काउन्सेल के अधिकार को उचित विचारण के लिए मौलिक और आवश्यक न समझा जाता हो, किन्तु हमारे देश में ऐसा समझा जाता है। प्रारम्भ से ही हमारे राज्यों के और राष्ट्रीय संविधानों और विधियों में ऐसे प्रक्रियागत और अधिष्ठायी सुरक्षोपायों पर बहुत जोर दिया गया है जो निष्पक्ष अधिकरणों के समक्ष, जिनमें प्रत्येक प्रतिवादी विधि के समक्ष समान होता है, उचित विचारणों को सुनिश्चित करने के लिए अभिकल्पित है। इस श्रेष्ठ विचार को उस दशा में मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता, यदि अपराध से आरोपित निर्धन व्यक्ति को अपने पर अभियोग लगाने वाले का सामना अपनी सहायता के लिए वकील के बिना करना पड़ता है।

पावेल और गिडियान वाले दोनों ही मामलों में घोर अपराध अन्तर्वलित थे। किन्तु उनमें दिया गया तर्क ऐसे प्रत्येक दाण्डिक विचारण में सुसंगत है जिनमें अभियुक्त को उसकी स्वाधीनता से वंचित किया जाता है।

× × × ×

> न्यायालयों को उस सम्भावित दण्ड पर विचार करना चाहिए जो दोषसिद्ध होने पर दिया जाएगा। सम्भावित परिणाम जितने अधिक गम्भीर होंगे, इस बात की सम्भाव्यता उतनी ही अधिक होगी कि वकील नियुक्त किया जाना चाहिए....न्यायालयों को प्रत्येक मामले की विशिष्ट बातों पर विचार करना चाहिए। निस्सन्देह उनका पूर्वानुमान सर्वाधिक कठिन है। एक सुसंगत बात किसी प्रतिवादी का अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने सम्बन्धी सक्षमता है।" (रेखांकन हमारे द्वारा जोर देने के लिए किया गया)

7. हम मौलिक सांविधानिक नीति-निदेशक तत्व के अनुच्छेद 39-क का भी उल्लेख करना चाहेंगे जो निम्नलिखित रूप में है :—

> "39-क. समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता:—राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर, सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या अन्य प्रकार से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

इस अनुच्छेद में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि निःशुल्क विधिक सेवा 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का अभिन्न अंग है, क्योंकि इसके बिना आर्थिक या अन्य आवश्यकताओं वाला व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जाएगा। अतः निःशुल्क विधिक सेवा 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का ऐसे व्यक्ति के लिए आवश्यक लक्षण है जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और उसके बारे में यह अवश्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 21 की गारन्टी में अन्तर्निहित है। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो निर्धनता, गरीबी या सम्पर्कहीनता की स्थितियों जैसे कारणों से वकील रखने या विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है और राज्य को यह परमादेश है कि वह अभियुक्त व्यक्ति के लिए उस दशा में वकील की व्यवस्था करे जब मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताओं में ऐसा अपेक्षित है, परन्तु, निस्सन्देह, यह तभी होगा जब कि अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था पर आपत्ति नहीं करता। इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि

प्रतिप्रेषण की अगली तारीखों को जब जमानतीय अपराधों से आरोपित विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए जाएंगे, तब राज्य सरकार जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से अपने खर्च पर उनके लिए वकील की व्यवस्था करेगी, परन्तु यह तब जबकि ऐसे विचारणाधीन कैदियों की ओर से ऐसे वकील पर कोई आपत्ति न की जाए और यदि जमानत के लिए आवेदन किया जाएगा, तो मजिस्ट्रेट उसका निपटारा तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में दी गई प्रमुख बातों के अनुसार करेगा। राज्य सरकार आज से छह सप्ताह की कालावधि के भीतर पटना उच्च न्यायालय को यह रिपोर्ट देगी कि उसने इस निदेश का अनुपालन कर दिया है।

8. ऐसे विभिन्न विचारणाधीन कैदी भी हैं जो उस अधिकतम दण्ड की आधी कालावधि से अधिक कालावधियों तक जेल में रह चुके हैं जो उन्हें उस दशा में दी जा सकती थी यदि उन पर आरोपित अपराधों के लिए उनकी दोषसिद्धि कर दी जाती। उदाहरण के लिए, बुद्धु माहली, जो रांची केन्द्रीय जेल में विचारणाधीन कैदियों की सूची में मद संख्या 1 है, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 और भारतीय आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराधों के लिए 21 नवम्बर, 1972 से जेल में है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन अपराध के लिए अधिकतम दण्ड 10 वर्ष है जबकि भारतीय आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपराध के लिए इससे बहुत कम दण्ड है। फिर भी बुद्धु माहली छह वर्ष से भी अधिक के लिए विचारणाधीन कैदी के रूप में जेल में रह चुका है। इसी प्रकार जयराम मांझी, सोमरा मांझी, बुधन मुण्डा और गुलाब मुण्डा, जो रांची केन्द्रीय जेल में परिरुद्ध विचारणाधीन कैदियों की सूची में मद संख्या 2 से 7 तक हैं, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन अपराध के लिए, जो 10 वर्ष के कारावास की अधिकतम अवधि से दण्डनीय है, 21 फरवरी, 1974 से अर्थात् पांच-पांच वर्ष से अधिक की कालावधि के लिए विचारणाधीन कैदियों के रूप में जेल में रह रहे हैं। ऐसे असंख्य अन्य उदाहरण हैं जो बिहार राज्य की ओर से फाइल की गई विचारणाधीन कैदियों की सूची में से आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं और जिनमें विचारणाधीन कैदी कारावास की उस अधिकतम अवधि के आधे से भी अधिक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें, दोषसिद्ध होने पर, दण्डादिष्ट किया जा सकता था। इस बात का कोई कारण नहीं है कि इन

विचारणाधीन कैदियों को जेल में केवल इसलिए क्यों सड़ने दिया जाए क्योंकि राज्य युक्तियुक्त कालावधि के भीतर उनका विचारण करने की स्थिति में नहीं है। यह सम्भव है कि उनमें से कुछ को, विचारण किए जाने पर, उनके विरुद्ध आरोपित अपराधों से दोषमुक्त कर दिया जाए और ऐसी हालत में वे ऐसे अपराधों के लिए अनेक वर्ष जेल में बिता चुके होंगे जिनके विषय में अन्ततोगत्वा यह निष्कर्ष है कि वे उनके द्वारा नहीं किए गए थे। न्यायप्रशासन की हमारी पद्धति में इन लोगों का विश्वास क्या होगा? क्या उनके मन में उस समाज के विरुद्ध निराशा और कटुता की भावना पैदा हो नहीं जाएगी जो उन्हें ऐसे अपराधों के लिए अनेक वर्षों तक जेल में रखता है जो उन्होंने किए ही नहीं थे? इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण शीघ्रता से किया जाए जिससे कि ऐसे मामलों में जिनमें जमानत, विवेकाधिकार का समुचित प्रयोग करते हुए, नामंजूर कर दी जाती है, अभियुक्त व्यक्ति नितान्त आवश्यक कालावधि से अधिक कालावधि तक जेल में न रहे, क्योंकि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो कारावास की उस अधिकतम अवधि के आधे से अधिक तक के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें, दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था, इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि अगली प्रतिप्रेषण की तारीखों को जब उन्हें मजिस्ट्रेटों या सेशन न्यायालयों के समक्ष पेश किया जाएगा, तब राज्य सरकार उनके लिए जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन और प्रतिप्रेषण का विरोध करने के प्रयोजन से अपने खर्च से वकील की व्यवस्था करेगी, परन्तु यह तब जब उनकी ओर से ऐसे वकील पर कोई आपत्ति न की जाए और यदि जमानत के लिए आवेदन किया जाता है तो, यथास्थिति, मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायालय उसका निपटारा तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में उपदर्शित प्रमुख मार्गदर्शन के अनुसार करेगा। राज्य सरकार इस निदेश का अनुपालन यथा-सम्भव आज से छह सप्ताह की कालावधि के भीतर करेगी और पटना उच्च न्यायालय को अनुपालन की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

9. हम इस अवसर पर भारत सरकार और राज्य सरकारों के मन पर यह प्रभाव डालना चाहते हैं कि सामान्य व्यक्ति के पास न्याय पहुंचाने की दृष्टि से गतिशील और व्यापक विधिक सेवा के कार्यक्रम की तत्काल आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश, आजकल हमारे देश में निर्धन लोग न्याय-व्यवस्था का उपयोग, उस पर अधिक खर्च होने के कारण नहीं कर सकते, जिसके परिणामस्वरूप हमारी विधि-व्यवस्था को उनके जीवन की दशाओं में परिवर्तन करने

और उन्हें न्याय प्रदान करने के सामर्थ्य से विश्वास उठता जा रहा है। जब कभी निर्धन लोग विधि-व्यवस्था के सम्पर्क में आते है, तब उन्हें सदैव हानि उठानी पड़ती है। वे सदैव "निर्धनों की विधि" की बजाय "निर्धनों के लिए विधि" के सम्पर्क में आते है। वे विधि को रहस्यमय और निषेध करने वाली चीज समझते है, जो सदैव उनसे कुछ छीनती है, और उसे सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन करने और उनको अधिकार तथा फायदे प्रदान करके, उनके जीवन की दशा सुधारने वाली सकारात्मक और रचनात्मक सामाजिक युक्ति नहीं समझते। परिणाम यह है कि समुदाय के कमजोर वर्गों का विश्वास विधि-व्यवस्था पर नहीं रहा। अतः यह आवश्यक है कि हमें विधिकता में समान न्याय का संचार करना चाहिए और विधिक सेवा की गतिशील तथा क्रियाशील स्कीम द्वारा ही ऐसा किया जा सकता है। हम सरकार को माननीय न्यायाधिपति ब्रेनन के निम्नलिखित प्रसिद्ध शब्दों को स्मरण कराना चाहेंगे :—

> "मानव हृदय में अन्याय की निरन्तर भावना से अधिक कोई चीज नहीं चुभती। हम बीमारी सहन कर सकते है। किन्तु अन्याय हमें क्रान्ति की प्रेरणा देता है। जब केवल धनी व्यक्ति ही विधि का सन्देहपूर्ण विलासिता की वस्तु के रूप में उपभोग करते है और निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे इसलिए प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि इसका व्यय इसे उनकी पहुंच से बाहर कर देता है, तब स्वतन्त्र लोकतन्त्र के निरन्तर अस्तित्व को जो खतरा है, वह काल्पनिक नहीं, बल्कि बहुत वास्तविक होता है, क्योंकि लोकतन्त्र का अस्तित्व ही न्यायतन्त्र को इतना प्रभावशाली बना देने पर निर्भर है कि प्रत्येक नागरिक उसमें विश्वास करे और उसकी निष्पक्षता और उसके औचित्य का फायदा उठाए।"

हम समृद्ध अमेरिका के सम्बन्ध में वर्षों पहले सीमैन एब्बट द्वारा कहे गए निम्नलिखित शब्दों को भी स्मरण कराना चाहेंगे :—

> "यदि कभी ऐसा समय आ जाए, जब इस नगर में केवल धनी लोग ही सन्देहपूर्ण विलासिता की वस्तु के रूप में विधि का उपभोग कर सकें, जब निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे प्राप्त न कर सकें और जब न्यायालय-कक्ष का द्वार केवल सोने की चाबी से ही खोला जा सके, तब क्रान्ति के बीज बो दिए

> जाएंगे, क्रान्ति की अग्नि सुलग जाएगी और वह लोगों के हाथों में रख दी जाएगी और उसके बाद लोग जो क्रान्ति करेंगे, वह लगभग न्यायोचित होगी।"

हम भारत सरकार और राज्य सरकारों से यह दृढ़ सिफारिश करना चाहेंगे कि अब समय आ गया है कि देश में व्यापक विधिक सेवा कार्यक्रम चालू किया जाए। यह अनुच्छेद 14 में अन्तर्निहित समान न्याय और अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त प्राण और स्वाधीनता के अधिकार का परमादेश ही नहीं है, बल्कि अनुच्छेद 39-क में दिए गए सांविधानिक निदेश की अनिवार्यता भी है।

10. प्रत्यर्थियों की ओर से फाइल किए गए प्रतिशपथपत्र से हम पाते हैं कि राज्य सरकार ने इस बात के कोई कारण नहीं बताए हैं कि विचारणाधीन बंदियों का विचारण प्रारम्भ करने में इतना अधिक विलम्ब क्यों हुआ जैसा कि तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले हमारे पूर्ववर्ती निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है, शीघ्रता से विचारण अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत 'युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत' प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है और यह राज्य का सांविधानिक दायित्व है कि वह ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करे जो अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करे। राज्य सरकार को अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के सांविधानिक अधिकार से इस आधार पर वंचित करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती कि राज्य के पास शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक व्यय उपगत करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं है। राज्य की वित्तीय कठिनाइयां हो सकती हैं और व्यय के लिए इसकी पूर्विकताएं हो सकती हैं किन्तु, जैसा कि न्यायालय ने जेम्स हूंम बनाम जस्टिस जामिन बेंमैल्कम[1] में कहा है : "विधि किसी सरकार को निर्धनता के आधार पर अपने नागरिकों को सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने की अनुज्ञा नहीं देती।" न्यायाधिपति ब्लैकमन द्वारा विलियम किंग जैकसन बनाम ओ० ई० बिशप[2] में कही गई निम्नलिखित बात भी उल्लेखनीय है :—

> "इस समय मानवीय विचारों और सांविधानिक अपेक्षाओं का मान धन सम्बन्धी विचारों से नहीं हो सकता......"

---

[1] [1974] 377 एफ० सप्लीमेण्ट 995.

[2] [1968] 404 एफ० सैकण्ड 571.

इसी प्रकार जस्टिस लारेन्स हाल्ट बनाम राबर्ट सार्वेर[1] में भी, जिसकी 442 एफ० सप्ली० 362 में पुष्टि कर दी गई थी, न्यायालय ने सुधार-गृहों की व्यवस्था बनाए रखने सम्बन्धी राज्य की बाध्यता के विषय में जो आठवें संशोधन का अतिक्रमण नहीं करती थी, उचित रूप से और वाक्पटुता के साथ कहा है :—

> 'इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहना चाहिए कि प्रत्यर्थियों का वर्तमान असांविधानिकताओं को समाप्त करने का दायित्व इस बात पर निर्भर नहीं है कि विधानमण्डल क्या करता है या राज्यपाल क्या करता है या वास्तव में प्रत्यर्थी क्या करने में समर्थ है। यदि सुधार-गृह का प्रवर्तन अरकंसास द्वारा किया जाना है तो उसे ऐसी व्यवस्था करनी होगी जो संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान द्वारा अपेक्षित है।''

राज्य अभियुक्त के लिए शीघ्रता से विचारण की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से वित्तीय या प्रशासनिक अक्षमता का विवेचन करके नहीं बच सकता। राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह शीघ्रता से विचारण सुनिश्चित करे और इस प्रयोजन के लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह राज्य को करना पड़ेगा। इस न्यायालय की भी लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में और सजग प्रहरी के रूप में राज्य को आवश्यक निदेश जारी करके, जिनमें सकारात्मक कार्यवाही करना, जैसे अन्वेषणतन्त्र में बढ़ोतरी करना और उसे सबल बनाना, नए न्यायालय स्थापित करना, नए न्यायालय भवनों का निर्माण करना, न्यायालयों के लिए अधिक कर्मचारिवृन्द और साधनों की व्यवस्था करना, अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति करना और शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के लिए प्रकल्पित अन्य उपाय करना सम्मिलित है, अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार को प्रवृत्त करने की सांविधानिक बाध्यता भी है। हम यह पाते हैं कि वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायालयों ने, जहां तक कारागार-सुधार का सम्बन्ध है, आठवें संशोधन की क्रियाशील व्यापकता का उपयोग करके यह गतिशील और रचनात्मक भूमिका अपनायी है। न्यायालयों ने जस्टिस लारेन्स होल्ट बनाम राबर्ट सार्वेर, चार्ल्स जोन्स बनाम सोल विट्टनबर्ग[2], एन० एच० न्यूमैन बनाम स्टेट आफ

[1] [1970] 309 एफ० सप्लीमेन्ट 362.

[2] [1971] 330 एफ० सप्लीमेन्ट 707.

अलबामा[1] और मजारैथ मेट्स बनाम जान कोलियर[2] जैसे विनिश्चयों के माध्यम से प्राचीन युग के अनेक कारागारों और जेलों में सारवान् सुधार करने का आदेश दिया है। अन्तिम उल्लिखित मामले में न्यायालय ने प्रकथन किया कि उसका "डिक्री को इस प्रकार बनाने का कर्तव्य है जिसमें प्रतिवादियों से पार्चमैन की उन दशाओं और परिस्थितियों को समाप्त करने की अपेक्षा होगी जिन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का अतिक्रमण करने वाली पाया गया है" और इस कर्तव्य के निर्वहन में न्यायालय ने राज्य के सुधार-गृहों में परिरुद्ध व्यक्तियों की दशा सुधारने के लिए विभिन्न निदेश दिए। सांविधानिक अधिकारों की संरक्षा करने की इस न्यायालय की शक्तियां व्यापकतम् हैं और हमें इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि इस न्यायालय को उसी प्रकार का सक्रिय दृष्टिकोण क्यों नहीं अपनाना चाहिए और राज्य को ऐसे निदेश क्यों नहीं जारी करने चाहिएं जिनमें शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार का प्रवर्तन सुनिश्चित करने की दृष्टि से सकारात्मक कार्यवाही करना अन्तर्वलित है। किन्तु न्यायालय को इस सांविधानिक बाध्यता का निर्वहन करने में समर्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायालय के पास समस्या पर प्रभाव डालने वाली अपेक्षित जानकारी होनी चाहिए। इसलिए हम बिहार राज्य को निदेश देते हैं कि वह आज से तीन सप्ताह के भीतर बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों और सेशन न्यायालयों की अवस्थितियों के बारे में, उन न्यायालयों में लम्बित विचारणों का वर्ष प्रति वर्ष का विवरण देते हुए उन न्यायालयों में से प्रत्येक में 31 दिसम्बर, 1978 को लम्बित मामलों की कुल संख्या सहित विवरण दे और यह भी स्पष्ट करे की उनमें से ऐसे मामलों का निपटारा करना सम्भव क्यों नहीं हो सकता है जो छह मास से भी अधिक से लम्बित है। यदि पटना उच्च न्यायालय भी आज से तीन सप्ताह के भीतर हमें उपर्युक्त विवरण भेजे तो बहुत अच्छा होगा, क्योंकि उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष में ऐसा अभिलेख अवश्य होगा जिससे इन विवरणों को आसानी से एकत्र किया जा सकता है। हम बिहार राज्य को यह निदेश भी देते हैं कि वह आज से तीन सप्ताह के भीतर उन मामलों की संख्या की विशिष्टियां दे जिनमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल कर दी गई है और 31 दिसम्बर, 1978 को राज्य के प्रत्येक उपखण्ड में पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए लम्बित है और जहां ऐसे मामले छह मास से अधिक से अन्वेषण के

---

[1] [1972] 349 एफ० सप्लीमेण्ट 278.

[2] [1972] 349 एफ० सप्लीमेण्ट 881.

लिए लम्बित है, वहां बिहार राज्य स्कूल कम से यह कारण बताएगा कि अन्वेषण प्रक्रिया में इतना विलम्ब क्यों हुआ। अब रिट पिटीशन सुनवाई और अन्तिम निपटारे के लिए 4 अप्रैल, 1979 को प्रस्तुत किया जाएगा। हमने सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन को पहले ही सूचना जारी कर दी है कि वह उपस्थित होकर रिट पिटीशन में उत्पन्न विवाद्यकों पर अपना निवेदन करे, क्योंकि वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमें आशा और विश्वास है कि सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन सूचना का उत्तर देगा और रिट पिटीशन की सुनवाई के समय न्यायालय की सहायता के लिए उपस्थित होगा।

तदनुसार आदेश दिया गया।

न्या०/धी०

(1980) 2 उम० नि० प० 793:
(1980) 1 SCC 108:
AIR 1979 SC 1377:

हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussainara Khatoon and Others

v.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(19 अप्रैल, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० पी० सेन)

संविधान—अनुच्छेद 21—विचारणाधीन कैदियों को उस कालावधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाना जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2)—धारा 167(2) का परन्तुक—यदि विचारणाधीन कैदी, यथास्थिति, 90 या 60 दिन तक कारावास में रह चुका हो, तो उसे और आगे न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश देने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणाधीन कैदी को यह बता दिया जाना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित होने का हकदार है।

संविधान—अनुच्छेद 21 और 39-क—ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था किए जाने का अधिकार है जो निर्धनता या सम्पर्क वर्जित स्थिति के कारण किसी विधि व्यवसायी की सेवा प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रत्यर्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे।

इनमें से कुछ विचारणाधीन कैदी उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में बन्द थे जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था। ये कैदी अपनी निर्धनता के कारण अपनी जमानत देने और अपने बचाव के लिए वकील की सेवा प्राप्त करने में असमर्थ थे। उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया। दण्ड की अधिकतम सीमा से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों की उन्मुक्ति का आदेश देते हुए और यथास्थिति, 90 या 60 दिन तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों को और आगे न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश देने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा उन्हें यह बता दिए जाने का आदेश देते हुए कि वे जमानत पर उन्मोचित होने के हकदार हैं तथा प्रत्यर्थी को निर्धन विचारणाधीन कैदियों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था करने का निदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो ऐसे व्यक्तियों के प्रवर्ग में आते हैं जो अधिकतम अवधियों से भी अधिक कालावधियों तक उनका विचारण आरम्भ हुए बिना ही, निरुद्ध रहे हैं। हम निदेश देते हैं कि उन्हें तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए, क्योंकि उनके निरोध को जारी रखना स्पष्ट रूप से विधि-विरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण है। (पैरा 1)

कुछ पिटीशनरों और अन्य विचारणाधीन कैदियों को अनेक बार मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया है और मजिस्ट्रेट निरन्तर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण के आदेश देते रहे हैं। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इन असंख्य अवसरों में से प्रत्येक अवसर पर जब इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता था और मजिस्ट्रेटों ने प्रतिप्रेषण के आदेश दिए थे, तब उन्हें इन विचारणाधीन कैदियों को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता के बारे में अपनी बुद्धि का प्रयोग करना होगा। इस बात पर भी बहुत सन्देह है कि गिरफ्तार किए जाने की तारीख से, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन की समाप्ति पर विचारणाधीन कैदियों का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया था कि वे धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं। जब किसी विचारणाधीन कैदी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है और वह, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन तक निरुद्ध रह चुका है, तब मजिस्ट्रेट को न्यायिक अभिरक्षा में आगे प्रतिप्रेषण का आदेश देने से पूर्व

विचारणाधीन कैदी को यह बता देना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित किए जाने का हकदार है। राज्य सरकार को भी यह चाहिए कि वह अपने खर्चे पर विचारणाधीन कैदी के लिए वकील की व्यवस्था इस दृष्टि से करे जिससे कि धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन ऐसा कैदी अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए जमानत के लिए आवेदन करने में समर्थ हो सके। मजिस्ट्रेट को भी यह भी सुनिश्चित करने की सावधानी बरतनी चाहिए कि विचारणाधीन कैदी को राज्य के खर्चे पर वकील की सहायता प्राप्त करने सम्बन्धी उसका अधिकार उसके लिए सुनिश्चित हो सके है। (पैरा 3)

ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जो दरिद्रता, निर्धनता या सम्पर्क-वर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील रखने में और विधिक सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधि सेवाओं की व्यवस्था करवाने का सांविधानिक अधिकार है और राज्य का यह सांविधानिक परमादेश है कि वह, यदि न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित हो तो, ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करे। इस बात का पता नहीं है कि राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के लिए जिन पर ऐसे अपराधों का आरोप है जिनमें स्वाधीनता का वंचन सम्भव है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील रखने में असमर्थ हैं, निःशुल्क विधिक सेवाओं की व्यवस्था करने के प्रयोजन से किसी तन्त्र की स्थापना की है या नहीं। इस सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि संविधान के अधिनियम की तारीख से 30 वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं और किसी भी राज्य सरकार के लिए संविधान के इस समादेश का पालन न करने के लिए बहाना बना सकना सम्भव नहीं है। (पैरा 6)

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57.

पिटीशनर की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री यू० पी० सिंह और एस० एन० झा

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने अपनी ओर से तथा न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० पी० सेन की ओर से न्यायालय का निम्नलिखित आदेश 19 अप्रैल, 1979 को दिया।

आदेश

न्यायाधिपति भगवती—

यह रिट पिटीशन हमारे समक्ष अतिरिक्त निदेशों के लिए पुनः आया है। बिहार राज्य की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री० यू० पी० सिंह ने हमें सूचित किया है कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश में जो निदेश दिए थे, उनके अनुसरण में बिहार राज्य ने पहले ही 70 विचारणाधीन कैदियों को उन्मोचित कर दिया है, जिनके नाम श्रीमती हिंगोरानी द्वारा 9 मार्च, 1979 को फाइल की गई सारणी में दर्शित थे। यह बड़े खेद की बात है कि ये विचारणाधीन कैदी उन कालावधियों से भी अधिक तक विचारण के बिना जेल में रहे जिन अधिकतम अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्ध किए जाने पर दण्डित किया जा सकता था। हमारी समझ में यह नहीं आता कि इन अभागे व्यक्तियों को विचारण के बिना अयुक्तियुक्त रूप से इतनी लम्बी कालावधियों के लिए निरुद्ध रखने का राज्य के पास कौन-सा नैतिक या सदाचार विषयक न्यायौचित्य हो सकता है। हमें इस बात से सन्तोष हुआ है कि वे एक बार पुनः स्वतन्त्रता की सांस ले सकेंगे। किन्तु हम यह पाते हैं कि अभी भी अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो ऐसे व्यक्तियों के प्रवर्ग में आते हैं जो अधिकतम अवधियों से भी अधिक कालावधियों तक, उनका विचारण आरम्भ हुए बिना ही, निरुद्ध रहे हैं। श्रीमती हिंगोरानी ने 16 अप्रैल, 1979 को रिट पिटीशन की सुनवाई के समय हमारे समक्ष एक दूसरी सारणी फाइल की थी जिसमें उन विचारणाधीन कैदियों में से कुछ के नाम और विशिष्टियां दी गई थीं जिन्हें हमारे द्वारा दिए गए पूर्ववर्ती आदेश का फायदा अभी तक नहीं मिला है। ऐसे 59 विचारणाधीन कैदी हैं जिनके नाम और विशिष्टियां इस सारणी में उपवर्णित हैं और हम निदेश देते हैं कि उन्हें तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए क्योंकि उनके निरोध को जारी रखना स्पष्ट रूप से विधि-विरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण है। अनेक अन्य विचारणाधीन कैदी भी हैं जिन पर एक से अधिक अपराधों का आरोप है और यदि हम इस उपधारणा के आधार पर अग्रसर हों कि राज्य उनकी दोषसिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो जाएगा और उन्हें अधिकतम दण्ड दिया जाएगा और ऐसे दण्ड न्यायालय द्वारा अनुसूत सामान्य

प्रक्रिया के अनुसार समवर्ती नहीं होंगे, बल्कि क्रमवर्ती होंगे, तो भी वे उस कुल कारावास को पहले ही भुगत चुके हैं जो उन्हें दिया जा सकता था और उन्हें आगे निरुद्ध रखने का कोई कारण नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतया एक से अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि होने पर अधिरोपित दण्ड समवर्ती होते हैं और यदि हम इस उपधारणा पर अग्रसर हों, जो अधिक वास्तविक है तो यह पाया जाएगा कि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो उस अधिकतम अवधि से अधिक कालावधियों तक जेल में पहले ही रह चुके हैं जो उस दशा में उन पर अधिरोपित की जा सकती थी, यदि उन्हें उन सभी अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता जिनका उन पर आरोप है। हमने श्रीमती हिंगोरानी से प्रार्थना की है कि वह विचारणाधीन कैदियों के उपर्युक्त दो प्रवर्गों को पृथक् रूप से दर्शित करते हुए सारणी तैयार करें ताकि हम रिट पिटीशन की अगली सुनवाई के समय उनके सम्बन्ध में समुचित आदेश पारित कर सकें। राज्य सरकार की ओर से उपस्थित श्री० यू० पी० सिंह इस सारणी को तैयार करने में श्रीमती हिंगोरानी की सहायता करेंगे, क्योंकि श्रीमती हिंगोरानी ने इस लोक हित की मुकदमेबाजी को सार्वजनिक कर्तव्य के रूप में लिया है और इसलिए उसके साधन सीमित होने अनिवार्य हैं।

2. हमें सूचित किया गया है कि विचारणाधीन कैदियों में कुछ ऐसे हैं जो पागल या विकृतचित्त व्यक्ति हैं। यह समझना कठिन है कि ऐसे व्यक्ति को अन्य विचारणाधीन कैदियों के साथ एक ही जेल में कैसे रखा जा सकता था। हम रिट पिटीशन की अगली सुनवाई से पूर्व फाइल किए जाने वाले शपथपत्र द्वारा राज्य सरकार से यह जानना चाहेंगे कि इन व्यक्तियों को किन परिस्थितियों में विचारणाधीन कैदियों के रूप में साधारण जेलों में रखा गया है और राज्य सरकार की उनके सम्बन्ध में क्या करने की प्रस्थापना है। श्रीमती हिंगोरानी इन व्यक्तियों के नाम और विशिष्टियां दर्शित करने वाली सूची तैयार करेंगी और राज्य सरकार की ओर से श्री यू० पी० सिंह इस मामले में आवश्यक सहायता देंगे। श्रीमती हिंगोरानी रिट पिटीशन की अगली सुनवाई के समय सूची फाइल कर सकती हैं ताकि हम विचारणाधीन कैदियों के इस प्रवर्ग के सम्बन्ध में अन्तिम आदेश पारित कर सकें।

3. हम पाते हैं कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश में जो निदेश दिए थे, उनके अनुसरण में पटना केन्द्रीय जेल के अधीक्षक भावेश्वरी प्रसाद पाण्डे ने, उन तारीखों को दर्शित करने वाली सारणी सहित जिनको पिटीशनर संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और 17 को, जो

पटना केन्द्रीय जेल में निरुद्ध थे, स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित किए जाने से पूर्व दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन में मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था, तारीख 4 अप्रैल, 1979 वाला शपथपत्र फाइल किया है। इसी प्रकार का तारीख 4 अप्रैल, 1979 वाला मुजफ्फरपुर जेल के अधीक्षक प्रदीप कुमार गांगुली ने उन तारीखों को दर्शित करने वाले चार्ट सहित फाइल किया है, जिनको पिटीशनर संख्या 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16 और 18 को, जो पहले मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल में निरुद्ध थे, स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित किए जाने से पूर्व धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन करते हुए मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था। रांची केन्द्रीय जेल के अधीक्षक भुवन मोहन मुण्डा ने भी उन तारीखों को दर्शित करने वाली सारणी सहित तारीख 12 अप्रैल, 1979 वाला शपथपत्र फाइल किया है जिनको तारीख 9 मार्च, 1979 वाले हमारे आदेश में निर्दिष्ट कुछ विचारणाधीन कैदियों को धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन करते हुए मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था। इन सारणियों से यह स्पष्ट है कि कुछ पिटीशनरों और अन्य विचारणाधीन कैदियों को, जिनका, इन सारणियों में उल्लेख किया गया है, अनेक बार मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया है और मजिस्ट्रेट निरन्तर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण के आदेश देते रहे हैं। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इन असंख्य अवसरों में से प्रत्येक अवसर पर जब इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता था और मजिस्ट्रेटों ने प्रतिप्रेषण के आदेश दिए थे, तब उन्होंने इन विचारणाधीन कैदियों को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता के बारे में अपनी बुद्धि का प्रयोग किया होगा। हमें इस बात पर भी बहुत संदेह है कि गिरफ्तार किए जाने की तारीख से यथास्थिति 90 दिन या 60 दिन की समाप्ति पर विचारणाधीन कैदियों का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया था कि वे धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं। जब किसी विचारणाधीन कैदी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है और वह, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन तक निरुद्ध रह चुका है, तब मजिस्ट्रेट को न्यायिक अभिरक्षा में आगे प्रतिप्रेषण का आदेश देने से पूर्व विचारणाधीन कैदी को यह बता देना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित किए जाने का हकदार है। राज्य सरकार को यह भी चाहिए कि वह अपने खर्चे पर विचारणाधीन कैदी के लिए वकील की व्यवस्था इस दृष्टि से करे जिससे कि धारा 167 की

उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन ऐसा कैदी अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए जमानत के लिए आवेदन करने में समर्थ हो सके और मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने की भी यह सावधानी बरतनी चाहिए कि विचारणाधीन कैदी को राज्य के खर्चे पर वकील की सहायता प्राप्त करने सम्बन्धी उसका अधिकार उसके लिए सुनिश्चित हो सके और उसे जमानत के लिए किए गए आवेदन के सम्बन्ध में उन्हीं मार्गदर्शनों के अनुसार विचार करना चाहिए जो कि तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे आदेश में अधिकथित है। हमें आशा और विश्वास है कि देश में प्रत्येक मजिस्ट्रेट और प्रत्येक राज्य सरकार न्यायालय के इस परमादेश के अनुसार कार्य करेगी। राज्य सरकार और मजिस्ट्रेटों की यह सांविधानिक बाध्यता है और हमें इस बात में सन्देह नहीं है कि यदि दृढ़ता से इसका पालन किया जाएगा तो विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में स्थिति में काफी सुधार हो जाएगा और विधि के शासन का समुचित पालन होगा।

4. राज्य सरकार ने बिहार सरकार के पुलिस अधीक्षक (सी० आई० डी०) श्री० श्रीनिवासन का शपथपत्र भी फाइल किया है, जिसके उपाबन्ध (1) में 31 दिसम्बर, 1978 को राज्य के प्रत्येक उपखण्ड में पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए लम्बित मामलों की संख्या के सम्बन्ध में विशिष्टियां दी गई हैं और उपाबन्ध (2) में 6 मास से अधिक से अन्वेषण के लिए लम्बित मामलों की संख्या के सम्बन्ध में विशिष्टियां दी गई हैं। इन उपाबन्धों से यह दर्शित होता है कि बड़े अपराधों से सम्बन्धित कुल 10,339 मामले और छोटे अपराधों से सम्बन्धित 17,687 मामले 31 दिसम्बर, 1978 को बिहार राज्य में अन्वेषण के लिए लम्बित थे और इनमें बड़े अपराधों से सम्बन्धित 5,835 मामले और छोटे अपराधों से सम्बन्धित 7,228 मामले 6 मास से अधिक की कालावधि से अन्वेषण के लिए लम्बित थे। यह बड़े खेद की बात है कि इतनी बड़ी संख्या में मामले छह मास से अधिक की कालावधि से अन्वेषण के लिए लम्बित हैं और छोटे अपराधों से सम्बन्धित ऐसे मामलों की संख्या सात हजार से भी अधिक है। यह समझना कठिन है कि सात हजार से भी अधिक की संख्या में छोटे अपराधों से सम्बन्धित मामले छह मास से अधिक से अन्वेषण के लिए क्यों लम्बित पड़े हैं। निस्सन्देह यह सही है कि श्री० श्रीनिवासन् ने अपने शपथपत्र से उपाबद्ध कथन में कारण बताने का प्रयास किया है, किन्तु जहां तक छोटे अपराधों के सम्बन्ध में अन्वेषण का सम्बन्ध है, विशेष रूप से इन कारणों की विधिमान्यता

के बारे में हमारा समाधान नहीं हुआ है। श्री० श्रीनिवासन् द्वारा अपने कथन में बताया गया एक कारण यह है कि 10 प्रतिशत मामलों में विशेषज्ञों की राय प्राप्त होने में विलम्ब के कारण अन्वेषण रुका हुआ है। हम इस कारण को उचित नहीं मानते। हमारी समझ में यह नहीं आता कि राज्य सरकार अधिक विशेषज्ञ क्यों नहीं नियोजित कर सकती या अधिक संख्या में परीक्षण प्रयोगशालाएं या न्याय सम्बन्धी अधिक प्रयोगशालाएं क्यों नहीं स्थापित कर सकती। राज्य में एक से अधिक सीरम विज्ञानियों का होना भी आवश्यक है। यह ऐसी स्थिति है जिसका उपचार राज्य सरकार निश्चय ही तत्काल कार्यवाही करके कर सकती है। अनेक अन्य उपाय भी हैं जो राज्य सरकार द्वारा अन्वेषण तन्त्र की गति को बढ़ाने के प्रयोजन से किए जा सकते हैं किन्तु ऐसे किसी उपाय का सुझाव देना या सिफ़ारिश करना इस न्यायालय के लिए समुचित नहीं होगा क्योंकि इस न्यायालय के पास ऐसा करने के लिए अपेक्षित सामग्री नहीं है और इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय पुलिस आयोग इस प्रश्न पर विचार कर रहा है और वह यह विचार कर रहा है कि अन्वेषण प्रक्रिया में शीघ्रता लाने और इसमें गुणात्मक सुधार करने के प्रयोजन से क्या कदम उठाए जाने चाहिएं और क्या उपाय किए जाने चाहिएं। किन्तु यदि हम उस मंद और लगभग सुस्त रीति पर अपना आश्चर्य और दुःख प्रकट नहीं करेंगे जिससे बिहार राज्य में अपराधों का अन्वेषण किया गया प्रतीत होता है, तो हम अपने कर्तव्य में असफल होंगे। अब समय आ गया है कि बिहार राज्य अपने अन्वेषण-तंत्र में आमूल-चूल सुधार करने और उसे दोषरहित बनाने के लिए कदम उठाए जिससे किसी भी अन्वेषण में उसके लिए अपेक्षित न्यूनतम समय से अधिक समय न लगे और न्यायिक प्रक्रिया अनावश्यक विलम्ब के बिना चालू रखी जा सके।

5. हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश द्वारा यह निदेश दिया था कि अगली तारीख को जब जमानतीय अपराधों से आरोपित विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए जाएं, तब राज्य सरकार उनके पक्ष में जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से अपने खर्चे पर वकील की व्यवस्था करे और यदि जमानत के लिए कोई आवेदन किया जाए तो, वे मजिस्ट्रेट उसका निपटारा तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में उपवर्णित विस्तृत मार्गदर्शनों के अनुसार करेंगे। हमें श्री यू० पी० सिंह ने बताया है कि राज्य सरकार ने जिला मजिस्ट्रेटों को इस भाव के निदेश दे दिए हैं किन्तु हमें यह पता नहीं है कि क्या और किस हद तक उन निदेशों

का अनुपालन किया गया है और ऐसे विचारणाधीन कैदियों के लिए जिन पर जमानतीय अपराध करने का अभियोग है, उनकी ओर से जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से राज्य के खर्चे पर वकील की व्यवस्था की गई है या नहीं। हम चाहते हैं कि राज्य सरकार यह कथन करते हुए शपथपत्र फाइल करे। ऐसे कितने विचारणाधीन कैदियों के लिए, जिन पर जमानतीय अपराध करने का अभियोग है और जो 1 फरवरी, 1979 को 18 मास से अधिक की कालावधि तक जेल में रह चुके हैं, राज्य के खर्चे पर वकील की व्यवस्था की गई है और हमारे द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसार उन्हें जमानत पर उन्मोचित किया गया है या नहीं। राज्य सरकार उन विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में भी, जो कारावास की उस अधिकतम अवधि की आधी से अधिक कालावधि तक जेल में रह चुके हैं, जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था, इसी प्रकार की जानकारी देते हुए शपथपत्र फाइल करेगी, क्योंकि हमने इसी प्रकार के निदेश तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने निर्णय में भी इन विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में दिए थे।

6. हम यह बता देना चाहते हैं कि हमारे द्वारा तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने निर्णय में अधिकथित विधि के अनुसार ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जो दरिद्रता, निर्धनता या सम्पर्कवर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील रखने में और विधिक सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधि सेवाओं की व्यवस्था करवाने का सांविधानिक अधिकार है और राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह, यदि न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित हो तो, ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करे। हमें इस बात का पता नहीं है कि राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के लिए जिन पर ऐसे अपराधों का आरोप है जिनमें स्वाधीनता का वंचन सम्भव है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील रखने में असमर्थ हैं, निःशुल्क विधिक सेवाओं की व्यवस्था करने के प्रयोजन से किसी तन्त्र की स्थापना की है या नहीं। इस सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि संविधान के अधिनियमन की तारीख से 30 वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं और किसी भी राज्य सरकार के लिए संविधान के इस समादेश का पालन न करने के लिए बहाना बना सकना सम्भव नहीं है। हम इस मताभिव्यक्ति को प्रस्तुत निर्णय में इसलिए पुनः दोहरा रहे हैं क्योंकि हम यह पाते हैं कि कुछ राज्य सरकारों को

छोड़कर अनेक राज्य सरकारें दाण्डिक न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में निःशुल्क विधिक सेवाओं का उपलब्ध करने के मामले में अपने सांविधानिक दायित्व के प्रति सजग प्रतीत नहीं होतीं। यह नहीं भूलना चाहिए कि विधि केवल न्याय की बात कहने के लिए नहीं होती, बल्कि न्याय प्रदान करने के लिए भी होती है और विधिक सहायता इसके लिए आत्यंतिक आवश्यकता है। विधिक सहायता वास्तव में व्यावहारिक रूप से समान न्याय ही है। वास्तव में विधिक सहायता सामाजिक न्याय प्रदान करने की पद्धति है। इसका आशय उस जनसाधारण तक न्याय पहुंचाना है जो, जैसा कि कवि ने कहा है:—

> "सदियों के बोझ से दबा हुआ कुदाली पर झुककर भूमि की ओर देखता है, अपने चेहरे पर युगों का खोखलापन ओढ़े है और अपनी पीठ पर विश्व का भार लिए है।"

हमें आशा और विश्वास है कि प्रत्येक राज्य सरकार ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जिसे अपनी स्वाधीनता खोने की जोखिम है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील की मार्फत अपना बचाव करने में असमर्थ है, ऐसे मामलों में निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता का पालन करने के लिए तत्काल कदम उठाएगी जिनमें न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित है। यदि ऐसे अभियुक्त के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था नहीं की जाती, तो स्वयं विचारण में अनुच्छेद 21 के उल्लंघन का दोष होने की जोखिम हो सकती है और हमें इस बात में सन्देह नहीं है कि प्रत्येक राज्य सरकार ऐसी सम्भावना को टालने का प्रयास करेगी।

7. हमारे पास राज्य सरकार की इस बारे में रिपोर्ट नहीं है कि जिन स्त्रियों को 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के अधीन जेलों में रखा गया था, उन्हें समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रतिप्रेषण या कल्याण केन्द्रों में अन्तरित कर दिया गया है या नहीं, जैसा कि हमने 26 फरवरी, 1979 वाले अपने आदेश में निदेश दिया था। श्री यू० पी० सिंह ने बिहार राज्य की ओर से हमारे समक्ष कहा है कि राज्य सरकार ने इस निदेश का पालन किया है, किन्तु हम राज्य सरकार के किसी उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारी का शपथपत्र लेना चाहेंगे, जिसमें यह कहा गया हो कि जिन स्त्रियों को 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के बहाने जेल में रखा गया था उन्हें कल्याण केन्द्रों में अन्तरित कर दिया गया है और राज्य सरकार द्वारा इस आशय के आवश्यक निदेश दे दिए गए हैं कि ऐसी स्त्रियों या बच्चों को जो

अपराध के शिकार हुए हों या जिनकी उपस्थिति साक्ष्य देने के लिए आवश्यक हो, उन्हें तथाकथित 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' में नहीं रखा जाना चाहिए। राज्य सरकार ऐसा शपथपत्र आज से 10 दिन के भीतर फाइल करे।

8. हमने अपने तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश में यह निदेश दिया था कि राज्य सरकार को ऐसे मामलों की जिनमें विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध आरोपित अपराध समन मामलों के रूप में विचारणीय है, यह अभिनिश्चय करने के प्रयोजन से जांच करनी चाहिए कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (5) में अधिनियमित उपबन्ध का अनुपालन किया गया है या नहीं। इस उपबन्ध से यह स्पष्ट है कि यदि मजिस्ट्रेट ने समन मामलों के रूप में विचारणीय मामले में अन्वेषण उस तारीख से छह मास की कालावधि के भीतर पूरा नहीं किया जिसको अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था, तो मजिस्ट्रेट को अपराध का उस दशा में के सिवाय आगे अन्वेषण रोकने का आदेश दे देना चाहिए, जिसमें कि अन्वेषण करने वाला अधिकारी मजिस्ट्रेट का यह समाधान कर देता है कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के पश्चात् अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है। इस उपबन्ध के अनुपालन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से हमने निदेश दिया था कि यदि मजिस्ट्रेट द्वारा समन मामले के रूप में विचारणीय किसी मामले में यह पाया जाए कि अन्वेषण मजिस्ट्रेट का यह समाधान किए बिना ही छह मास से अधिक कालावधि के लिए चलता रहा है, कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के बाद भी अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है, तो राज्य सरकार विचारणाधीन कैदी को तब के सिवाय उन्मोचित कर देगी जब कि एक माह की कालावधि के भीतर मजिस्ट्रेट से आवश्यक आदेश प्राप्त कर लिए गए हैं। यह निदेश देने का कारण यह था कि ऐसे मामले में मजिस्ट्रेट और आगे अन्वेषण रोकने का आदेश देने के लिए आबद्ध है और उस हालत में केवल दो विकल्प रह जायेंगे, अर्थात्, यदि उस समय तक किए गए अन्वेषण से ऐसी कार्यवाही अपेक्षित हो, तो पुलिस तत्काल आरोपपत्र फाइल करने के लिए अग्रसर होगी या यदि अन्वेषण द्वारा विचारणाधीन कैदी के विरुद्ध कार्यवाही करने का कोई मामला प्रकट नहीं होता, तो विचारणाधीन कैदी को तत्काल निरोध से उन्मोचित कर दिया जाएगा। राज्य सरकार ने इस निदेश के अनुपालन में हमारे समक्ष कोई रिपोर्ट फाइल नहीं की है और इसलिए हम राज्य सरकार से अपेक्षा करते हैं कि वह आज से 10 दिन की कालावधि के भीतर ऐसा करे। हम उच्च न्यायालय से भी प्रार्थना करते हैं कि वह मजिस्ट्रेटों का ध्यान

धारा 167 की उपधारा (5) के उपबन्धों की ओर दिलाए और मजिस्ट्रेटों द्वारा इस उपबन्ध की अपेक्षा के अनुपालन को सुनिश्चित करे।

9. हम यह पाते हैं कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 को जो आदेश किया था उसमें दिए गए निदेश के अनुसरण में पटना उच्च न्यायालय ने हमें एक संकलन भेजा है जिसमें बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के न्यायालय और सेशन न्यायालयों की अवस्थितियों की विशिष्टियां हैं और उसके साथ इन न्यायालयों में से प्रत्येक में 31 दिसम्बर, 1978 को लम्बित मामलों की कुल संख्या दी गई है तथा ऐसे लम्बित मामलों के वर्ष-प्रति-वर्ष के आंकड़े हैं और संक्षेप में वे कारण बताए गए हैं जिनकी वजह से इन मामलों को युक्तियुक्त कालावधि के भीतर निपटाना सम्भव नहीं हुआ है। संकलन में दिए गए लम्बित मामलों के आंकड़े दुःखद हैं और यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि इन मामलों में बहुत से पांच वर्ष से भी अधिक समय से लम्बित हैं और कुछ मामलों में यह कालावधि बढ़कर सात, नौ या दस वर्ष भी हो गई है। हम इतनी लम्बी कालावधियों से इतनी बड़ी संख्या में मामलों के लम्बित रहने से उत्पन्न स्थिति की जांच रिट पिटीशन की अगली सुनवाई पर यह विचार करने की दृष्टि से करेंगे कि अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के प्रयोजन से सक्रिय कार्यवाही के रूप में राज्य सरकार को क्या निदेश दिए जाने आवश्यक हैं। तथापि, हमें इस प्रयोजन के लिए पटना उच्च न्यायालय से बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के सेशन न्यायालयों के विभिन्न प्रवर्गों के लिए उच्च न्यायालय द्वारा नियत किए गए निपटारे के आदर्शों की जानकारी की आवश्यकता है, क्योंकि इस जानकारी के बिना हमारे लिए यह विनिश्चय करना सम्भव नहीं है कि बिहार राज्य में न्यायालयों और न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए पर्याप्त है या न्यायालयों और न्यायाधीशों की अतिरिक्त संख्या आवश्यक है। हम उच्च न्यायालय से निवेदन करते हैं कि वह रिट पिटीशन की अगली सुनवाई पर हमें यह अतिरिक्त जानकारी भेजे।

10. हम रिट पिटीशन की आगे सुनवाई 24 अप्रैल, 1979 को करेंगे।

तदनुसार आदेश दिया गया।

क्या०/धी०

(1980) 2 उम० नि० प० 805:
(1980) 1 SCC 115:
AIR 1979 SC 1819:

हुसनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussianara Khatoon and Others

V.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(4 मई, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—जिस अवधि के लिए विचारणाधीन कैदियों को दोषसिद्धि होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, उस से भी अधिक समय तक कारावास में उन्हें रखा जाना संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है।

प्रत्यर्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे। इनमें से कुछ पर एक से अधिक अपराधों का आरोप था, किन्तु वे उस अधिकतम अवधि से भी अधिक जेल में रह चुके थे, जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर उस दशा में दण्डादिष्ट किया जा सकता था, जबकि उन्हें दिए गए दण्ड क्रमवर्ती, न कि समवर्ती, होते। उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया। दण्ड की अधिकतम सीमा से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों की उन्मुक्ति का आदेश देते हुए और अन्य कैदियों के विषय में आवश्यक निदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—जिन विचारणाधीन कैदियों पर एक से अधिक अपराधों का आरोप है और जो पहले ही उस अधिकतम अवधि के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर उस दशा में दण्डादिष्ट किया जा सकता था जबकि वे दिए गए दण्ड क्रमवर्ती, न कि समवर्ती, होते।

उन्हें और एक क्षण भी जेल में रखने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि इस प्रकार के निरोध का जारी रहना केवल मानवीय गरिमा का ही नहीं बल्कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का भी स्पष्ट रूप से अतिक्रमण होगा। अतः यह निदेश दिया गया कि इन विचारणाधीन कैदियों को तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए। (पैरा 2)

आरम्भिक अधिकारिता 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनरों की ओर से श्रीमती के० हिंगोरानी
प्रत्यर्थी की ओर से श्री यू० पी० सिंह

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने न्यायालय का निम्नलिखित आदेश 4 मई, 1979 को दिया।

आदेश

यह पिटीशन अतिरिक्त निदेशों के लिए पेश हुआ है। बिहार राज्य की ओर से श्री यू० पी० सिंह ने बताया है कि हमारे द्वारा 19 अप्रैल, 1979 को किया गया आदेश, जिसमें सुखन साह और गंगा प्रसाद को, जो भागलपुर केन्द्रीय जेल में निरुद्ध विचारणाधीन कैदी है और जो श्रीमती हिंगोरानी द्वारा 16 अप्रैल, 1979 को दी गई सूची में उल्लिखित है, उन्मोचित किए जाने का निदेश दिया गया है, सही नहीं है, क्योंकि अतिरिक्त संवीक्षा करने पर यह पाया गया है कि वे ऐसे विचारणाधीन कैदियों के प्रवर्ग में नहीं आते जो उस कालावधि से अधिक तक जेल में रह चुके हैं जो दोषसिद्ध किए जाने पर उन्हें दण्डित किए जा सकने की अधिकतम अवधि है। इसलिए हम सुखन साह और गंगा प्रसाद को उन्मोचित करने का निदेश देने वाले अपने आदेश को वापस लेते हैं। उनके मामले हम उस समय पुनः विचार करेंगे जब गर्मी की छुट्टियों के पश्चात् न्यायालय के खुलने पर उन रिट पिटीशन की अन्तिम सुनवाई की जाएगी।

2. श्रीमती हिंगोरानी ने हमें उन विचारणाधीन कैदियों की सूची दी है जिन पर एक से अधिक अपराधों का आरोप है और जो पहले ही

उस अधिकतम अवधि के लिए जेल में रह चुके हैं जिसके उन्हें दोषसिद्धि होने पर उस दशा में दण्डादिष्ट किया जा सकता था जबकि वे दिए गए दण्ड क्रमवर्ती, न कि समवर्ती, होते । सामान्यतया जब किसी व्यक्ति पर एक से अधिक अपराधों का अभियोग होता है, तो उस पर अधिरोपित कारावास के दण्डादेश समवर्ती रूप से चलने का निदेश दिया जाता है, किन्तु यदि यह मान लिया जाए कि कारावास के दण्ड क्रमवर्ती भी हो सकते हैं, तो भी श्रीमती हिंगोरानी की सूची में उल्लिखित ये विचारणाधीन कैदी उस अधिकतम कालावधि के लिए कारावास पहले ही भुगत चुके हैं, जिसके लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर जेल भेजा जा सकता था । इस बात का बिल्कुल कोई कारण नहीं है कि उन्हें और एक क्षण भी जेल में क्यों रहने दिया जाए क्योंकि इस प्रकार के निरोध का जारी रहना केवल मानवीय गरिमा का ही नहीं, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का भी स्पष्ट रूप से अतिक्रमण होगा । अतः, हम निदेश देते हैं कि विचारणाधीन कैदियों को तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए ।

3. हमारे समक्ष श्रीमती हिंगोरानी द्वारा दी गई विचारणाधीन कैदियों की ऐसी सूची भी है जिसमें उन विचारणाधीन कैदियों के नाम और विशिष्टियां दी गई हैं जिन पर एक से अधिक अपराधों का अभियोग है और जो उस अधिकतम अवधि से अधिक कालावधि तक जेल में रह चुके हैं जिसके लिए उन्हें उन दण्डादेशों के आधार पर जो समवर्ती थे, दोषसिद्धि होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था, यद्यपि, यदि दोषसिद्धि होने पर उन पर अधिरोपित कारावास के दण्ड क्रमवर्ती रूप से चलाने का निदेश दिया जाता, विचारणाधीन कैदियों के रूप में उनके निरोध को अधिकतम अवधि से अधिक नहीं कहा जा सकता । इस समय हम उन्हें बिना शर्त उन्मोचित किए जाने का निदेश नहीं दे रहे हैं, किन्तु जब उन्हें मजिस्ट्रेटों या सेशन न्यायालयों के समक्ष पेश किया जाएगा, तो उन्हें किसी प्रतिभू के बिना और वित्तीय क्षमता का सत्यापन किए बिना ही केवल 50 रुपए का स्वीय बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर जमानत पर उन्मोचित कर दिया जाएगा । हम यह निदेश देते हैं कि इस आदेश की एक प्रति पटना उच्च न्यायालय के माध्यम से उन मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायालयों को भेज दी जाए जिनके समक्ष इन विचारणाधीन कैदियों के मामले लम्बित हैं, जिससे कि उनके द्वारा इन विचारणाधीन कैदियों के पक्ष में जमानत मंजूर करने वाले आवश्यक आदेश जल्दी से जल्दी पारित कर दिए जाएं । उच्च न्यायालय मजिस्ट्रेटों और

सेशन न्यायालयों से अनुपालन की रिपोर्ट प्राप्त करेगा और उसे जून, 1979 के मध्य तक हमारे समक्ष प्रस्तुत करेगा ।

4. हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले पूर्ववर्ती निर्णय में यह बता दिया था कि शीघ्रता से विचारण करना, अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकार का अंग है और इस मूल अधिकार को प्रवृत्त करने के लिए बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों और सेशन न्यायालयों में से प्रत्येक में 31 दिसम्बर, 1978 को लम्बित मामलों की कुल संख्या सहित इन न्यायालयों की अवस्थिति सम्बन्धी विशिष्टियां ऐसे लम्बित मामलों के वर्ष-प्रति-वर्ष के आंकड़े देते हुए और यह भी स्पष्ट करते हुए कि उनमें से ऐसे मामलों का निपटारा सम्भव क्यों नहीं हो सकता जो छह मास से अधिक से लम्बित रहे हैं, लेना आवश्यक है । अतः हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश द्वारा पटना उच्च न्यायालय से ये विशिष्टियां मंगाई थीं और हमारे निदेशों के अनुसरण में उच्च न्यायालय ने विस्तृत सारणी में ये विशिष्टियां भेजी हैं और हमें यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक मजिस्ट्रेट के न्यायालय और सेशन न्यायाधीश के लिए उच्च न्यायालय द्वारा नियत निपटारे के आदर्श क्या हैं, किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा दी गई यह जानकारी पर्याप्त नहीं है । हम उच्च न्यायालय से यह भी जानना चाहेंगे कि लम्बित फाइलों की और आने वाले मामलों की औसत तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्येक मजिस्ट्रेट के न्यायालय और सेशन न्यायाधीश के लिए नियत निपटारे के आदर्श को ध्यान में रखते हुए कितने और न्यायालय तथा न्यायाधीश और किन स्थानों पर आवश्यक हैं । उच्च न्यायालय को हमें यह भी सूचित करना चाहिए कि मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों और सेशन न्यायालयों में कर्मचारिवृन्द और उपस्कर के रूप में कौन सी अतिरिक्त सुविधाएं आवश्यक हैं, जिनकी कमी दाण्डिक मामलों के निपटारे में विलम्ब के लिए उत्तरदायी है और शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार को लागू करने में रुकावट डाल रही है । यह अतिरिक्त जानकारी, जो निस्सन्देह मामलों के इस समय प्रत्याशित रूप से फाइल किए जाने के समुचित और सावधानीपूर्ण विश्लेषण और मूल्यांकन के आधार पर निकाली जाएगी, उच्च न्यायालय द्वारा इस न्यायालय को 30 जून, 1979 तक पांच प्रतियों में भेज देनी चाहिए और इन पांच प्रतियों में से एक प्रति श्रीमती हिंगोरानी को दे दी जानी चाहिए और दूसरी बिहार राज्य की ओर से श्री यू० पी० सिंह को दी जानी चाहिए । यदि बिहार राज्य उच्च न्यायालय द्वारा दी गई जानकारी की सत्यता का

या उच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रस्थापनाओं की विधिमान्यता का प्रतिरोध करना चाहे, तो बिहार राज्य 20 जुलाई, 1979 को या उससे पूर्व उत्तर में शपथपत्र फाइल कर सकता है । यह न्यायालय अपने समक्ष पेश की गई सामग्री के आधार पर इस बारे में विनिश्चय करेगा कि अधिक न्यायालय स्थापित करने, अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त करने और कर्मचारिवृन्द तथा उपस्कर के रूप में और अधिक सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए क्या निदेश दिए जाएं जिससे अभियुक्त के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार की पुष्टि सुनिश्चित हो जाए ।

5. अब रिट पिटीशन अन्तिम सुनवाई के लिए 24 जुलाई, 1979 को पेश किया जाएगा ।

तदनुसार आदेश किया गया ।

न्या०/धी०

(1980) 4 उम० नि० प० 1094
(1980) 2 SCC 684
AIR 1980 SC 898

सुनील बत्रा

बनाम

दिल्ली प्रशासन

(Sunil Batra v. Delhi Administration)

(20 दिसम्बर, 1979)

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, आर० एस० पाठक और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32—बन्दी प्रत्यक्षीकरण—कारागार में परिरुद्ध बन्दी को कारागार कर्मचारियों द्वारा शारीरिक यंत्रणा पहुंचाया जाना तथा मुलाकातियों से पैसे लेकर मिलने दिया जाना—बन्दी को एकान्त में अनियमित रूप से परिरुद्ध रखा जाना—ऐसी दशा में उच्चतम न्यायालय अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी कर सकता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19(1) (घ) अबाध रूप से विचरण का अधिकार—कारागार में परिरुद्ध बंदी को अनियमित रूप से एकान्त परिरोध में रखा जाना—ऐसे परिरोध की अयुक्तियुक्तता—बंदी का कारागार में विचरण का अधिकार—जहां पर कारागार अधिकारियों द्वारा किसी बंदी के विचरण में अयुक्तियुक्त रूप से बन्धन लगाए जाते हैं वहां ऐसे बन्धन अवैध हैं और संविधान द्वारा प्रदत्त संचरण के अधिकार का उल्लंघन करते हैं

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—जीवन का अधिकार—कारागार में परिरुद्ध बंदी के साथ दुर्व्यवहार किया जाना तथा शारीरिक क्षति पहुंचाया जाना —उच्चतम न्यायालय को ऐसे क्रिया-कलाप के बारे में रिपोर्ट—न्यायालय ऐसी दशा में संवैधानिक उपबन्धों को दृष्टि में रखते हुए हस्तक्षेप कर सकता है।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 27, 29 और 61—(सपठित पंजाब प्रिजन मैनुअल, पैरा 41, 47, 49 और 53)—एकांत परिरोध—ऐसा परिरोध सेशन न्यायाधीश के न्यायिक आदेश पर उसके द्वारा जांच-पड़ताल करके ही किया जाना चाहिए।

प्रेमचन्द नामक अपराधी तिहाड़ जेल, नई दिल्ली में सजा भुगत रहा था। इस जेल में अनेक गड़बड़ियां थीं। परिरुद्ध अपराधियों से मिलने के लिए जब कोई मुलाकाती आता तो उन्हें उनसे मिलने नहीं दिया जाता या उनसे पैसे वसूल किए जाते और अपराधियों को जेल के वार्डरों द्वारा मारा-पीटा जाता था। यही बात प्रेमचन्द के साथ भी हुई और यहां तक कि उसे जेल वार्डरों तथा जेल के अन्य अधिकारियों द्वारा शारीरिक क्षति भी पहुंचाई गई। प्रेमचन्द का साथी सुनील बत्रा नामक अपराधी भी जिसे मृत्यु दण्ड दिया गया था जेल में परिरुद्ध था। उसने प्रेमचन्द की यह दुर्दशा देखी और उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश को इस आशय का पत्र लिखा कि प्रेमचन्द के साथ कारागार में अमानवीय व्यवहार हो रहा है। न्यायाधीश ने ऐसी स्थिति में इस पत्र को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जिससे कि न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट की कार्यवाही प्रारम्भ की। रिट मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट की गतिशीलता का संवैधानिक स्वाधीनताओं के सम्बन्ध में विशेष महत्व है और एक प्रकार से वह न्यायिक प्रक्रिया का विकास करती है। (पैरा 20)

इस न्यायालय ने अपनी अनेक नजीरों में इस तथ्य पर अत्यधिक जोर दिया है कि संविधान के निर्माताओं ने अनुच्छेद 32 के अधीन जारी की जाने वाली रिट के सम्बन्ध में न्यायालय की शक्ति को इंगलैंड के न्यायालयों द्वारा जारी की जाने वाली परम्परागत रिटों के समान कठोरतापूर्वक सीमित नहीं कर दिया है। (पैरा 24)

जहां किसी कैदी के उन अधिकारों का उल्लंघन होता हो जो कि संविधान ने प्रदत्त किए हैं या उसे किसी अन्य विधि के अधीन प्राप्त हैं तो उच्चतम न्यायालय को अपनी रिट शक्ति का प्रयोग करते हुए उनकी रक्षा करनी चाहिए। (पैरा 29)

विचाराधीन अपराधियों को जेल में बन्द रखने से उन अपराधियों के दोष उनमें आ जाते हैं जो वहां पर परिरुद्ध होते हैं और इस प्रकार से संविधान

के अनुच्छेद 19 में दिए गए युक्तियुक्तता की परख का तथा अनुच्छेद 21 में दिए गए ऋजुता की परख का उल्लंघन होता है। (पैरा 14)

मुख्यतया कारागार प्राधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड को प्रभावी करें। दण्ड को प्रभावी करने का अर्थ यह है कि उस दण्ड से अधिक कार्य करना व्यर्थ है और इसका अर्थ यह होता है कि कोई कारागार अधिकारी जो अपराधी को कारावास अवधि से अधिक समय के लिए परिरुद्ध करता है या उसको चलने-फिरने से मना करता है या उसे मारता-पिटता है या उसे ऐसे कार्य करने के लिए विवश करता है जो कि न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड के अधीन नहीं आते हैं तो उससे अनुच्छेद 19 का उल्लंघन होगा। सश्रम कारावास के रूप में दण्ड का अर्थ है कि अपराधी से कठोर श्रम करवाया जाए न कि उससे कष्टप्रद श्रम की अपेक्षा की जाए और इसलिए जहां पर कोई तंग करने वाला अधिकारी बन्दी को उसे मजबूर करके और विशेषकर कष्टदायी एवं घृणित कार्य कराता है वहां वह विधि के आदेश की उपेक्षा करता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कैदी से विष्ठा ले जाने के लिए कहा जाए तो ऐसे मामले में बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए वह मांग कर सकता है। (पैरा 52)

जहां तक किसी कैदी का अपने समाज के व्यक्तियों, अभिभावकों तथा अन्य परिवार के सदस्यों से मिलने का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में तलाशी तथा अनुशासन को ध्यान में रखते हुए अन्य किसी प्रकार का भी नियंत्रण यदि रखा जाता है तो वह अनुच्छेद 19 के अधीन अयुक्तियुक्त है। (पैरा 55)

कारागार में परिरुद्ध बन्दी विशिष्टतया और दोहरे प्रकार से अक्षम है। एक बात तो यह है कि अनेक कैदी समाज के पिछड़े वर्ग के होते हैं जो गरीबी, निरक्षरता, सामाजिक स्तर और अन्य प्रकार की कितनी ही निर्योग्यताओं से भरपूर हैं दूसरे कारागार ऐसा स्थान है जो कि दुनिया से बिल्कुल अलग-थलग है और मानों दुनिया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है फलतः जो कैदी उसमें परिरुद्ध है न उन्हें कोई देख सकता है न उनकी आवाज कोई सुन सकता है और न उनके साथ हुए अन्याय के सम्बन्ध में कोई ध्यान दे सकता है। अतः यह आवश्यक है, जैसा कि अनुच्छेद 21 में विवक्षित है, कि कम से कम उनके जीवन तथा स्वाधीनता के अधिकार को सजीव रखा जा सके और उनके पाशविक अस्तित्व को कायम रखा जा सके। (पैरा 40)

शारीरिक क्षति के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कष्ट पहुंचाए जा सकते हैं। बन्दी को एकान्त कोठरी में ढकेल देना, आवश्यक सुविधाओं का न

दिया जाना और इससे भी अधिक भयानक यंत्रणाएं, जैसे कि उसे दूर के किसी ऐसे कारावास में भेज दिया जाना जहां कि उसके समाज के मित्र अथवा सम्बन्धी उससे भेंट न कर सकें, अपमानजनक श्रम सम्बन्धी कार्य का दिया जाना, उसे बदमाशों के गिरोह में डाल दिया जाना, सभी कार्य वास्तव में दण्डात्मक प्रकृति के हैं। इस प्रकार का प्रत्येक कार्य या स्वाधीनता अथवा जीवन के साथ हस्तक्षेप किया जाना या उसका कम किया जाना विस्तृत अर्थ में अनुच्छेद 21 का उल्लंघनकारी होने के कारण मान्य नहीं ठहराया जा सकता। विधिक प्रक्रिया सुधारात्मक, ऋजु और युक्तियुक्त तथा प्रभावी होनी चाहिए और यदि वह अनिर्बन्धित विवेक अथवा अयुक्तियुक्तता पर आधारित है तो वह अनुच्छेद 14 के अधीन मनमानी और अनुच्छेद 19 के अधीन अयुक्तियुक्त और अनुच्छेद 21 के अधीन अनुचित और नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन करने वाली होगी। (पैरा 49)

कारागार अधिनियम की धारा 29 तथा उससे सम्बद्ध नियम जो एकान्त परिरोध को लागू होते हैं, उनके बारे में बत्रा के मामले में कहा जा चुका है। किन्तु प्रस्तुत मामले में प्रेमचन्द को, बत्रा के मामले में बताए गए नियमों की ओर बिना ध्यान दिए हुए ही एकान्त परिरोध में रखा गया है। यह मानने योग्य बात नहीं है कि कोठरी को एकान्त परिरोध की संज्ञा नहीं दी जा सकती। बिना ऋजु प्रक्रिया का पालन किए हुए जहां पर कोठरी में किसी को परिरुद्ध किया जाता है, वह अनुचित है। (पैरा 54)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 1 एस० सी० आर० 392 : सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (Sunil Batra v. Delhi Administration);	3, 27
[1979]	[1979] 1 एस० सी० सी० 248 : मेनका गांधी बनाम भारत संघ (Menaka Gandhi v. Union of India);	29
[1978]	[1978] 4 एस० सी० आर० 409 : सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (Sunil Batra v. Delhi Administration);	28

[1975] [1975] 2 एस० सी० आर० 24 :
डी० भुवन मोहन पटनायक और अन्य बनाम
आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य
(D. Bhuvan Mohan Patnaik and
Others v. State of A. P. and Others); 43

[1964] [1964] 1 एस० सी० आर० 332 :
खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Kharak Singh v. The State of U. P.). 40

निर्दिष्ट निर्णय

[1979] [1979] 1 एस० सी० आर० 192 :
एम० एच० हॉसकाट बनाम महाराष्ट्र राज्य
(M. H. Hosket v. State of
Maharastra); 30

[1965] [1965] एस० सी० आर० 536 :
द्वारकानाथ बनाम इन्कम टैक्स आफिसर
Dwarkanath v. I. T. O.); 24

[1944] 143 फेडरल सेकेंड 443 :
कॉफिन बनाम रिचर्ड
(Coffin v. Reichard). 19

प्रारम्भिक अधिकारिता : 1979 की रिट सं० 1009.

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से डा० वाई० एस० चितले और
श्री मुकुल मुद्गल
प्रत्यर्थी की ओर से श्री सोली जे० सोराबजी, महासालिसिटर
और श्री आर० एन० सचदे

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया।

न्या० कृष्ण अय्यर—

यह रिट पिटीशन एक कैदी, बत्रा द्वारा इस न्यायालय के एक न्यायाधीश (हमारे में से एक) को लिखे गए पत्र में यथोचित प्रकार से शुरू हुआ

जिसमें एक अन्य कैदी प्रेमचन्द पर मुख्य वार्डर द्वारा क्रूर आक्रमण की शिकायत की गई थी। क्योंकि स्वतंत्रता खतरे में थी इसलिए फार्म छोड़ दिए गए थे और न्यायपीठ को एक पत्र भेज दिया गया था जिसे बन्दी प्रत्यक्षी-करण की कार्यवाहियों में परिवर्तित किया जाना था और न्यायिक रूप से उदार सृजनात्मकता के साथ संचालित किया जाना था जिसके लिए न्याय मित्र के रूप में डा० चितले की मानवी विद्वता और विद्वान महासालिसिटर श्री सोराबजी के सकारात्मक न्यायालय कार्यवाही के लिए विद्वतापूर्ण भावावेग के लिए धन्यवाद है। जहां पर कारावास की प्रक्रिया मनुष्यत्वविहिन हो जाती है वहां पर प्रतिपक्षी पद्धति के नकारात्मक क्षेपन द्वारा अविचलित वैधिक सहायता उस समय हमें साहस दिलाती है जब कि हम हतोत्साह हो जाते हैं। न्याय के लिए सबसे अच्छा समय तब आता है जब कि न्यायालय और काउन्सेल प्रतीकात्मक रूप से किसी व्यक्ति के मामले में अनुतोष देने में हाथ बंटाते हैं और उस संस्थापित रोग विज्ञान का उपचार करने के लिए जो गलतियों को बढ़ाते हैं उसकी गहराई की थाह लेते हैं और अधिकारों की अवज्ञा करते हैं। यहां पर व्यक्ति एक कैदी है जिसकी गुदा को अनिर्वचित रूप से वार्डर के डंडे से फाड़ दिया गया था और संस्था तिहाड़ जेल है जो ठीक देश की राजधानी में और गृह मंत्रालय की नाक के नीचे है।

2. परिप्रेक्ष्य—यह मामला इस केन्द्रीय कारागार में बहुत से घावों को प्रकाश में लाता है 'स्थिति संतोषजनक नहीं है'। संवैधानिक आज्ञापक उपबन्ध जो इस बन्दी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में हमारे दृष्टिकोण को सूचित करती है, पहले इसका वर्णन किया जाना चाहिए। विधि के नियम की उस समय पराजय हो जाती है जब राज्य के दास कानून को तोड़ने वाले बन जाते हैं और इस प्रकार से राष्ट्र के पहरेदार के रूप में और संविधान की आवाज के रूप में न्यायालय अपनी रिट के साथ उल्लंघनकारियों को खदेड़ता है और सीखचों के पीछे भी और कारागार वार्डरों द्वारा भी मानवीय अधिकारों के अनुपालन को सुनिश्चित करता है। कारागार की स्थितियों में मानवीय अधिकारों के परि-प्रेक्ष्य में यह मामला ऐसा चिह्न है जिसमें ऐसे सभी लक्षण चिह्न और संकेत स्तम्भ विद्यमान हैं। जब कारागार में मानसिक आघात व्याप्त होता है तो कारागार सम्बन्धी न्याय की निगरानी रखनी चाहिए और इसलिए हम अपनी बंदी प्रत्यक्षीकरण अधिकारिता को और विस्तृत करते हैं। जबकि स्वयं दाण्डिक न्यायक्षेत्र यन्त्रणा का साक्षी होता है तो न्यायशास्त्र सोया नहीं पड़ा रह सकता।

3. पिटीशनर बंदी की मुक्ति नहीं चाहता क्योंकि वह आजीवन कारावास के लिए परिरोध में है। किन्तु सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[1] के मामले के पश्चात् न्यायिक उपचारों का सक्रिय योगदान बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट को बहुमुखी जीवन शक्ति और प्रयुक्त उपयोगिता प्रदान करता है जो विधि की सांविधिक उपस्थिति को गुप्त कोठरी की गोपनीयता के भीतर भी स्वतन्त्रता के रूप में उसकी ख्याति के साथ रहने देता है। ब्लैकस्टन ने "प्रत्येक प्रकार के अवैध परिरोध की दशा में इसे महान और प्रभावोत्पादक रिट" कहा है और लार्ड डेनमन ने सन् 1839 में यह उद्घोषणा की कि यह "वर्षों से इस इस हद तक प्रभावी रही है जिसका अन्य किसी देश में पता भी नहीं लगता है"। जब तक कि बत्रा का मामला वैध विधि बनी रहेगी, बंदीगृह ही परिपाटियों की न्यायिक कार्य नीति कारावास की कमियों के विस्तृत क्षेत्र को दूर करने के लिए बढ़ती रहेगी। डा० सिंघवी ने इस प्रवृत्ति को प्रकट करते हुए अमेरिकन विधि साहित्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है जबकि भारत संघ की ओर से श्री सोली सोराबजी ने काविन को उद्धृत किया है। बत्रा के मामले में अनुमोदन के साथ निर्दिष्ट अमेरिकन संवैधानिक विधि पर काविन की टिप्पणियों को हमारी अनुमति प्राप्त है।

"फेडरल न्यायालयों ने राज्य की दाण्डिक सुविधाओं की देख-रेख पर बलपूर्वक ध्यान दिया है और उस हद तक आत्यांतिक समय परिलक्षित किया है जिस तक कि ऐसी त्रुटियां तथा रोग जिन सुधारात्मक संस्थाओं में विद्यमान है—जैसे कि अत्यन्त भीड़-भाड़ न्यून कर्मचारिवृन्द, स्वेच्छा रहित सुविधाएं, बरबरता, हिंसा का निरन्तर भय, चिकित्सीय तथा मानसिक स्वास्थ्य की देख-रेख का अभाव, घटिया खाना और सविस, हस्तक्षेप करने वाले डाकघरी निर्बन्धन, अमानविक विलय रखने वाला एकांतवास, अपर्याप्त अथवा अस्तित्व-हीन पुनर्वासात्मक या शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम, खेलकूद के अवसरों की त्रुटि—"क्रूर तथा असाधिक दण्डों" पर अष्टम संशोधन के वर्जन का उल्लंघन करते हैं।"[2]

4. मामले का सार यह है कि मानवीय अधिकारों के चेतनापूर्ण इस युग में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के अनेक कृत्य हैं जिनकी परख इसी समर्थता द्वारा उस मानवीय भद्रता और गरिमा के लिए की जाती है जिसके कि प्रति

---

[1] [1979] 1 एस० सी० आर० 392.

[2] कम्पैनियन टु एडवर्ड कॉर्विन, दि कांस्टिट्यूशन, पृष्ठ 345 जिसे सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, [1980] 3 उम० नि० प० 407 पृष्ठ 425 पर उद्धृत किया गया.

संविधान श्रद्धा रखता है। सैद्धांतिक रूप से विल डुरां के इन शब्दों को हम स्वीकार करते हैं : "सभी भद्र पुरुषों के लिए यही समय है कि वे अपने समाज की सहायता में जुट जाएं, जिसका नाम सभ्यता है।"[1] इसी प्रकार से हम इस बात को अपने सांविधानिक विचार के रूप में समर्पित करते हैं जो प्रभावपूर्ण रूप से ब्रिटिश सरकार के श्वेत-पत्र में प्रभावपूर्ण ढंग से कही गई है और जिसका शीर्षक "पीपुल इन प्रिज़न" है—

> "वह समाज जो मानव की उपादेयता में विश्वास रखता है कम से कम आंशिक रूप से उसके इस विश्वास के गुण को उसकी कारागारों तथा प्रोबेट सेवाओं के गुणागुण और उन्हें उपलब्ध किए गए स्रोतों के आधार पर परखा जा सकता है।"

विद्वान महासालिसिटर ने इस मुख्य स्वर के विचार की ओर, जो सर विन्सटन चर्चिल की अतुलनीय शैली में है, जो उन्होंने 70 वर्ष पहले एक भाषण में कहा था[1], हमारा ध्यान दिलाया है और जिसे बत्रा के मामले में भी संक्षेप में निर्दिष्ट किया गया है।

अपराध और अपराधियों के साथ व्यवहार करने के बारे में लोक भाव और प्रकृति किसी देश की सभ्यता की अचूक कसौटी है। राज्य के विरुद्ध अपराधी और यहां तक कि दोषसिद्ध अपराधी के अधिकारों की निश्चल और निरपेक्ष मान्यता—दण्ड के कार्य से प्रभारित सभी लोगों द्वारा सतत सन्देह—उद्योग की दुनिया में पुनर्वास की इच्छा और उत्सुकता, उन लोगों का जिन्होंने दण्ड के लिए भारी कीमत चुकाई है, उपचारी और पुर्नर्योजित आरोग्यिका की खोज में अथक प्रयत्न और इस बात में दृढ़ विश्वास की प्रत्येक मानव के हृदय में, यदि आप पाना चाहें, एक खजाना है ऐसे चिह्न हैं जो अपराध और अपराधियों का उपचार करने में राष्ट्र के संकलित बल को दर्शित करते हैं और मापते हैं और उसके समकालीन गुण के लक्षण और सबूत हैं।[2]

सारतः यह बात इस दृष्टिकोण की प्रतिष्ठापक है और यह संविधान की उद्देशिका तथा अनुच्छेद 21 का, जैसा कि अब हम देखेंगे, आशय भी है। हम इस बात से सन्तुष्ट हैं कि कैदी की उसके अधिकारों के भीतर सुरक्षा, अनुच्छेद 32 के अधीन आती है।

---

[1] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, [1979] 3 उम० नि० प० 407 पृष्ठ 442-43 पर.

[2] हाउस ऑफ कामन्स में होम सेक्रेटरी के रूप में 25 जुलाई, 1910 को बोलते हुए सर विन्सटन चर्चिल.

5. विधि "कारागारों का कठोरता से नियंत्रण करती है" और इस प्रकार न्यायालय के लिए इस बात पर जोर देना शोभा देता है कि विधि की दृष्टि से कैदी आदमी है, न कि जानवर और जहां पर कारागार प्रणाली के पथ भ्रष्ट संरक्षक आपे से बाहर हो जाते है और कारागार में रहने वाले मानव की गरिमा को दूषित करते है तो उन्हें दण्डित किया जाना चाहिए। कारागार भारतीय भूमि का एक भाग है और भारतीय संविधान के "कुछ संक्षिप्त प्राधिकार से सुसज्जित" जेल प्राधिकारियों द्वारा भारतीय संविधान की उपेक्षा नहीं की जा सकती जब कि भाग III की अपराधी द्वारा याचना की जाती है। जब किसी कैदी को आघात पहुंचता है तो संविधान को धक्का लगता है और जब न्यायालय ऐसी हिंसा और अतिक्रमण का संज्ञान करता है तो वह स्वर्ग के श्वान की भांति कार्य करता है भले ही वह "मन्द गति से और अपनी चाल की परवाह किए बिना ऐसा करता है। वह अपनी गति एवं भव्यता से घोषित अपराधी का पीछा करता है और अपना आक्रोश व्यक्त करता है और ऐसे दुष्कृत्य को अवैध घोषित करता है।

6. तथ्य—वे कौन से तथ्य है जिनसे यह न्यायिक कार्यवाही आरम्भ हुई है?

7. प्रत्यक्षतः अनुचित तथ्यों का सारांश उठाए गए विधिक विवाद्यकों को प्रकट करता है जो कैदियों के मूल अधिकारों पर ध्यान केन्द्रित करता है और न्यायालय को उपचारि निदेश देने में सहायक होता है जिससे कि मानवीय अधिकारों के उभरते हुए क्षितिज के साथ और कारावास के अनुशासन के प्रबुद्ध अभ्युपायों को विस्तृत प्रत्यक्षीकरण अधिकारिता के साथ संगत बनाया जा सके। तिहाड़ केन्द्रीय जेल में बन्द मृत्यु दण्डादेश के अधीन बत्रा नामक अपराधी को एक अन्य कैदी प्रेमचन्द पर अभिकथित रूप से जेल वार्डर मग्गर सिंह द्वारा उसके आने वाले संबंधियों के माध्यम से आहृत से धन लेने के लिए की जाने वाली यंत्रणा के अपराध का पता चला। बत्रा ने जेल के आक्रोश के परिणामों को भुगतते हुए न्यायालय की निगाह में इस घटना को ला दिया जिनके परिणामस्वरूप ये कार्यवाहियां की गई जो यद्यपि पूर्णतः कढ़िगत नहीं है किन्तु स्पष्टतः बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के स्वरूप की है और इसलिए अनुच्छेद 32 की विस्तृत सीमा के भीतर है। न्यायालय ने राज्य को और संबंधित अधिकारियों को नोटिस जारी किए, डा० चितले और श्री मुकुल मुद्गल को न्याय मित्र के रूप में नियुक्त किया उन्हें जेल का दौरा करने, कैदियों से मिलने, सुसंगत दस्तावेजों को पढ़ने और आवश्यक साक्षियों का साक्षात्कार करने के लिए प्राधिकृत किया जिससे कि वे स्वयं परिवर्ती

परिस्थितियों और घटनाओं के क्रूर दृश्यलेख से सूचित हो सकें। दोनों ओर के काउन्सलों ने जेल न्याय के विधायक को प्रशंसनीय रूप से संवेदनशील बना दिया है और प्रभावी रूप से जेल सुधार के कार्यक्रम को उत्प्रेरित किया है। वकील व्यवसाय की प्रजातंत्रात्मक धारा जनता के प्रति उन्मुख और यह लाभ भावना से या बौद्धिक जटिलताओं से प्रेरित है। अधम मानव क्षेत्र में सेवा करना, जैसे कि कैदियों की, यह सामाजिक न्याय के रूप में देन है। डा० चितले की सहायता करने वाले युवा वकील श्री मुगदल जिन्होंने सहर्ष कार्य किया है, हमारी प्रशंसा के पात्र है और यहां तक कि श्री सपरे ने भी न्यायालय की सही परंपरा में हमें पूरी सहायता की है।

8. हम तथ्यों पर पुनः आते है। एक मुख्य प्रासंगिक कथा जिसके चारों ओर तथ्यों का जाल बुना हुआ है सन्देह से परे की बात है अर्थात् कैदी प्रेमचन्द को 26 अगस्त, 1979 को या उसके लगभग गुदा की गम्भीर क्षति पहुंची थी क्योंकि उसे अमानवीय यातना देने के लिए उसके गुदे हुए छिद्र में डण्डा घुसेड़ दिया गया था। जेल अस्पताल रजिस्टर की समकालीन प्रविष्टि इस प्रकार है :—

एक कैदी प्रेमचन्द पुत्र प्यारे लाल की, किसी के द्वारा जबरदस्ती डंडा घुसड़ने के कारण, गुदा फट गई है। उसे शल्योपयोगी उपचार की आवश्यकता है और उसका खून नहीं रुक रहा है। उसे तुरन्त इर्विन अस्पताल के आपातकालीन विभाग में भेजा जाए। ह० डा० कपूर 2-00 बजे (अपराह्न)	अधीक्षक की टिप्पणी जो 27-8-79 को लिखी गई। ह० डी० एस० आई० 2-35 (अपराह्न)

इर्विन हॉस्पिटल में किया गया डा० को बाद में कैदी का कथन इस मामले की संतुष्टि करता है। असफल और अनुपयुक्त प्रयत्न अनुकल्पतः कैदी को आतंकित करके और यहां तक कि डा० को भी आतंकित करके और अन्य भ्रामक युक्तियों से जिनकी अब जांच नहीं की गई है मुख्य षधिवंसी निर्माण को गिरने से या बवासीर के कारण या स्वयं गुदा भंजन के अविश्वसनीय अनुकल्प देकर और ऐसी बुद्धिहीन कहानियां बनाकर समाप्त करने का प्रयत्न किया गया जो कि केवल यह दर्शाते है कि किसी प्रकार अधिकारियों की रहस्यपूर्ण मंत्रणा आहूत से और यहां तक कि चिकित्सा अधिकारियों से

शासकीय अपराधियों से अनभिसंधी चाहे वह कोई भी हो मिथ्योक्तियां कराई जा सकती हैं। अपराध को जहां कि उच्च अधिकारी उतने निर्दोष नहीं रहे हैं समाप्त करने के प्रयत्नों का भी पता चला है। हमें इस बात से आश्चर्य हुआ है कि मन्द गति के साथ विलम्बित पुलिस अन्वेषण और षड्यंत्रपूर्ण तरीके पुलिस विभाग की सत्यनिष्ठा को कोई लाभ पहुंचा सकता है यह एक ऐसा तथ्य है जिसे पुलिस कर्मचारियों को संस्थागत आश्रय दिए बिना सरकार को इसका ध्यान रखना चाहिए। एक ऐसे पुलिस अन्वेषक की कल्पना कीजिए जो पूछताछ करके मुख्य वार्डर को स्पष्ट रूप से बचाने के लिए अन्तर्विरोध की खोज कर रहा था, डा० कपूर से जिसने अस्पताल रजिस्टर में प्रविष्टि की थी और डा० चितले से यह बतलाया था कि कैदी की गुदा फटी हुई थी जो स्वयं नहीं फाड़ी जा सकती थी या गिरने से नहीं फट सकती थी और इतनी गम्भीर थी कि जिससे उसे तुरन्त इर्विन होस्पिटल में भेजने की आवश्यकता पड़ी थी और काफी देर के बाद 2-10-1979 को इस प्रकार आरोप-पत्र बनाने में विलम्ब करके उसने निम्न प्रकार कहलवाया था—

> "प्रेमचन्द पुत्र प्रहलाद नामक एक कैदी को 26 अगस्त, 1979, रविवार के अपराह्न में उपचार के लिए मेरे समक्ष पेश किया गया। उसे कोई वार्डर लाया था।
>
> वह नितम्बों पर फोड़ों से खून बहने की शिकायत कर रहा था यह बात उस वार्डर ने भी बताई थी जो उसे लाया था।
>
> उसका अपेक्षित उपचार किया गया था चूंकि उसे उसके कहने पर निरीक्षणाधीन रखा गया था।
>
> अगले दिन वार्ड का चक्कर लगाते समय मैंने उसकी परीक्षा की, उसकी गुदा फटी हुई थी और खून बह रहा था, पूछने पर उसने बताया कि उसकी गुदा में जबर्दस्ती डंडा घुसेड़ने के कारण ऐसा हुआ है।
>
> इसके पश्चात् उसे और उपचार के लिए इर्विन अस्पताल भेज दिया गया।
>
> बी० के० कपूर
> 2-10-1979"

क्या मानव स्वभाव इतना लचीला हो सकता है?

अन्वेषण की सत्यता से भी अधिक और डाक्टर की सत्यता मानवीय पूर्णता की अन्तिम आशा है जिसके बिना मानव गरिमा समाप्त हो जाएगी।

9. यह प्रभावकारी नहीं है, किन्तु हम उन्हें नहीं छोड़ते हैं क्योंकि हमारा मुख्य उद्देश्य कैदी के शरीर की रक्षा करना है, न कि अपराध को अभियोजित करना। हम उस आदेशिका के प्रतिकूल नहीं जाना चाहते। खेद का विषय है कि अवर सचिव (गृह) दिल्ली प्रशासन श्री नाथूराम का 'अनुभूत' शपथ-पत्र जेल के दोषों पर ध्यान नहीं देता है और केवल राष्ट्र के मुख्य दण्ड सम्बन्धी संस्था में मिलान घटनाओं की अन्वेषणात्मक संपरीक्षा किए बिना एक शासकीय कथन ही है। हमें प्रत्येक कर्मचारी के व्यवहार की महत्वहीन हलफनामे की सर्वग्राही अनुमति पर अफसोस है जबकि हमें इसकी अपेक्षा सरकार से और आशा करनी चाहिए थी जो निष्ठापूर्वक मानव अधिकारों के प्रति शपथ लेता है और जिनके दशाब्दियों से राजनैतिक सोपानक इन निरोध हेरफेर में वास्तविकताओं के बारे में अजनबी नहीं है उन्हें शासकीय मन्त्र के साथ प्रत्येक कार्य पर लीपा-पोती करने के रुझान को दूर करना चाहिए था। जहां पर मानवीय अधिकार खतरे में है वहां पर प्रतिष्ठा को कोई स्थान नहीं है।

10 कैदी को क्रूर आघात पहुंचाने के पश्चात् उसे जेल अस्पताल में भेजा गया और बाद में इर्विन अस्पताल, किन्तु उसके पुनः स्थानान्तरण पर उसकी देखभाल नहीं की गई क्योंकि पुलिस अन्वेषण अभी किया जा रहा है तथापि हम अपराधी की पहचान या अपराध या उसकी देखरेख के बारे में अनुशीलन नहीं करते। फिर भी हम यह कहेंगे कि अब तक उसको कितना भी नुकसान पहुंचाया गया है केन्द्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारी द्वारा यदि सच्चाई को दबाया गया है। दूसरा अन्वेषण न्यायोचित है। डा० चितले ने कुछ हृदय विदारक तथ्य हमें बतलाए हैं जैसे कि स्वयं कैदी पर गुदाभंजन के प्रतिकूल कथन करने के लिए दबाव दिया गया है हम उनके बारे में कोई टिप्पणी नहीं करते यद्यपि हम उस बारे में जिस प्रकार अन्वेषण का कार्य किया गया है मालूम है। वस्तुतः पुलिस और जेल कर्मचारियों के बीच विषम पारस्परिक सहायता की संभाव्यता जेल अधिकारियों द्वारा जेल अपराधों का पता नहीं लगने देती और इसलिए इस संभाव्यता को हटाने के लिए केन्द्रीय जांच ब्यूरो को नियमित व्यवहार के बारे में ऐसे मामलों को सौंपा जाना चाहिए। क्योंकि कैदी आदमी होते हैं अतः हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते।

11. अभिकथित अपराधी वार्डर मग्गर सिंह को कुछ समय के लिए एक तरफ छोड़ दिया जाए। यंत्रणा के अन्य पहलू भी है जो गहराई से जांच और सर्वव्यापिहर की मांग करते हैं। गुदाभंजन का कारण कैदी ने धन की

मांग को पूरा न करना बतलाया है जो एक सामान्य बात है। यदि यह बात सच है तो इस बात को दर्शाता है कि बर्बरता की नोक पर रिश्वत स्वयं दण्डादेश के मकान के भीतर एक विकासशील व्यापार है। ऐसे शासकीय अपराधों के लिए दण्डादेश कितना कठोर होना चाहिए इस दुष्ट प्रलोभन को समाप्त करने के लिए राज्य को कितना सचेत होना चाहिए ? यदि आप जेल के कुकर्मों को समाप्त करना चाहते हैं तो आपको प्रोत्साहन और अवसर को समाप्त करना चाहिए।

12. इसके प्रतिकूल वार्डरों का मामला, जैसा की अधीक्षक की रिपोर्ट में प्रकट किया गया है, यदि हम ऐसा कहें, समान रूप से यदि नहीं है तो गड़बड़ी करने वाला है—

"25-8-79 की शाम को आजीवन कैदी प्रेमचन्द सुपुत्र श्री प्रहलाद को मेण्ड्रिक्स गोली खाने के कारण उप-अधीक्षक के समक्ष पेश किया गया। चूंकि वह नशे की गोली खाने के कारण नशे की हालत में था, जिसे उसने उप-अधीक्षक के समक्ष स्वीकार किया था उसे केन्द्रीय जेल के अधीक्षक के आदेशों के लम्बित रहते हुए कोठरी में रखा गया। उसे अगले दिन अर्थात् 26-8-79 को ऊपर कथित कैदी के रिपोर्ट किए जाने पर उसे जेल अस्पताल भेजा गया चूंकि उसकी गुदा में दर्द था और खून बह रहा था। कैदी जेल अस्पताल में 27-8-79 को 2 बजे अपराह्न तक भर्ती रहा जब कि डा० बी० के० कपूर, चिकित्सा अधिकारी ने इस कैदी को पिटीशन में उल्लिखित रिपोर्ट के साथ इर्विन अस्पताल भेजने की सिफारिश की। कैदी प्रेमचन्द को तदनुसार श्री बचन सिंह सहायक अधीक्षक जो 27-8-79 को ड्यूटी पर था के द्वारा स्थानान्तरित कर दिया गया। निम्न हस्ताक्षर-कर्ता को यह सूचित किया गया कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 385 के अधीन एक मामला वार्ड नं० 11 अर्थात् 40 कोठरियों के प्रभारी वार्डर मग्गर सिंह के विरुद्ध पुलिस स्टेशन जनकपुरी में एक मामला दर्ज कर दिया गया है और इस मामले में अन्वेषण शुरू हो गया है। अन्वेषण का परिणाम अभी प्रतिक्षित है। तथापि, कैदी 29-8-79 को इर्विन अस्पताल से जाने की आज्ञा दिए जाने के कारण वापस जेल में आ गया है।"

13. कैदी प्रेम चन्द को दण्ड कोठरी में रखा गया था जो प्रशासन की ओर से काउन्सेल के अनुसार इतनी बुरी नहीं थी जितना कि एकान्त कोठरी। यद्यपि डा० चितले का कहना है कि यह सुनील बत्रा के मामले में इस न्यायालय द्वारा असांविधानिक रूप में तिरस्कृत पृथक्कृत परिरोध के प्रकार के समान कोठरी थी। अवर सचिव के प्रतिशपथ-पत्र के माध्यम से

जेल कर्मचारी द्वारा दिए गये प्रतिस्पर्धी प्रकथन पर विचार करते हुए यह कहानी चाहे सत्य भी हो, कि हर जेल में व्यापक विरोध करने वाले व्यक्तियों की संस्कृति के बारे में कठोर रूप से सुझाव देने वाली है। आवास के लोकाचार की पृष्ठभूमि को तिहाड़ केन्द्रीय जेल के अधीक्षक की रिपोर्ट के कुछ भागों से बटोरकर रखा जा सकता है जो कि उसने अभिकथित यन्त्रणा के निदेश में दी थी जो इस मामले की विषयवस्तु है—

"तिहाड़ जेल में बहुत से कैदी आभ्यासिक अपराधी या वृत्तिक अपराधी है जो समय-समय पर जेल के सहवासी रहे है। उक्त कैदियों में से बहुत से कैदी ऐसे है जो इस तथ्य के होते हुए कि वे ऐसे व्यक्तियों के साथ सहयोजित नहीं होना चाहते उनके सम्बन्धी मुश्किल से उनके पास आ पाते है। ऐसा देखा गया है कि ऐसे कैदियों के पास मुख्य रूप से अन्य व्यावसायिक या आभ्यासिक अपराधी ही आते है जो उस क्षेत्र में उनके पहले साथी रहे है.........ऐसा देखा गया है कि इस प्रकार के कैदी जेल में निचली श्रेणी के कर्मचारियों अर्थात् मुख्य वार्डर, वार्डर इत्यादि के साथ सम्बन्ध बढ़ा लेते है और अवैध रूप से बहुत सी वस्तुओं जैसे मादक पदार्थ आदि को उनके प्रयोग के लिए तस्करी सहित बहुत सी अवैध सुविधाएं अभिप्राप्त कर लेते है। यह भी दलील दी जा सकती है कि ऐसे कैदियों के विरुद्ध जो ऐसे कार्यों में व्यस्त रहते है, निद्राकारी मादक औषधियों की तस्करी को रोकने के लिए इस वर्ष के दौरान जनकपुरी पुलिस थाने में कैदियों के विरुद्ध लगभग संज्ञापहारी अपराधियों के तीस मामले दर्ज किए गए थे.........कि 95 कैदियों को प्रशासनिक कारणों से जेल से हरियाणा स्थानांतरित किया गया था जिनमें अनुशासनहीनता और जेल विनियमों के उल्लंघन सम्मिलित है और अन्यथा पिछले वर्ष के दौरान अनादरपूर्ण बर्ताव के मामले भी सम्मिलित है...... इस वर्ष भी लगभग 22 मामले जेल अधीक्षक ने स्थानान्तरण के लिए सिफारिश किए है......जेल नियमावली के पैरा 568-ख और तदधीन टिप्पणी में आभ्यासिक अपराधियों को सामायिक कैदियों से पृथक् रखने की अपेक्षा है किन्तु दिल्ली में अन्य जेल की अनुपलभ्यता के कारण उन्हें तिहाड़ जेल में रखा जा रहा है जिसके लिए जेल अधिकारियों की ओर से काफी सतर्कता रखने की

आवश्यकता है। इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि स्थान की कमी के कारण उक्त जेल में अन्यथा प्राधिकृत, कैदियों की अपेक्षा दोहरी संख्या में कैदी रखे गए हैं।"

14. इस विकार को बढ़ाने के लिए हमारे समक्ष ऐसा तथ्य है कि काफी संख्या में ऐसे कैदी हैं जो विचारणाधीन हैं और जिन्हें न्यायालय में अभी अपने मामलों का सामना करना है और अनुमानतः वे तब तक निर्दोष हैं जब तक कि उन्हें दोषसिद्ध न कर दिया जाए। तिहाड़ जेल भेजकर उन्हें संपदोष के कारण अपराधी बना दिया जाता है—एक संरक्षणीय विडंबिकरण जो अनुच्छेद 19 में युक्तियुक्तता के मापदण्ड का और अनुच्छेद 21 में औचित्य के मापदण्ड का उल्लंघन करता है। यह बात कितनी क्रूर है कि यदि कोई आदमी जांच करवाने के लिए हस्पताल में जाता है और सांसर्गिक मामलों के साथ उसे रखने जाने के कारण वह नई बीमारी लेकर घर वापस आ जाता है। हम इस खतरे का संकेत करते हैं कि जेल सुधार अब सांविधानिक बाध्यता है और इसकी उपेक्षा से गम्भीर न्यायिक कार्रवाई हो सकती है।

15. ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग 300 व्यक्तियों को जेल और न्यायालयों के बीच रोज ले जाया और लाया जाता है। और जब राजनीतिक आन्दोलन होते हैं और परिणामस्वरूप पुलिस गिरफ्तारियां करती है और अभिरक्षा में भेजती है तो विचारणाधीन व्यक्तियों की संख्या काफी बढ़ जाती है। चूंकि बहुत से अधिकारी न्यायालय में कैदियों को पेश करने में व्यस्त रहते हैं, अधीक्षक का पक्षकथन यह है कि अन्य कैदी "रिश्वि" करने का प्रयत्न करते हैं, अन्य कैदियों की, जो काम करने के लिए जाते हैं चोरी करते हैं, चीजों की तस्करी करते हैं और यहां तक कि आक्रमण भी कर देते हैं।"

16. सारांशतः तिहाड़ जेल तनाव, मानसिक आघात, आवेश और हिंसा, नीचता और भ्रष्टाचार के अपराधों का अखाड़ा है और इसे विचारण के पूर्व अवरुद्ध अपराधियों को आभ्यासिक अपराधियों, दोष उत्पन्न रखने से खतरनाक अपराधियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह के अपराधियों के साथ होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जेल कर्मचारी स्वयं कारागार में रह रहे अपराधियों के साथ अभिकथित रूप से मिल जाते हैं, अर्थात् अपराधियों, कर्मचारियों और जेल के अन्य अधिकारियों का सुधार गृह में एक बहुत बड़ा तन्त्र बना हुआ है। नशीली औषधियों का धन्धा, शराब, तस्करी, हिंसा, चोरी और असांविधानिक दण्ड के रूप में एकान्त जेल कोठरी जीवन और

अन्य जेलों में स्थानान्तरण सामान्य बात हो गई है। प्रशासन यदि इस भयानक स्थिति की किसी निष्पक्ष प्राधिकृत निकाय से तुरन्त जांच नहीं कराता और इस परिसर को इन दोषों से मुक्त नहीं कराता तो अवर सचिवों के छापमार और अन्य सामयिक दौरा करने वाले मान्य जनों की शानदार (टिप्पणियां) प्रविष्टियां कोई सहायता नहीं कर सकती।

17. जबकि स्थापन ने न्यायालय के समक्ष यह दर्शाने के लिए कि बहुत से निष्पक्ष और विख्यात लोगों ने उस ढंग के बारे में जिसमें कि कारागार का प्रबन्ध किया जाता है, जेल प्राधिकारियों की काफी प्रशंसा की है अभ्यागंतुक पुस्तिका से उद्धरण पेश करने चाहे हैं। डा० चितले ने अभिलेख पर की सामग्री से कुछ आन्तरिक साक्ष्य हमारे समक्ष रखे हैं जो एक मर्यादा-पूर्ण पत्रकार श्री कुलदीप नायर द्वारा अभिलिखित व्यक्तिगत मतों द्वारा पूर्णतया अनुपूरित है, जबकि वह स्वयं इसी जेल में नजरबन्द थे जिसके पीछे उनकी पुस्तक 'जेल' में असत्यता के लिए कोई हेतु नहीं था न ही आत्मनिष्ठा के लिए कोई अभिलेख। लेखक के दृष्टिकोण में ऐसी कोई बात नहीं थी जो जेल परिसर के मध्यावकाश में धन से न खरीदी जा सकती हो। वास्तविक कथन बताते हुए श्री नायर ने इस प्रकार लिखा—

> "………कोई भी व्यक्ति मोल देकर जितनी भी चीजें बाहर से खरीद सकता था जितनी कोई चाहता हो। वहां पर मनीआर्डर आते थे और डाक सेवा भी थी शायद यह डाक विभाग की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय थी।
>
> उदाहरण के रूप में, जबकि मेरे वार्ड में एक कैदी ने 200 रुपए की मांग की तो उसने पुरानी दिल्ली में अपने किसी आदमी को वार्डर के माध्यम से चिट्ठी भेजी और 24 घण्टे से पहले उसे रकम मिल गई। उसने संग्रहण खर्च (कलैक्टिंग चार्ज) के रूप में 66 रुपए दिए। मनीआर्डर चार्ज 33% विहित था।………धर्म तेजा एक समुद्री जहाज का समृद्ध व्यक्ति जो तिहाड़ जेल में अपना दण्डादेश भुगत रहा था, उदाहरण के रूप में उसके पास हजारों रुपए आया करते थे ऐसा हमें बताया गया है। और यदि कोई व्यक्ति जेल कर्मचारियों को पैसा दे सके तो उसे वहां सभी सुख सुविधाएं मिल सकती थीं। तेजा को सभी सुख-सुविधाएं प्राप्त थीं— उसके पास उसकी कोठरी में एयर कूलर था, रेडियो कम-रिकार्ड प्लेयर सैट था और यहां तक कि उसे टेलीफोन का प्रयोग करने की भी सुविधा थी……हरिदास मून्दरा एक व्यापारी

जिसे कपट के लिए दोषसिद्ध किया गया था, एक अन्य अमीर आदमी था जिसने तिहाड़ में कुछ समय बिताया था न केवल उसके पास सभी सुख सुविधाएं थी, अपितु वह जब चाहता जेल के बाहर भी जा सकता था, कभी-कभी तो कई दिनों तक वह बाहर रहता और यहां तक कि कलकत्ता की यात्रा भी करता था। वस्तुतः इन सभी बातों के लिए काफी धन की आवश्यकता थी। एक इससे भी अमीर कैदी रामकृष्ण डालमिया था। उसने अपनी जेल की अधिकतर कालावधि को हस्पताल में गुजारा। जेल प्राधिकारियों में वह अपनी उदारता के लिए माना जाता था यहां तक कि डाक्टर को उसने दान में कार दे दी थी।

किन्तु व्यापारियों की अपेक्षा तिहाड़ जेल में तस्कर बहुत अधिक खर्च करते थे उनका खाना मोती महल से आया करता था और उनकी ह्विस्की क्लारिजेस से। न केवल सुरा ही प्राप्त होती थी अपितु सुन्दरी थी। "बाबूजी, बैठना नहीं अपितु असली मोडर्न गर्ल्स मिलेगी," एक वार्डर ने कहा। सुन्दरियां उस समय लायी जाती थी जब कि "साहब लोग" घर लंच करने (खाना खाने) चले जाते थे और उनके खाली दफ्तर "आमोद-प्रमोद" गृह बन जाते थे।

जेल में भ्रष्टाचार इस प्रकार सुप्रबन्धित और सुव्यवस्थित था कि एक बार कीमत अदा किए जाने के पश्चात् हर चीज घड़ी की तरह से चलती थी। प्रत्येक स्तर पर जेल के कर्मचारी लगे हुए थे और हर एक का शेयर नियत था। उनमें कभी झगड़ा नहीं होता था। चोरों के बीच लौकिक सम्मान बना रहता था। यह आश्चर्य तो है ही कि ऐसे प्रसिद्ध लेखक द्वारा लांछन लगाए जाने के पश्चात् भी क्या सरकार कम से कम दण्ड संबंधी संस्थाओं को दाण्डिक जीवन पद्धति से अपने आपको अवगत कराने के लिए जांच-आयोग नियुक्त करने के लिए प्रेरित हुई है? यदि नय्यर की बात सच्ची है तो उच्च अधिकारियों का भी मामले में हाथ होता है।

'शायद जिस प्रकार से लगभग सभी आदमी किसी न किसी प्रकार से अपनी कटौती करते थे यह बात हमें दूध दिए जाने के मामले से स्पष्ट हो जाती है। यह इकट्ठा मुख्य द्वार (फाटक) पर आता था। बड़े अधिकारियों के लिए डूमों में से काफी दूध निकाल लिया जाता था और फिर उसमें पानी भर दिया जाता था और जैसे-जैसे डूम वार्डों में जाते रहे जिसके हाथ जैसे पड़ा उसी ने अपना हिस्सा अलग कर लिया और फिर उसमें पानी भर दिया।

भ्रष्टाचार की अपेक्षा जेल में हमें कष्टतापूर्ण 'गुलाम पद्धति' अधिक दर्दनाक दिखाई दी। ये गुलाम दस से अठारह साल के बच्चे थे जिन्हें "हैल्पर्स (सहायकों)" के रूप में नियोजित किया जाता था और वे काफी होते थे। वे खाना बनाते थे, बर्तन साफ करते थे, कमरे साफ करते थे, पानी लाते थे और उन आदमियों की 'सहायता' करने के लिए कमर तोड़ मेहनत करते थे, जिन्हें इन कामों को करने के लिए पैसे दिए जाते थे। उन्हें सुबह की चाय बनाने के लिए छः बजे प्रातः से पहले उठा दिया जाता था और उन्हें बर्तन मांजने के पश्चात् लगभग दस बजे अपराह्न में सोने की इजाजत दी जाती थी। उन्हें वार्ड में धकेल दिया जाता था जिनमें न तो पंखे थे और न ही उचित स्वास्थ्य सुविधाएं किन्तु जिनमें काफी रोशनी होती थी और सारी रात बहुत बल्ब जलते रहते थे जिससे कि ऊंघता वार्डर एक दृष्टि से यह जांच कर ले कि वे सभी वहीं पर हैं।

ये लड़के विचारणाधीन कैदी होते थे; उनमें बहुत से आठ महीनों से अधिक के लिए वहां पर थे और कम से कम एक तो वहां पर दो वर्षों से भी अधिक से था। उन्हें एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में कभी एक आरोप पर कभी दूसरे आरोप पर ले जाया जाता था और फिर जेलों में रखा जाता था। उद्देश्य उन्हें जितना अधिक सम्भव हो सके लम्बे समय के लिए जेलों में रखने का था क्योंकि उनके बिना घरेलू काम करने के लिए नियोजित लोगों को गुलछर्रे उड़ाने की फुर्सत न मिलती।

एक दिन सुबह एक बच्चे के सुबकने की आवाज से मेरी आंखें खुल गईं। मैंने देखा कि कुछ दूसरे "हैल्पर्स (सहायक)" उसे तसल्ली देने की कोशिश कर रहे थे जब कि एक वार्डर दृढ़ रूप से वहां पर खड़ा हुआ था। मैं उसके पास गया उसके घुंघराले बालों को देखकर मुझे अपने छोटे बच्चे राजू की याद आ गई। इस लड़के को नई दिल्ली में डिफेंस कालोनी से पहली शाम को उठाया गया था। तमाम रात पुलिस-हिरासत में रखा गया और अगले दिन प्रातः जेल में लाया गया।

दण्ड का अपराध एक नया अपराध है और इसे विधि का नियम लागू होना चाहिए, किन्तु यदि 'जेल' कथन में शीर्षक की थोड़ी सी भी सच्चाई है तो बच्चों के बारे में सुनकर आंसू आ जाते हैं क्योंकि उन्हें न्याय के दाण्डिक गृहों में बंधक मजदूरों के रूप में प्रयोग करने के लिए परिवेष्ठित किया जाता था और हिरासत में रखा जाता था। इस कार्य-प्रणाली को कुलदीप नय्यर ने संवेदी रूप से इस प्रकार उपवर्णित किया है :

वार्डर ने यह स्पष्टीकरण दिया कि जब कभी जेल में कैदियों की संख्या अधिक हो जाती है तो पुलिस को काम करने वालों की सहायता करने के लिए लड़कों को पकड़ कर लाने के लिए कहा जाता है। वार्डर ने बतलाया कि पिछले कई दिनों से जेल प्राधिकारी पुलिस को और अधिक 'हैल्पर्स' लाने के लिए तंग कर रहे थे क्योंकि कैदियों की संख्या काफी बढ़ गई थी। इससे पहली शाम को जब कि लड़का किंग्सवे कालोनी की एक दुकान से पान खरीद रहा था पुलिस ने उसे 'आवारा' कह कर घसीट लिया क्योंकि वे तो जेल प्राधिकारियों की अधिक हैल्पर्स लाने की अपील पर कार्रवाई कर रहे थे।

"यह कोई नई बात नहीं है। ऐसा तो हमेशा होता रहता है।" वार्डर ने स्पष्टीकरण दिया, बहुत से विचारणाधीन लड़कों ने बाद में अपनी दुःख भरी कहानी मुझे सुनाई कि किस प्रकार से उन्हें चालबाजी के आरोपों पर गिरफ्तार किया गया और किस प्रकार से उन्हें एक या दूसरे बहाने लगाकर निरुद्ध रखा जा रहा था।[1]

18. इस चरण में हम चालू स्थिति में बंदी प्रत्यक्षीकरण के कार्य संबंधी विषय पर अधिक विस्तार से विचार करेंगे विशेषकर क्योंकि दोनों ओर के काउन्सेलों ने बाध्य होकर विस्तृत अधिकारिता के पक्ष में इस न्यायालय द्वारा प्राधिकारपूर्ण उद्घोषणा की जाने की दलील दी है।

19. पहले हम यह देख चुके हैं कि इस मूल्यवान रिट के जैसा कि अमेरिकन अधिकारिता में इसका विकास हुआ है, अनेक उपयोग हैं। ऐसे बहुत से विधिक लेखकों द्वारा अभिव्यक्त विचार हैं। हारवर्ड सिविल राईट्स एण्ड सिविल लिबर्टीज लॉ रिव्यू[2] में यह दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया है कि परम्परागत अंधेरे से हटकर न्यायालयों ने उस ढंग की परीक्षा करनी शुरू की है जिसमें कि उसके दण्डादेश के प्रचलन के दौरान किसी सहवासी को रखा जाता है या उसके साथ कैसे व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार का विचार अन्य लेखकों द्वारा भी अभिव्यक्त किया गया जैसा आर० जे० शाही ने "दी लॉ ऑफ हैबियस कार्पस" (1976) एडिशन ल्युबिनस, सटायर्ड द्वारा 1972 मेन लॉ जर्नल 506 (1963) में। अमेरिकन ज्यूरिस्प्रूडेन्स में एक सारगर्भित मत[3] दिया गया है—

---

[1] कुलदीप नय्यर द्वारा लिखित 'इन जेल' पृष्ठ 30-34.

[2] 1970, भाग 5.

[3] सैकेण्ड, खण्ड 39 पृ० 185, पैरा 11.

> यह रिट स्थिर, संकीर्ण अव्यावहारिकता से संबंधित उपचार न तो कभी रही है और न है। इसका विस्तार इसके प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए—व्यक्तियों को उनकी स्वतन्त्रता पर सदोष अवरोध से मुक्त करने के अधिकार के क्षय के विरुद्ध उसके संरक्षण के लिए बढ़ा है।

कार्पस ज्यूरिस. सेकण्डम भाग 39, पृष्ठ 274, पैरा 7 में कड़िगत दबाव से परे एक सदा टिप्पण है। अमेरिका में न्यायालय विनिश्चयात्मक प्रक्रिया के माध्यम से 'मत छुओ' सिद्धान्त को इस सीमा तक पीछे ढकेलते हुए काराणीर पद्धति में विधि के नियम को लाते हैं। कोफिन बनाम रिचर्ड[1] के प्रमुख मामले में अपील न्यायालय ने विस्तार का वर्णन करते हुए मत व्यक्त किया और हेबियस कारपस रिट का प्रयोग किया—

> सरकार को उसके विरुद्ध किए गए अपराधों के लिए कैदियों को पकड़ने का आत्यंतिक अधिकार प्राप्त है किन्तु जब कि वह पकड़ा जाता है किसी ओर से किसी आक्रमण या क्षति से उसकी रक्षा करने का भी कर्तव्य है। कैदी हेबियस कारपस रिट का हकदार है जब कि यद्यपि विधिपूर्ण रूप से सुरक्षा में होने के कारण उसे कुछ अधिकारों से वंचित किया जाता है जिसके लिए अपने परिरोध में भी वह विधि-पूर्ण रूप से हकदार है जिसका वचन उसके कारावास को उस बात की अपेक्षा अधिक प्रपीड़क बना देता है जितना कि विधि अनुज्ञात करती है या विधि के अनुज्ञान की अपेक्षा उसकी स्वतन्त्रता का काफी हद तक हरण कर लेता है।
>
> जब कि किसी व्यक्ति के पास कोई महत्वपूर्ण अधिकार होता है न्यायालय उसकी रक्षा करने के लिए रास्ता निकालने हेतु सचेत रहेगा। यह तथ्य कि कोई व्यक्ति विधिक रूप से कारावास में है उसके अन्य अन्तर्वर्ती अधिकारों की सुरक्षा करने के लिए हेबियस कारपस का प्रयोग करने से नहीं रोकता'''न्यायाधीश केवल प्रतिप्रेषण करने या सम्मान किए जाने वाले कैदी के सिविल अधिकारों को उन्मोचित करने तक ही सीमित नहीं है'''

यह बात महत्वपूर्ण है कि यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट ने कैदियों की डाक की प्रतिबन्धक व्यवस्था और विधिक उपचार के मामले में कारागार के सहवासियों

---

[1] 143 फैडरल रिपोर्टर सेकेण्डम 443, 445.

के साथ साक्षात्कार करने के विधि विद्यार्थियों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध के लिए हेबियस उपचार को उपयुक्त माना है। 40 लॉ एडिशन सेकण्ड् 224 के मामले में यह दो प्रश्न विनिश्चय के लिए आये और न्यायालय ने ऐसे आन्तरिक मामले में भी अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया। **जानसन बनाम एवरी**[1] के मामले में कैदी द्वारा हेबियस कारपस की रिट के माध्यम से अनुशासनात्मक कार्रवाई को चुनौती दी थी यह बात अमेरिकी अधिकारिता में रिट के स्वरूप के विस्तार को उपदर्शित करती है। प्रासंगिक रूप से और दिलचस्प रूप से यूनाइटेड स्टेट्स में कुछ राज्यों को निर्देश दिए गए हैं जो बंदी सुधार घर में सेवा के लिए वरिष्ठ विधि विद्यार्थियों को प्रोग्राम का अनुभव करने की इजाजत देते हैं। बाद में जब हम निश्चित अनुतोषों को ठोस बनाते हैं तो हम कैदियों को विधिक सहायता देने के लिए वरिष्ठ विधि विद्यार्थियों के प्रयोग का निर्देश कर सकते हैं और इसलिए **जानसन बनाम एवरी**[1] के मामले से एक उद्धरण करना उचित है जो विस्कान्सिन ने कारागार में केन्साज लॉ स्कूल प्रोग्राम के निर्देशों में है—

> विस्कान्सिन में किया गया अनुभव यह दर्शाता है कि (कारागार) प्रशासन पर काफी कम आक्षेप किया गया है कि सम्भावी निरर्थक मुकदमेबाजी की तलाश की गई है और कि जहां स्कूल ने यह अनुभव किया कि कैदी के लिए अच्छा वाद हेतुक प्राप्त था वहां पर काफी मामलों में अनुतोष प्राप्त किया गया। कार्रवाई का बड़ा भाग सहवासियों के विरुद्ध दायर किए गए काफी समय से चले आ रहे निरोध को निपटाना था। इसके अतिरिक्त प्रोग्राम घरेलू सम्बन्धों की ओर दावों के प्रतिकर जैसे सिविल मामले भी सम्भालता था यहां तक कि जहां कि कोई यदि यथार्थ सफलता नहीं मिली तो तथ्य की सहवासी की बाहर कोई सुनवाई करने के लिए और उसकी समस्याओं का विश्लेषण करना एक बहुत बड़ा लाभकारी प्रभाव था। हम यह समझते हैं कि यह प्रोग्राम न केवल सहवासियों के लिए ही अपितु विद्यार्थियों, कर्मचारी और न्यायालयों के लिए भी लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

कैदी के पास विधि विद्यार्थियों की उपस्थिति का संरक्षक और प्रतिपालक पर निरोध प्रभाव पड़ा।

---

[1] 21 लायर्स एडिशन सेकण्ड् 718.

20. क्योंकि हमारी संवैधानिक स्वतन्त्रताओं का विषय कम नहीं है वहां पर विकसित हेबियस रिटों का मतिविज्ञान न्यायिक प्रक्रिया की सहायता करता है। वस्तुतः मेनका गांधी के मामले के पश्चात् अनुच्छेद 21, 19, 14 की पूर्ण सम्भावना को इस न्यायालय ने होसकोट और बत्रा के मामले में प्रकट किया है। आज भारत में मानव अधिकार न्यायशास्त्र को संवैधानिक स्थिति और समेट प्राप्त है। अनुच्छेद 21 का धन्यवाद करना चाहिए जिससे कि यह मैगना कार्टा सभ्यता की सीमाओं से परे मानव बन्धन को समाप्त कर दे।

21. केन्द्रीय कारावास के अधीक्षक का अनुपूरक कथन (जिसका भागतः पहले उद्धृत किया जा चुका है) रोंगटे खड़ा करने वाला है जब कि हमें पता चलता है कि पुनर्वास से दूर है। अपराधिकता को बढ़ाया जा रहा है और अधिकारी इस दोष में भागीदार हैं। निश्चित रूप से हम इसका सामान्यीकरण करना नहीं चाहते किन्तु हमारा अभिप्राय ऊंची-ऊंची दीवारों के पीछे जीवन के पहलुओं को स्पष्ट करना है जिसके लिए संवैधानिक और प्रशासनिक ध्यान देने की मांग की गई है। मानवीय अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए यदि यह दिल से निकालते हैं, इस पर कार्रवाई की अपेक्षा है। कारागार, कारागार के कर्मचारी और कैदी—इन सभी को सुधार की आवश्यकता है और स्पष्ट रूप से यह स्थिति तिहाड़ जेल के लिए ही कोई अनोखी बात नहीं है किन्तु बहुत सी दाण्डिक संस्थाओं में यह एक सामान्य बात है।

22. यह बात बड़ी सुखप्रद और प्रेरणादायक है कि विद्वान् महासालिसिटर ने हमारे सिंहावलोकन को विस्तृत किया है और यह दलील दी है कि इस न्यायालय को कैदियों की मूल स्वतन्त्रताओं की समस्या और उनके उपघाती संक्षेपण की समस्या पर विचार किए जाने के कारण इस बिना चार्ट के क्षेत्र में मार्गदर्शन करना चाहिए, प्रक्रियाएं और युक्तितंत्र की रचना करनी चाहिए, जब कि कैदियों के निर्बन्धित किन्तु वास्तविक अधिकारों का प्रत्यक्षतः या गुप्त रूप से हस्तक्षेप किया जाता है तो उन पर प्रभावी कार्रवाई की जा सके। कैदियों के अवशिष्ट अधिकारों के उल्लंघन का उपचार करने के लिए इस न्यायालय की अधिकारिता के बारे में न्यायालय में चर्चा की गई थी तथा इसके बारे में काफी युक्तिसंगत अभ्युपायों के बारे में भी विचार किया गया था जिन्हें उस समय जब कि अधिकारियों या साथी कैदियों द्वारा उन अधिकारों का अतिलंघन किया जाता हो तो न्याय की कारा सम्बन्धी स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने के लिए समुचित रूप से जारी किया जा सके। दोनों ओर से जेल की स्थिति की गम्भीरता का परिमूल्यन किया गया; सुरक्षा

विचारों की संवेदनशीलता, विधि के इस क्षेत्र की अज्ञातता, और न्यायिक उपचार, ढांचे के भीतर मानक नियमों और प्रवर्तक अनुश्रवण करने की आवश्यकता पर विचार किया गया। मुकदमेबाजी की नकारात्मकता में बाउन्सेल की इस असाधारण रचनात्मक स्थिति ने न्यायशास्त्र संबंधी नवीनता और न्यायिक सृजनात्मकता के उद्घोष के स्पर्श के बावजूद जेल न्याय की समस्या के हमारे समाधान को सुकर बना दिया।

23. हमें अपने तर्क देने और अपने निष्कर्ष अभिलिखित करने से पूर्व हमारे समक्ष बहस किए गए मुद्दों को नियमबद्ध करना चाहिए।

1. क्या न्यायालय को उनकी उन्मुक्ति की मांग नहीं किन्तु कारागार की परिस्थितियों के भीतर दुर्व्यवहार और अवैध निरोध को कम करने की शिकायत पर कैदियों की व्यथा के बारे में विचार करने की अधिकारिता है? हाँ। हमने इसका उत्तर दे दिया है।

2. मूल अधिकारों विशेषकर अनुच्छेद 14, 19 और 21 जिनका न्यायालय द्वारा निरुद्ध व्यक्ति से संबंध है, का विस्तृत आकार क्या है? यहां पर भी इस आधार को पूरा कर लिया गया है।

3. उनके भंग को रोकने और भंग के लिए दण्डित करने के लिए और जेल न्याय में अभिवृद्धि करने के लिए कौन से न्यायिक उपचार अनुदत्त किए जा सकते हैं?

4. कारागार व्यवहार से सम्बन्धित कौन से व्यावहारिक निर्देशन या निर्वाचन कारागार अधिनियम और नियमों के उपबंधों के साथ सुसंगत करने के लिए न्यायालय द्वारा दिए जा सकते हैं। जो भाग III के हो सकें?

5. अन्ततः आज्ञार्थ बातों को मजबूत करने के लिए कौन से कारागार सुधार दृष्टिकोण और दांवपेंच अपनाए जाने चाहिए?

24. बाउन्सेल और न्यायालय ने बहुत बड़ा कर्नेस फैला दिया है और हम मामले के विस्तृत आयाम के भीतर दलीलों पर विचार करेंगे? इस न्यायालय के विनिर्णयों ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है कि हमारे संविधान के निर्माताओं ने परम्परागत इंगलिश रिटों के कठोर निर्बन्धनों से अनुच्छेद 32 के अधीन शक्तियों को स्वतन्त्र कर दिया था। लचीले अनुदेश, यहां तक कि अनुदेश अनुदत्त करने के लिए बनाए गए सकारात्मक कार्य यथार्थ रूप से जारी किए जा सकते हैं और वे इसके फलदायक आयाम के भीतर आ जाते हैं। अधिकारिता संबंधी आयाम को द्वारकानाथ बनाम आयकर अधिकारी[1]

[1] [1965] 3 एस० सी० आर० 536, 540-541.

के मामले में न्यायाधिपति सुब्बा राव ने बड़े माधुर्य रूप से अभिव्यक्त किया था—

> यह अनुच्छेद विस्तृत वाक्य रचना में व्यक्त है और स्पष्टतः यह अन्याय तक पहुंचने के लिए जहां पर भी वह इसे पाता है बहुत विस्तृत शक्तियां प्रदत्त करता है। संविधान में प्रकल्पित रूप से इस शक्ति के स्वरूप का उस प्रयोजन का जिसके लिए उस व्यक्ति या प्राधिकारी का जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा सकता है वर्णन करने में एक विस्तृत भाषा का प्रयोग किया गया है। यह, जैसा कि इंग्लैंड में समझा गया है, परमाधिकार रिटों के स्वरूप की रिटें जारी कर सकता है किन्तु उन रिटों का विस्तार भी 'स्वरूप' अभिव्यक्ति का प्रयोग करके और विस्तृत कर दिया गया है क्योंकि खुद अभिव्यक्ति उन रिटों के समान नहीं है जिन्हें इंग्लैंड में उन रिटों के साथ भारत में जारी किया जा सकता है किन्तु वे केवल उनके अनुरूप दिखाई गई हैं। इसके अलावा उच्च न्यायालय परमाधिकार रिटों की अपेक्षा निदेश, आदेश या अन्य रिटें भी जारी कर सकता है। यह इस देश की विशेष और जटिल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुतोष बनाने हेतु उच्च न्यायालय को समर्थ करता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन परमाधिकार रिटों को जारी करने के लिए अंग्रेजी न्यायालयों के साथ उच्च न्यायालय की शक्ति के विस्तार को एकीकृत करने का कोई प्रयत्न भारत के समान विशाल देश में, जो संघीय ढांचे के अधीन कार्यरत है सरकार के एकात्मक स्वरूप के साथ तुलनात्मक रूप से इंग्लैंड जैसे छोटे से देश में वर्षों से उभरी हुई अनावश्यक प्रक्रियात्मक निर्बन्धन को प्रस्थापित कर देता है।

25. जहां पर अन्याय अमानवीयता के छोर तक पहुंच कर भाग III में गारन्टीकृत सार्वजनिक मानवीय अधिकारों से उद्भूत होता है और आहत न्यायालय से अवमुक्त करने और हस्तक्षेप करने का अनुरोध करता है तो यह न्यायालय संवैधानिक सहायता के रूप में कलनीय निरर्थकता होगा यदि जब तक कि गलती को ठीक न कर दिया जाए तब तक यह अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता? न्यायालय किताबों में सर्वशक्तिमान दूरस्थ अवकर्षण नहीं है किन्तु एक कर्मण्यतावादी संस्था है जो सार्वजनिक आशा का एक आकर्षक बिन्दु है। हम यह मानते हैं कि न्यायालय नई चुनौतियों से निपटने के लिए रिटें जारी कर सकता है। लार्ड स्कारमैन की अंग्रेजी विधि पर उनकी पुस्तक "दी न्यू डाइमेन्शन", में इसी प्रकार की भर्त्सना एक प्रोत्साहक शकुन

है। किसी प्रकार का घाक्षेप आवश्यक आत्यन्तिक है क्योंकि कारागार की स्थिति में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ (बत्रा और सोबराज) के मामले में विचारणाधीन व्यक्तियों को लोहे के सीकचों में बंद करने या अपील के अधीन मृत्यु दण्डादेश देने के अपराधियों को एकांत कोठरी में बन्द करने की जेल अधिकारियों की शक्तियों को सीमित करती है।

26. एक बार जब अधिकारिता अनुदत्त कर दी जाती है—और हम इस बात को सुस्पष्ट शब्दों में पुष्ट करते हैं कि न्यायालय को अनुच्छेद 32 और इसी प्रकार अनुच्छेद 226 के अधीन भी स्पष्ट शक्ति प्राप्त है इसलिए न्यायालय का यह परम कर्तव्य है कि वह कारागार के ढांचे में दण्डादेश में अनुतोष प्रदान करे—अगला प्रश्न अधिकारिता के पृष्ठांकन तथा उस अधिकारिता को चलाने के लिए है यहां पर फिर बत्रा[1] के मामले में विचारण को प्रसारित कर दिया है और इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

27. क्या कैदी आदमी हैं ? हां वास्तव में वे आदमी हैं। नकारात्मक में इसका उत्तर देना राष्ट्र को और मनुष्यत्वविहीनता के गठन को दोषसिद्ध करना है और विश्व की विधिक व्यवस्था को नामंजूर करना है जिसे अब इण्टरनेशनल गवर्नमेंट ऑन प्रिजनर्स राईट्स में जिसके लिए हमारे देश ने सहमति पर हस्ताक्षर किए हैं, कैदियों के अधिकारों को मान्यता दी है। बत्रा के मामले में इस न्यायालय ने 'मत छूओ' सिद्धान्त को नामंजूर कर दिया है और यह नियम बनाया है कि मूल अधिकार किसी आदमी को जब कि वह कारागार में प्रवेश करता है उसे नहीं छोड़ देते यद्यपि बंदीकरण द्वारा आवश्यकता होने पर उन्हें संकुचित कर दिया जाता है। हमारी सांविधानिक संस्कृति अब कारागार न्यायालय और न्यायिक अधिकारिता के पक्ष में स्फुटित हो चुकी है—

> "संवैधानिक पट्टे में कारागार की सनक और क्रूरता को मानना इस न्यायालय की रिट की अधिकारिता सम्बन्धी पहुंच और दूरी निर्विवाद है। किन्तु प्रक्रियाएं प्रशासनिक विशेषाधिकार में दिक करने वाला हस्तक्षेप विधिक अभिशाप है और संवैधानिक अधिकारों या विहित प्रक्रियाओं में भंग नहीं है।"[1]

28. अमेरिकन सुप्रीम कोर्ट ने इसी प्रकार की स्थितियों में दृढ़ता से और मानवीय रूप से इसके बारे में कथन किया है और उन मतों को बत्रा

---

[1] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन [1979] 1 एस० सी० आर० 494.

के मामले में हमारा न्यायालय को मौन अनुमोदन प्राप्त है। न्यायाधिपति डगलस ने इसे इस प्रकार कहा है—

> कैदी फिर भी 'आदमी' है जो सभी संवैधानिक अधिकारों के हकदार है जब तक कि उनकी स्वतन्त्रता को प्रक्रियाओं द्वारा जो सम्यक् प्रक्रिया की सभी अपेक्षाओं को पूरा करता हो। संवैधानिक रूप से कम नहीं कर दिया गया है।

> न्यायाधिपति मार्शल ने इस दृष्टिकोण का जोरदार शब्दों में अनुमोदन किया है :—

> "मैंने पहले अपने दृष्टिकोण को बतलाया था कि कैदी कारागार के दरवाजे पर आते ही अपने मूल संवैधानिक अधिकारों को नहीं बिखेर देता और मैं न्यायालय के इस मत का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं कि गम्भीर अनुशासन के अधिरोपण से स्वतन्त्रता में सहवर्ती का हित 'स्वतन्त्रता' है जो सम्यक् प्रक्रिया के संरक्षण की हकदार है।"

29. इसलिए हम इस बात की पुष्टि करते हैं कि जहां कि किसी कैदी के अधिकारों का या तो संविधान के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन अतिक्रमण किया जाता है तो न्यायालय की रिट शक्ति को उसका बचाव करना चाहिए जो उसका बचाव कर सकती है, इस सजगता के लिए चेतावनी है। न्यायालय प्रक्रिया दोषसिद्ध व्यक्ति को कारागार पद्धति के भीतर डाल देता है और उसकी स्वतन्त्रता का अवरोधन अंधाधुंध सुधारघर में डालना ही नहीं है अपितु सार्वजनिक उद्देश्य के लिए कार्यरत प्रकाशयुक्त संस्थात्मकता है। न्यायालय का यह शाश्वत तथ्य है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि अवरोधन का संवैधानिक प्रयोजन कारागार प्रशासन के द्वारा पराजित न हो। कुछ मामलों में कैदियों की हाल की न्यायिक देखभाल के इस विधिमान्यकरण के बारे में इस न्यायालय ने आवाज उठाई है और अन्ततः बत्रा के मामले में संवैधानिक न्यायपीठ ने इसका समर्थन किया है—

> "न्यायालय को कारागार प्रशासन की समस्या के सम्बन्ध में 'मत छुओ' दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता नहीं है। यह सब कुछ इसलिए है क्योंकि दोषसिद्ध व्यक्ति न्यायालय के आदेश या निदेश के अधीन कारागार में होता है।"

'रिटेन्शन ऑफ अथारिटी ओवर प्रिजनर्स बाई सेन्टेन्सिंग जज' के शीर्षक के अधीन कोहन ने इस प्रकार टिप्पणी की है[1]—

---

1 शेल्डन क्रान्ज द्वारा लिखित करेक्शन्स एण्ड प्रिजनर्स राईट्स, पृष्ठ 274-275 पर।

जैसा कि न्यायाधीश ले ने ज्युडिशियल मानडेट ट्रायल मैगज़ीन (नवम्बर-दिसम्बर 1971) पृष्ठ 15 पर टिप्पणी की है।

दण्डादेश अधिरोपित करने में न्यायालय का यह दायित्व होना चाहिए कि वह यह उपवर्णित करे कि वह साम्यापूर्ण मात्रा में होगी और इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करे और उस प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए आवश्यक रूप से उसे निर्दिष्ट करे।

> यदि फिर दण्डादेश निष्पादन में हमारा कोई दायित्व है तो न्यायालयों को इस बात को स्पष्ट करना चाहिए कि दण्डादेश अधिरोपण में क्या आशयित है। प्रत्येक दण्डादेश आज्ञापक आदेश के समान शब्दों में व्यक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार से दण्ड पद्धति को यदि सरकार सहानुभूतिपूर्वक आदेश का निष्पादन नहीं करती तो उसे इसका जवाब देना चाहिए।
>
> दूसरे शब्दों में दण्ड देने वाले न्यायालय से इस बात को सुनिश्चित करने की अधिकारिता धारण करने की अपेक्षा की जानी चाहिए कि कारागार पद्धति दण्डादेश के प्रयोजनों को सुरक्षित करती है।
>
> यदि ऐसा नहीं है तो दण्ड देने वाले न्यायालयों को निश्चित रूप से यह प्राधिकार होना चाहिए कि वह दण्डादेश के अनुपालन की मांग कर सके या इसके अनुपालन के लिए कैदी को छोड़ सके।

क्या कारागार के अन्दर या बाहर किसी व्यक्ति को सही, ठीक और उचित पद्धति के सिवाय उसे पारस्टीकृत स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकेगा। न्यायाधिपति भगवती ने मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] में यह मत व्यक्त किया—

> युक्तियुक्तता का सिद्धान्त, जो विधिक रूप से तथा दार्शनिक रूप से समता या गैर मनमानेपन का अनिवार्य तत्व है अनुच्छेद 14 को विचारमग्न, सर्वव्याप्ति के समान ढक लेता है और अनुच्छेद 21 द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया को अनुच्छेद 14 के अनुसरण में होने के लिए युक्तियुक्तता की कसौटी का उत्तर देना चाहिए। इसे 'सही, ठीक और उचित' होना चाहिए और न कि मनमाना, सनकी या निष्ठुर अन्यथा यह बिल्कुल भी प्रक्रिया नहीं रहेगी और अनुच्छेद 21 की अपेक्षा पूरी नहीं होगी।

---

[1] [1978] 1 एस० सी० सी० 248, 284.

30. होसकोट[1] ने मेनका गांधी[2] के मामले में कारागार परिवेश में इस नियम को लागू किया और यह अभिनिर्धारित किया कि सही प्रक्रिया का एक घटक नैसर्गिक न्याय है। इस प्रकार से अब यह एक स्पष्ट विधि है कि कैदियों को जेल में भी मूल स्वतन्त्रता प्राप्त है और अधिकारियों द्वारा विधि विरुद्ध उनके भंग करने पर रिट की सहायता के माध्यम से विधि उसके व्यथा में उसका साथ देगी। भारतीय मानव का एक सतत् साथी है—संविधान से सज्जित न्यायालय। बन्दी प्रत्यक्षीकरण शस्त्र संविधान के भाग III के अधीन दी गई शक्ति के अधीन उपलब्ध है जिसके सम्बन्ध में बत्रा वाले मामले में[3] कहा गया है।

31. संविधान और कैदी के बीच कोई लोहावरण नहीं डाला जा सकता इसलिए यह न्यायालय की चिन्ता का विषय है कि दण्ड भुगत रहे व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतन्त्रता के वंचन करने की शक्ति स्पष्ट है जो इस बात को सुनिश्चित करता है कि जो कुछ दण्डादेश द्वारा समर्थित है उससे न कम और न ज्यादा हो। यदि मानसिक यन्त्रणा या मानसिक दबाव या विधिपूर्वक कारावास की वैध सीमाओं से परे शारीरिक पीड़ा के कारण कैदी बैठ जाता है तो कारागार प्रशासन ज्यादतियों के लिए उत्तरदायी होगा। इसके प्रतिकूल यदि दण्डादेश में विवक्षित वंचन को दूर करने या कम करने के लिए प्रभावशाली अपराधी को सुविधाएं और स्वतन्त्रताएं खरीद सकती हैं तो कारागार प्रशासन से यदि विधि द्वारा असमर्थित हो तो कार्यकारी सांत्वना द्वारा न्यायालय द्वारा दण्डादेश के अपमिश्रण या अवमिश्रण के लिए आदेश की मांग की जाएगी। बत्रा के मामले में हममें से एक ने यह मत व्यक्त किया है—

> यह कहना काफी है कि जब तक न्यायाधीश निरीक्षक हैं और संवैधानिकता को लागू करने वाले हैं और विधिमान्यता के निष्पादन सम्प्रेक्षक बने रहते हैं और अपराधी न्यायालय के समादेश के द्वारा कारागार कहे जाने वाले क्रूर, क्षुद्र जगत में सजा भुगतते रहते हैं तो एक सतत् संस्थागत दायित्व कारागार में डालने वाली प्रक्रिया में अनुश्रवण करने की पद्धति में निहित रहता है और सुरक्षा सम्बन्धी ज्यादतियों को रोकता है। जेलर विधि के नियम द्वारा बाध्य है और कारागार के आवरण के अधीन या उसके मुख्य प्रयोजनों को पराजित करके अनुपूरक दण्डादेश नहीं दे सकता।

---

1 [1979] 1 एस० सी० आर० 192, 203.
2 [1979] 1 एस० सी० सी० 248.
3 सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, [1979] 1 एस० सी० आर० 392, 495.

32. इस प्रकार का मात्र निष्कर्ष नहीं है । न्यायालय को अंगच्छेदन, अभद्र या रहस्यपूर्ण बातों के विरुद्ध कैदी की सुरक्षा करने और हस्तक्षेप करने की शक्ति और दायित्व है और दण्डादेश की अपेक्षा कठोर निर्बन्धन और भारी अत्याचार के बहिष्कार और कारागार में मानवतावाद को प्रवृत्त करने के लिए हेबियस कार्पस का प्रयोग कर सकता है । हम इन प्रस्तावों को अपनी संवैधानिक व्यवस्था में स्वयं साक्ष्य समझते हैं और यदि आवश्यकता हो तो इस प्राधिकार द्वारा समर्थन प्राप्त है । इसलिए हम उपराज्यपाल और केन्द्रीय जेल के अधीक्षक को रिट जारी करते हैं कि कैदी प्रेम चन्द के साथ किसी जेल अधिकारी द्वारा शारीरिक दुर्व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, कि उसके साथ की गई शर्मनाक और दर्दनाक यंत्रणा को जो सरकार के मानव अधिकारों की सुरक्षा करने के दावे पर एक कलंक है—समाप्त कर दिया जाएगा और उसके शरीर पर लगे घावों की सही चिकित्सा होगी और उनका उपचार किया जाएगा । हमें यकीन है कि केन्द्रीय सरकार जेल कर्मचारियों को लोकतन्त्र सरकार के लिए अधिक संवेदनाशून्य प्रवृत्ति न दर्शाने का निदेश देगी । उदाहरण के लिए बत्रा के मामले में किसी कैदी को दण्ड देने से पूर्व विनिर्दिष्ट मार्गदर्शन कर दिया गया है और फिर भी प्रेम चन्द को ऐसी दण्ड कोठरी में बन्द किया गया है जो बिल्कुल एकांत कोठरी के समान है इसके लिए प्रक्रियात्मक सुरक्षाओं के प्रति राजतंत्रवादी उपेक्षा दर्शायी गई है । मात्र यह अभिकथन करना कि बहुत से कैदी आभ्यासिक कैदी हैं अधिकारियों द्वारा विधि के लगातार उल्लंघन के लिए कोई आधार नहीं है । हम यह निदेश देते हैं कि प्रेम चन्द को दण्ड कोठरी से छोड़ दिया जाए और उसे तब तक कि सही प्रक्रिया का अनुपालन न किया जाए ऐसी कठोरता के अधीन न रखा जाए ।

33. इस तथ्य के होते हुए भी बहुत सी दशाब्दियों से बहुत से मंत्री बहुत से राज्यों में कारागार अपोसंस्कृति की क्रमबद्ध परम्परा के लिए जाने गए हैं और जवाहरलाल नेहरू से जयप्रकाश नारायण जैसे राष्ट्र पुरुषों की जेल डायरियों में शोभनरूप से न्यायालय और काउन्सेल का भविष्य की ओर ध्यान दिलाया है जिससे कि कारागार में और अधिक रिष्टि न भुगतनी पड़े संविधान की कारागार पद्धति के बारे में पुरानी क्रूरता के प्रति संविधान की मानवीय मांगें नहीं हैं । इस बात में कम सन्देह है कि या तो उपेक्षित असुविधायुक्तता या कहीं विरोध कैम्पों में जानबूझकर दुराचरण के कारण अंधाधुंध रुकावट किए जाने या हथकड़ी लगाए जाने के समान क्रूरता जारी है । विपदग्रस्त लोगों में से बहुत से गरीब, मूक, अशिक्षित, निराश और

निराश्रय हैं और अपने अधिकारों के प्रति जागृत होने के लिए या न्याय के लिए पहुंच करने के लिए विधि से अधिक दूर हैं विशेषकर जब कि कारागार का बढ़ता उद्देश्य या प्राणीतत्वीय, प्रतिपीडन के लिए सही सम्भाव्यता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए जब मानवता पुकारती है तो विशेष पिटीशनों की इन्तजार किए बिना न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उसकी सुनवाई करे। सामूहिक कार्यवाहियों के समान सामूहिक उपचार का हितमूल्य है।

34. न्यायालय—विद्वान महासालिसिटर ने इस रचनात्मक दृष्टिकोण को रेखांकित किया है—जो कुछ रोते हुए सहवासियों की ओर से इक्का-दुक्का पिटीशनों की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए और छोटे से मामले में छोटे आदमी को थोड़ा सा अनुतोष दे देना चाहिए किन्तु राष्ट्र इसकी सरकारों, कारागार प्रशासनों और सुधारशील विभागों को आवश्यक मार्गदर्शन देना चाहिए और उन लोगों के दिलों में आशाएं भरनी चाहिएं जो मानवीय अधिकारों का पोषण करते हैं कि आखिर न्यायालय, जब कोई नहीं होता, तो प्रहरी है। कानून वही है जो कानून करता है और न्यायालय यदि कोई चीज है तो कार्यरत संवैधानिकता है। स्वाभाविक रूप से डा० चितले ने यह एक प्रभावशाली मांग की है। यह हम समझते हैं कि यहां ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्हें दारिद्रयता के समाज से निकाला गया है जो उनके न्यायोचित दण्डादेशों की अपेक्षा अधिक असुविधाएं भोग रहे हैं। रैल्फ एलीसन्स की अमेरिकन काले लोगों का चित्र कैदी के लिए यहां पर सुसंगत है—

> मैं एक अदृश्य व्यक्ति हूं मैं मांस और द्रव्य के तत्व का व्यक्ति हूं। मैं अदृश्य हूं और केवल इसलिए कि लोग मुझे देखने से मना करते हैं मैं इस बात को समझता हूं जब वे मेरे पास आते हैं तो वे मेरे परिवेश को स्वयं अपने को या उनके अनुमानों की बनावट को देखते हैं। वास्तव में वे मेरे सिवाय हर चीज की ओर प्रत्येक चीज को देखते हैं।

अदृश्यता जिसकी ओर मेरा संकेत है इसलिए होती है क्योंकि यह उन लोगों की आंखों का विशेष दोष है जिनके सम्पर्क में मैं आता हूं। यह उनकी अन्तर्गत दृष्टि के अर्थान्वयन का मामला है। उन आंखों का जिनसे वे वास्तविकता पर अपने भौतिक चक्षुओं के माध्यम से देखते हैं आप हैरान होंगे कि क्या यह अन्य लोगों के मस्तिष्क में केवल भ्रम ही नहीं है।..........आप अपने आपको विश्वास दिलाने की आवश्यकता की कसक महसूस करते हैं कि आप वास्तविक दुनिया में

रह रहे हैं, कि आप सम्पूर्ण मानवीय ध्वनि और वेदना के भाग हैं जिसे आप दुत्कारते हैं, अभिशापित करते हैं और इस बात की शपथ लेते हैं कि वे आपको मान्यता दें और अफसोस यह है कि यह कभी सफल नहीं होता।

35. अन्त्योदय संस्कृति में न्यायालय को पक्षकारों को भूलभरी मुकदमेबाजी में घसीटे बिना सर्वोच्च मार्गदर्शन देकर कमजोर लोगों को बचाना चाहिए। विधि में तथा औषधि में इलाज से परहेज बेहतर होता है। यह नियम न्यायशास्त्र में पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है और इसलिए हम काउन्सेल के अनुरोध को स्वीकार करते हैं और कारागार न्याय के आदर्शमूलक पक्ष पर चर्चा करते हैं।

36. इस अध्याय को प्रारम्भ करने से पूर्व हम उन बातों को उपवर्णित करेंगे जिन पर विद्वान महासालिसिटर ने जोर दिया है अर्थात् कि बत्रा के मामले में (पृष्ठ 488 से 493) भिन्न राय में उपवर्णित विस्तृत मार्गदर्शन वही है जो अन्य न्यायाधीशों की ओर से बोलते हुए न्यायाधिपति देसाई के निर्णय में स्पष्ट है और इसी स्थिति पर यहां पर इस न्यायालय द्वारा फिर से जोर दिया जाना चाहिए कि भ्रांति को दूर किया जा सके। न्यायाधिपति देसाई ने यह कहा था—

> न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने एक विस्तृत निर्णय सुनाया है जो हमारे समक्ष बहुत विस्तार में उठाए गए महत्वपूर्ण विवाद्यकों से संबंधित है जिस पर काफी सतर्कता और चिंता की आवश्यकता है। हमने एक पृथक् राय दी है इसलिए नहीं कि हम मूल आधारों पर उनसे भिन्न मत रखते हैं अपितु इसलिए क्योंकि अपने समक्ष बहस किए गए प्रश्नों के कतिपय पहलुओं पर हम अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करना आवश्यक समझते हैं।

37. इसी प्रकार से एक पृथक् निर्णय में इसी प्रकार का कथन किया गया है—

> मुझे इस बात का ज्ञान है कि मेरे विद्वान बन्धु न्यायाधिपति देसाई द्वारा मार्मिक प्रश्नों के उत्तरों का एक शानदार संयोजन प्रस्तुत किया गया है और मैं उस निष्कर्ष का समर्थन करता हूं।

38. एक स्पष्ट परिशीलन यह दर्शाता है कि बत्रा के मामले में दोनों निर्णय एक ही नियम अधिकथित करते हैं और प्रथम राय में विस्तृत मार्गदर्शन उस मामले में जो उसने दूसरे निर्णय में प्रतिपादित विधि का आवश्यक

प्रोद्भवन है। दोनों काउन्सेल के साथ सहमत होते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सुनील बत्रा के मामले पृथक् राय में विस्तृत विनिधान (पृष्ठ 488 से 493) सही विधि है और देश में इन संस्थाओं को बाध्यकर है। हम इन मार्गदर्शन से सहमत हैं और उस बारे में अपने आप को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं क्योंकि प्रस्तुत मामले में उठाया गया मार्मिक प्रश्न और मुख्य सिद्धान्त जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं उनका एक ही निष्कर्ष है।

39. प्रारम्भ में हम यह देखते हैं कि कैदियों के अधिकार के बारे में यहां तक कि वकीलों में भी काफी विधिक अशिक्षण फैला हुआ है। विधि की पहुंच विधि की जागृति की उपधारणा करती है और अधिकारों की कर्मण्यता-वादी जागृति न्यायालय के न्याय की मांग करने के लिए शर्त है। इसलिए न्यायिक दृष्टि में प्रथम आवश्यकता राज्य के लिए कारागार न्याय पर एक पुस्तिका निकालना और उसे अद्यतन बनाना और आम आदमियों के लिए उसे साफ, स्पष्ट और सही विस्तृत और इसके ऊपर कारागार जीवन की दैनिक समस्याओं और महसूस की गई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यवहारिक बनाना है। भारतीय न्यायालयों के न्यायपालिका के एक भाग के रूप में इस बारे में राज्य को सहायता करने का विशेष दायित्व है। अमेरिकन सिविल लिबर्टीज यूनियन द्वारा तैयार की गई एक लाभदायक पुस्तिका हमें डा० चितले ने दी है जिसका शीर्षक "दी राईटस ऑफ प्रिजनर्स" है। किताबों में और न्यायालयों में जो विधि है वह उसे सहायता नहीं कर सकती जब तक कि वह उपलब्ध प्ररूप और समझने योग्य भाषा में कैदी तक न पहुंच पाये इसलिए हम राज्य का ध्यान इस आवश्यकता की ओर दिलाते हैं कि वह क्षेत्रीय भाषा में कैदियों की पुस्तिका प्राप्त करे और उसे सहवासियों को मुफ्त उपलब्ध कराये। विधि जानना गैर कानूनीपन के डर से स्वतन्त्र होने के लिए प्रथम कदम है।

40. कैदी विशेष रूप से या दुगने अक्षम होते हैं। एक बात यह है कि बहुत से कैदी कमजोर वर्ग, गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक स्थान और इसी प्रकार की बातों से संबंधित होते हैं। दूसरे कैदीगृह एक प्राचीरमय विश्व है जिसका मानवीय विश्व से सम्पर्क वर्जित है जिसका परिणाम यह होता है कि बंधक सहवासी नहीं देखे जा सकते उनकी आवाजें नहीं सुनी जा सकती और उनके साथ जो अन्याय होते हैं उन पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए जैसा कि अनुच्छेद 21 में उपबंधित है यह बात अवश्यकरणीय है कि जीवन या स्वतन्त्रता को विवेक उत्थान प्रक्रिया को नवीन किए बिना पशु जीवनमय जमा हुआ या निलम्बित सजीवता में नहीं रखा जा सकता। न्यायाधिपति फ्रैंक

द्वारा दिया गया 'जीवन' का अर्थ जो खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[1] और मेनका गांधी बनाम भारत संघ[2] के मामले में अनुमोदित किया गया था उसके उद्धरण देने की आवश्यकता है—

> पशु जीवन की अपेक्षा कुछ और भी इसके वंचन के विरुद्ध अवरोध उन सभी अंगों और मानसिक शक्तियों तक विस्तारित किया गया है जिसके द्वारा जीवन का मजा लिया जाता । यह उपबंध समान रूप से भुजा या टांग के विच्छेदन, अंगविकृति या आंख निकालने या शरीर के किसी अन्य अंग को जिसके माध्यम से आत्मा बाहरी दुनिया के साथ संचार करती है, नष्ट करने को प्रतिषिद्ध करता है ।

इसलिए अन्दर रहने वाले कैदी आदमी हैं और उनकी मनुष्यता यदि विधि-पालकों द्वारा जो विधि भंग करने वाले हो गए हैं अपंग कर दी जाती है । इस न्यायालय की रिट द्वारा ऐसी गलती करने से रोक दी जाएगी । इसलिए कैदियों के साथ व्यवहार में सही प्रक्रिया विधि उपबंध की पहुंच का एक अन्य आयाम जो विधि की आसान पहुंच में है जो व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को सीमित करती है जिन्हें जेल के दरवाजों से बाहर जाने से रोके जाते हैं मांग करती है ।

41. इस क्षेत्र में एक पुस्तिका विधि की विधि शक्तियों की पूर्ति करती है । वस्तुतः कारागार कर्मचारी भी अधिकारों और सीमाओं की गलत सूचना या अशिक्षा की व्याधि विधा से पीड़ित हैं और कानून की यह उपेक्षित स्थिति मानव अधिकारों में निश्चेतनता पैदा करती है और कारागार विधि की पुस्तिका में परीक्षा की शर्तों के लिए न्यूनतम माना जाना चाहिए । कारागार अधिकारों को संस्कृति विरोधी आचार के अतिरिक्त अननुदिष्ट कर्मचारियों से खतरा है जो रम गया है । सरकार को यह शोभा देता है कि वह रक्षक और अभिरक्षक के लिए कारागार विधि की आचार रूपों के साथ घनिष्ठता रखने की मूलिक अपेक्षा पर जोर दे ।

42. अधिकार न्यायशास्त्र महत्वपूर्ण है किन्तु यह उपचारात्मक न्यायशास्त्र की अनुपस्थिति में पृथक्करण बन जाता है । विधि कोई आसमान की अपार शक्ति नहीं है किन्तु एक ऐसी भरी हुई बन्दूक है कि जो जब किसी प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा प्रायोगिक गुण के साथ उसका घोड़ा दबाया जाता है

---

[1] [1964] 1 एस० सी० आर० 332, 337.

[2] [1978] 1 एस० सी० आर० 248.

तो यह आघाती दंड की आंच को घायल कर देती है। हम इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि किसी भी कैदी को व्यक्तिगत रूप से बंधन के अधीन नहीं रखा जा सकता चाहे वह बन्दीकरण के तथ्य और न्यायालय के दण्डादेश द्वारा आवश्यक हो। अन्य सभी स्वतन्त्रताएं उससे संबंधित हैं—पढ़ना और लिखना, व्यायाम करना और आमोद-प्रमोद करना, मनन करना और गीत गाना अत्यधिक गर्मी और सर्दी से सुरक्षा के समान सुरक्षात्मक आराम के लिए अनिवार्य नग्नता जबर्दस्ती गुदा मैथुन और अन्य असहनीय नीचता के समान तिरस्कार से स्वतन्त्रता के लिए कारागार परिसर में अनुशासन और सुरक्षा की अपेक्षाओं के अधीन घूमना, आत्म अभिव्यक्ति के लिए कम से कम आनन्द, गुण और तकनीक अर्जित करने के लिए कारागार की सीमाओं के लिए बाध्य-कर अन्य मूल अधिकार।

43. काफी पहले न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया था और हम उसे पुष्ट करते हैं[1]—

> "दोषसिद्ध व्यक्ति दोषसिद्धि के कारण ही उन सभी मूल अधिकारों से जो अन्यथा उनके पास हैं विरहित नहीं हो जाते। दोषसिद्धि के पश्चात् विधि के प्राधिकार के अधीन कारागृह में रहने की बाध्यता भारत संघ में स्वतन्त्रता से विचरण करने के अधिकार जैसी मूल स्वतन्त्रताओं की वंचना इसके बल के द्वारा आवश्यक हो जाती है। वृत्ति का कोई आदमी अपनी सजा भुगतते समय परामर्श देने के अपने अधिकार से इस प्रकार से वंचित हो जाता है। किन्तु संविधान समझौते को अर्जित करने, धारण करने या उसका वहन करने के अधिकार जैसी अन्य स्वतन्त्रताओं को गारन्टीकृत करता है जिसके प्रयोग के लिए बन्दीकरण कोई बाधा नहीं है। इसी प्रकार से कोई दोषसिद्ध व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारन्टीकृत मूल्यवान अधिकार का भी हकदार है कि उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण के सिवाय उसके जीवन या व्यष्टिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

44. हम इस बात का सुझाव देना उचित समझते हैं कि उपनिवेश-वादी दासता के हमारे देश में और जीवन में आए बाद के उद्वेग में सरकारी तौर पर उन अधिकारों के प्रचार को हिताधिकारियों द्वारा भी मूल्यांकन किया

---

[1] डी० भुवन मोहन पटनायक और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य, [1975] 2 एस० सी० आर० 24, 26.

जाना आवश्यक है। इसलिए कैदियों के अधिकारों और दायित्व को प्रदर्शित करने वाले बड़े-बड़े सूचना पट्ट लोगों की भाषा में कारागार के भीतर मुख्य स्थानों पर लटकाये जाने चाहिएं। हम प्रभावित व्यक्तियों को उनके दृष्टि में कानून को लाने की प्रक्रिया पर विचार कर रहे हैं।

45. कारागार अधिनियम की धारा 61 जिसे काल्पनिक रूप से बाध्य बना दिया गया है उसके भी यही परिणाम हैं। वह धारा निम्न प्रकार पठित है—

> "धारा 59 और 60 के अधीन नियमों की प्रतियां जहां तक वे कारागार के शासन को प्रभावित करते हैं ऐसे स्थानों पर, जिस पर कारागार में नियोजित सभी व्यक्ति पहुंच सकते हैं, इंग्लिश और स्थानीय भाषा दोनों में प्रदर्शित की जाएंगी।"

46. हम यह अभिनिर्धारित करना ठीक समझते हैं कि कारागार नियमावली की प्रतियां कैदियों की पहुंच के भीतर रखी जाएंगी। अंधेरा किसी का कभी कोई फायदा नहीं करता और प्रकाश कभी भी किसी का नुकसान नहीं करता।

47. शायद किसी कैदी का महत्वपूर्ण अधिकार उसके शारीरिक या मानसिक व्यक्तित्व की सुस्थिति है। इस न्यायालय ने बत्रा के मामले में "मान्स्ट्रस बीहाइन्ड बार्स", नामक लेख में पाये गए कैदियों की यन्त्रणा के अन्तर्राष्ट्रीय लहर को निर्दिष्ट किया था। वह कैदियों की सुरक्षा के विवाद्यक को सुलझाने के लिए हमारी उत्सुकता को बढ़ा देता है।

48. विधि की समस्या, जब कि उससे विधि द्वारा छिपाये गए व्यक्तियों की सुरक्षा करने को कहा जाता है एक ऐसी स्पष्ट संस्कृति और उच्च अनुभव और सूक्ष्म रचनाओं और मानवीय अभिकरणों से संवेदनयुक्त निवारक प्रक्रिया विकसित करना है जो टूटे हुए दिलों पर अकसीर, मरहम का काम दे सके। वास्तव में दोनों ओर के काउन्सेल ने सतर्कतापूर्वक कारागार अधिनियम के ढांचे के भीतर और संविधान की समष्टि के भीतर उपचारात्मक प्रक्रियाएं और कर्मचारी वर्ग को प्रस्तुत करने के लिए न्यायालय की सहायता करने का प्रयत्न किया है।

49. शारीरिक आक्रमण के अतिरिक्त दण्ड के बहुत से रूप हो सकते हैं। कैदी को एकांत कोठरी में डालना, आवश्यक सुविधाओं की मनाही करना और कभी-कभी अधिक खतरनाक दूरस्थ कारागार में स्थानान्तरण करना जहां कि मित्रों और संबंधियों के समाज के आने-जाने से छुटकारा मिल जाए,

अपमानजनक श्रम का आवंटन उदण्ड और दुष्ट लोगों के गिरोह का काम उसे देना और इसी प्रकार की बातें दण्डात्मक प्रभाव की हो सकती हैं। ऐसा प्रत्येक दण्ड या संक्षेपण विस्तृत भाव में स्वतन्त्रता या जीवन का व्यतिक्रम है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता जब तक अनुच्छेद 21 की पुष्टि नहीं की जाए। दोष निवारक विधिक प्रक्रिया जो सही युक्तियुक्त और प्रभावी हो, होनी चाहिए। ऐसा दण्ड अनुच्छेद 14 के अधीन मनमाना होगा यदि यह अनिर्बंधित विवेकाधिकार पर निर्भर करता है अनुच्छेद 19 के अधीन अयुक्तियुक्त होगा यदि यह असाध्य और अनअपीलीय है और अनुच्छेद 21 के अधीन अनुचित होगा यदि यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अतिक्रमण करता है। प्रथम निर्णय में उपवर्णित बत्रा के मामले में अनेक मार्गदर्शन सिद्धान्त जिन्हें हम स्वीकार करते हैं किसी चरण में सुनवाई वरिष्ठ द्वारा पुनर्विलोकन और तुरन्त न्यायिक विचार का उपबंध करते हैं जिससे कि कार्यवाहियां भिन्न न हो सकें। हम उस प्रयोजन के लिए उन मानकों और संस्थागत उपबंधों के कठोर अनुशासन का निदेश देते हैं।

50. इसी प्रकार से या तो दण्ड द्वारा या अन्यथा कोई व्यक्तिगत हानि किसी निष्पक्ष, सक्षम, उपलभ्य अधिकरण के समक्ष कोई निवारक उपचार या विशेष मामलों में भूतलक्षी उपचार दिए बिना कोई बंदी नुकसान नहीं भुगतेगा।

51. न्यायालय अन्याय को सही करने के लिए सदैव तैयार रहता है किन्तु प्रत्येक विवादग्रस्त व्यक्ति को वास्तविक बाधाएं और कारागार की वास्तविकताओं को जानते हुए रिट के लिए न्यायालय को समावेदित करने के लिए कहना व्यावहारिक प्रतिपादना नहीं है। यह बात सही है कि यदि मूल तथ्यों का पता लगाया जा चुका है तो बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए कार्यवाही के रूप में अनौपचारिक संसूचना ग्रहण करने के लिए प्राविधिकताएं और विधिक नियम न्यायालय के लिए कोई बाधा नहीं है। फिर भी सम्भ्रम और न्यायालयों की दूरी विधिज्ञ और ईश्वरवादिता संस्था को अनभिगम्य रखते हैं।

वह प्रणाली सर्वोत्तम है जहां कि उपचार की अपेक्षा मात्र किए जाने पर क्षति को दूर करने के लिए तुरन्त कार्यवाही की जाएगी। इसलिए वर्तमान, दिनांकित विधान में नए पक्षों का परिशीलन करना चाहिए। निःसन्देह नवीन विधान सर्वोत्तम हल है, किन्तु जब विधि के निर्माता इतना समय ले लेते हैं कि सामाजिक धैर्य को आघात पहुंचता है, जैसा कि इसी कारागार सुधार के मामले में है, तो न्यायालयों को अपना निर्वचन करके तथा सकारी

पर कुरेदकर और जो भी पत्थर उपलब्ध हो उस पर लकीरें फेर कर काम चलाना पड़ता है और वे दूरस्थ संगमरमर की वास्तुशिल्पकृति की प्रतीक्षा नहीं करते। काउन्सेल ने इस व्यावहारिक इंजिनियरी के प्रति उनका ध्यान केन्द्रित किया और संयुक्त रूप से न्यायालय की सहायता की जिससे कि वह कारागार अधिनियम द्वारा विहित की गई बातों को सांविधानिक रूप दे। इस विधिक शक्ति द्वारा उन्होंने न्यायालय से यह वांछा की कि वह पुरातन उपबन्धों में विधिक उपचारों का परिशीलन करे।

52. प्रारम्भिक तौर पर कारागार अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि वह न्यायालय के दण्डादेश को कार्यान्वित करे। (उदाहरणार्थ देखिए कारागार अधिनियम, 1900 की धारा 15 और 16) इस दण्डादेश को कार्यान्वित करने से यह अभिप्रेत है कि अतिरेक करना अवैध है और परिणामतः कोई कारागार अधिकारी जो मात्र बंदीग्रहण अथवा आने-जाने का अतिलंघन करता है अथवा अन्यथा ऐसी बातों को करने के लिए विवश करता है जो कि दण्डादेश के अन्तर्गत आती है, अनुच्छेद 19 का अतिलंघन करता है। कठिन कारावास के दण्डादेश कारागार में निवास करने वाले बंदियों को इस बात के लिए आबद्ध करते हैं कि वे कठिन परिश्रम करें, न कि अतिकष्टकर परिश्रम और इसलिए बदला लेने वाला कोई अधिकारी जो कि किसी बंदी को भावतः उस पर कष्टप्रद तथा हीन भावना उत्पन्न करने वाला कार्य अधिरोपित करके उसे तंग करता है, विधि के समादेश का उल्लंघन करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी बंदी को इस बारे में आबद्ध किया जाता है कि वह विष्टा का वहन करे, तो वह बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट की मांग कर सकता है। धारा 53 में 'कठिन परिश्रम' का मानविक अर्थ लगाना होगा। कोई महिला छात्रा अथवा कमजोर पुरुष जिस पर कठिन कारावास का दण्ड अधिरोपित किया गया हो, उन्हें इस बात के लिए विवश नहीं किया जा सकता कि वे दिन भर में घंटों पत्थर तोड़ते रहें। बंदी मृदुल कार्यों की तो मांग नहीं कर सकता, किन्तु युक्तियुक्त रूप से उसे ऐसे कार्य सौंपे जा सकते हैं जो कि उसके लिए उपयोगी हों। बुद्धिमत्ता और सहानुभूति दाण्डिक कारागारों के शत्रु नहीं हैं।

53. कारागार अधिनियम की धारा 27(2) तथा (3) में यह कथन किया गया है :

> 27. बन्दियों के पृथक्करण के बारे में इस अधिनियम की अपेक्षाएं निम्नलिखित हैं—
>
> (1) × × × ×

(2) ऐसे कारागार में, जहां इक्कीस वर्ष से कम आयु के पुरुष बन्दी परिरुद्ध है, उन्हें दूसरे बन्दियों से बिलकुल पृथक् रखने तथा उनमें से ऐसे बन्दियों को, जो यौवनागम की अवस्था में पहुंच चुके है, ऐसे बन्दियों से, जो उस अवस्था को नहीं पहुंचे है, पृथक् रखने के उपाय किए जाएंगे;

(3) दोषसिद्धि-पूर्व के आपराधिक बन्दियों को सिद्धदोष आपराधिक बन्दियों से अलग रखा जाएगा; और

जिन तत्वों के प्रति हमने पहले निर्देश किया है वे यह उपदर्शित करते है कि इस नियम को नजर अन्दाज कर दिया जाए और इसके उल्लंघन में न्यायिक दृष्टि से सुधार करना चाहिए और कारागार के कर्मचारिवृन्द को दण्ड दिया जाना चाहिए। यौन (सैक्स) संबंधी अतिरेक तथा शोषणात्मक श्रम ऐसे दोष है जिनपर वयस्क लोग किशोरों के प्रति अपराध करते है। कारागार के युवा बन्दियों को अलग रखा जाना चाहिए और उन्हें वयस्कों द्वारा शोषण से मुक्त किया जाना चाहिए। यदि कुलदीप नय्यर का कहना सही है तो यह नियम अभी कार्यान्वित नहीं किया गया। यह अमानविक तथा अयुक्तियुक्त है कि युवा बालकों को काम वासना से पीड़ित वयस्क बन्दियों के पास रखा जाए अथवा उनसे बलात्श्रम या कठोर कैदियों के लिए छोटे-मोटे काम करवाने के लिए इधर-उधर दौड़ाया जाए। ऐसी दशा में अनुच्छेद 19 हस्तक्षेप करता है और आरक्षण प्रदान करता है।

54. धारा 29 तथा एकांत कारावास से संबद्ध नियम बत्रा वाले मामले[1] के अन्तर्गत आ चुके है। किन्तु प्रेमचन्द को इसी मामले में एकांत कारावास अथवा (दण्ड कोठरी) में डाल दिया गया है और इस नियम की परवाह नहीं की गई जो कि बत्रा वाले मामले में दण्डात्मक एकांत कारावास के अधिरोपित किए जाने के बारे में विद्यमान है। हम इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि 'कोठरी' एकांत वास नहीं है और हमें इस बारे में अचम्भा होता है कि भला वार्डरों तथा वार्डनों को इस प्रकार का क्रूर बर्ताव करके कैदी प्रपीड़न प्रसन्नता का अनुभव होता है। दीर्घ समय तक एकान्त कोठरी में अवरुद्ध रखा जाना और समाज से कठोर रूप में विलग किया जाना दाण्डिक है और इसलिए वह केवल औचित्यपूर्वक प्रक्रिया द्वारा समानांतर रूप से अधिरोपित किया जाना चाहिए। विद्वान महासालिसिटर ने यह उल्लेख किया कि हो सकता है कि कुछ बन्दी स्वयं अपने क्षेम के लिए विलग होकर एकांत

में रहना चाहें । ऐसे मामलों में यदि दोषारोपण से बचना है तो यह आवश्यक है कि कम-से-कम उच्चतर अधिकारियों को, तुरन्त, लिखित रूप में उनकी अनुमति की रिपोर्ट प्रेषित कर दी जाए ।

55. कुटुम्ब तथा मित्रों से विलग रहते हुए बन्दियों से मुलाकात उन्हें सांत्वना देती है और मात्र अमानवीकृत पद्धति को ही इस मानविक सुविधा से कारागार के निवासियों को वंचित करने में विनिहित प्रसन्नता मिल सकती है । निःसन्देह, अन्वेषण तथा अनुशासन के अधीन रहते हुए और अन्य अभिरक्षा की कसौटियों पर ध्यान देते हुए साथियों, माता-पिता और अन्य कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा मेल-मिलाप का अधिकार ऐसा है कि अनुच्छेद 19 और उसकी परिधि से तथा उसके प्रकाश में इस अधिकार से प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता । इसके अलावा, दण्डादेश का समस्त पुनर्वासात्मक प्रयोजन नम्र बनाना न कि कठोर बनाना, है और इस प्रकार के अधिक मेल-मिलाप से यह अवसर होगा । तनकी, एकाकी बन्दी एक खतरनाक अपराधी बनने की प्रवृत्ति रखता है और कारागार सम्बद्ध कारखाना है ।

शैल्डन क्रान्ट्ज ने सही तौर पर यह टिप्पण किया है[1] —

> 1973 में राष्ट्रीय सलाहकार आयोग ने यह दलील दी थी कि बन्दियों को मुलाकात करने का अधिकार होना चाहिए । [टास्क फोर्स रिपोर्ट करेक्शन्स, (1973) पृष्ठ 66] । उसने यह भी दलील दी कि सुधारात्मक अधिकारियों को चाहिए कि वे न केवल मुलाकात बात को सहन करें बल्कि उन्हें तो उसे प्रोत्साहन देना चाहिए, विशेष रूप से कुटुम्ब के सदस्यों के साथ । हालांकि आयोग ने इस बात को मान्यता दे दी कि स्थान की समस्याओं तथा अभिरक्षा संबंधी बातों से निपटने के लिए विनियमों का होना आवश्यक है, उसने यह प्रस्थापना की कि इस बात को पूर्विकता दी जानी चाहिए कि जिन स्थानों पर मुलाकात की जाती है वे सुहावने हों तथा वे रोकटोक हों । उसने यह भी दलील दी कि सुधार करने वाले अधिकारियों को चाहिए कि वे उस बातचीत में न तो टपकें जो कि चल रही हो और न ही अन्यथा बातचीत करने वालों की एकांतता में हस्तक्षेप करें । इस प्रकार हालांकि कुटुम्ब तथा मित्रों द्वारा मुलाकात पर संविधान के सम्भाव्य उपयोग पर सम्प्रति परिसीमाएं हो सकती हैं तथा सार्वजनिक नीति ऐसी होगी

[1] शैल्डन क्रान्ट्ज, करेक्शन्स एण्ड प्रिजनर्स राइट्स 129-130.

चाहिए कि वह किसी भी स्थिति में इस क्षेत्र में सारवान् सुधारों का आदेश दें।

हमें इस बात का कोई कारण नजर नहीं आता है कि भला युक्ति-युक्त निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए मुलाकात के अधिकार को वर्तमान सांविधानिक प्रास्थिति का दावा क्यों नहीं करना चाहिए। अभिरक्षा तथा अनुशासन में विचारों के अधीन रहते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि कुटुम्ब के सदस्यों, निकट मित्रों तथा विधिसम्मत आगन्तुकों द्वारा उदारतापूर्वक मुलाकात बंदियों के अधिकारों का भाग है और उनका आदर किया जाएगा।

56. इसके अलावा 'पैरोल' भी अभी असन्तोषजनक तथा मनमाना है, तथापि हम से यह अपेक्षा नहीं की गई है कि हम उस सांविधानिक क्षेत्र का अन्वेषण करें और इसलिए हम उसे स्थगित करते हैं। इसी प्रकार बंदियों को सलाखों में जकड़ना एक ऐसी अमानविकता है जो कि ऐसी दशा के सिवाय अन्यायोचित है, सिवाय वहां की जहां कि सुरक्षित अभिरक्षा अन्यथा असम्भव हो। साधारण रूप से हथकड़ियां पहनाना तथा सलाखों में जकड़ना एक बर्बरता की कहानी कहते हैं जो कि हमारी मानविक गरिमा तथा सामाजिक न्याय के उद्देश्य के प्रतिकूल है। तथापि यह असांविधानिकता निर्दयपूर्ण रूप से बहुत से सुधारालयों में प्रचलित है, यहां तक कि पश्चात्ताप विधि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह इसके प्रयोग का गम्भीरतम स्थिति के सिवाय परित्याग कर दे।

57. इन अधिकारों तथा रक्षोपायों में एक विशेष तन्त्र की आवश्यकता है। आन्तरिक देखरेख तथा स्वतन्त्र रूप से नजरअन्दाज कर देने की आवश्यकता पर अधिक जोर देना अनावश्यक है। बंदियों के अधिकारों तथा बंदीगृह की गलतियां उपचारात्मक सृजनात्मकता को एक चुनौती है।

58. कोल्ह ने अपनी पुस्तक में यह टिप्पण किया है—

> सम्भाव्यतया प्रभावशील व्यथा संबंधी प्रक्रियाओं की आवश्यकता का अनुसरण करना आन्तरिक कार्यक्रमों की दृष्टि में (औपचारिक परिवाद प्रक्रियाएं) तथा ऐसे कार्यक्रम जिनके अन्तर्गत बाह्य व्यक्ति आ जाते हैं (लोकपाल, नगर अन्वेषण समितियां, मध्यस्थ इत्यादि) दोनों की अपेक्षा करेंगे।

इसलिए बंदियों के अधिकारों तथा उनके परिरोध की शर्तों के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन के अलावा हमें त्वरित प्रशासनिक व्यथा संबंधी प्रक्रियाएं विरचित करनी होंगी।

59. वास्तव में, अपराधों का एक नवीन अध्याय, जहां कठोर दण्ड दिए जाने हों जब कि कारागार अधिकारी पथभ्रष्ट हो जाते हैं, कारागार सुधार की कार्य-सूची में एक महत्वपूर्ण मद के रूप में है और ऐसी स्कीम में स्वतन्त्र अभिकरणों द्वारा नवीन तथा विचारण सहित ऐसे अपराधों संबंधी परिवादों का प्रस्तुत किया जाना भी इसी में शामिल होना चाहिए। हम एक विकृत संसार से गुजर रहे हैं जहां से कि धूप तथा रोशनी का बहिष्कार कर दिया गया है और अपराध के आवास में स्नायुतंत्र रोग का प्रसार हो चुका है। विशेष स्थितियों में विशेष प्रकार के समाधानों की आवश्यकता है।

60 अब हम काउन्सेल के अत्यन्त जटिल पहलू पर आते हैं अर्थात् दुर्बलतम आरक्षपरस्त व्यक्तियों की निर्भीक परिधि के अन्तर्गत उपचारात्मक तन्त्र की विधिक रचना तथा यान्त्रिकी और स्वतन्त्रता, पहुंच तथा शक्ति के साथ पुनर्विलोकन करना और दण्ड देने का कार्य करना। बंदीगृह की शक्ति जो न्यायिक देखरेख से रहित हो, यंत्रणा के प्रति प्रवृत्ति रख सकती है।

61 यदि सांविधानिक तथा सांस्कृतिक रूप से सामंजस्यपूर्ण संहिता की रचना की जानी है तो कारागार अधिनियम तथा तद्धीन बनाए गए नियमों को पुनरीक्षित करना अपेक्षित है। हमें यह कहने में प्रसन्नता होती है और हम इस विषय में विद्वान् महासालिसिटर के दृष्टिकोण से सहमत हैं कि आदर्श जेल निर्देशिका वास्तव में आदर्श नहीं है और वह सम्भवतः ऐसे कारागार पदधारियों की देन है जिन्हें संविधान की विवक्षताओं में अपर्याप्त दक्षता प्राप्त है और जो मानव अधिकारों के नए युग के प्रति जागरूक नहीं है। हम महासालिसिटर के इस सुझाव को स्वीकार करते हैं कि वर्तमान कानूनी ढांचे के भीतर संविधानिकता की अपेक्षाओं का परिशीलन किया जाना चाहिए। उन्होंने जोरदार रूप से न्यायिक अभिकरण की आवश्यकता का अवलम्ब लिया है जिसकी उपस्थिति, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या प्रत्यायोजित रूप में कारागार की दीवारों के भीतर हो, से कि वह बंदियों की व्यथाओं पर विचार कर सके। इस प्रयोजन के लिए उन्होंने मुलाकात करने वालों की देखरेख करने वाले बोर्ड का अवलम्ब लिया है और कारागृह लोकपाल के स्थान पर इस्तक्षेप स्थानापन्न के रूप में उनकी शक्तियों और कर्तव्यों पर विचार किया है। कारागृह में स्वागत तथा व्यथाओं को दूर करने के लिए नियंत्रक पदधारियों की वाञ्छा है। तो कारागार अधिनियम तथा तदधीन बनाए गए नियमों को पुनरीक्षित करना अपेक्षित है।

62. बहरहाल, दैनिक घटनाएं जब कि वे कठोरतापूर्वक आघात पहुंचाती है उन्हें तुरन्त नियंत्रित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से जहां कि कारागृह रक्षक तथा मुख्य संरक्षक उसमें निवास करने वालों के साथ मुठभेड़

करते हैं। उनका व्यवहार प्रायः लड़ाई-झगड़ा तथा भय उत्पन्न करता है, किन्तु जब उन द्वारा किए गए कार्यों में अधिक्षेप किया जाता है तो समस्त प्रतिरक्षा कार्यवाही उच्चस्तर से लेकर निम्न स्तर के अधिकारियों द्वारा उन्हें संरक्षित करती है। यहां तक कि अन्याय भी दण्ड से बच निकलता है।

63. इस संदर्भ में डेविड फ्रोलको को उद्धृत करना यथोचित होगा[1]—

> वर्तमान पद्धति कारागृह के अन्तर्गत बंदी के जीवन के प्रत्येक पहलू के बारे में आत्यंतिक विवेकाधिकार प्रदान करती है। कारागृह के जीवन का यह भाग बंदियों के प्रति गम्भीर विद्वेष उत्पन्न करता है क्योंकि प्रत्येक विस्तार पर्यन्त जिस रीति में रक्षकों द्वारा बंदी से व्यवहार किया जाता है वह उन शर्तों के गम्भीर्य का अवधारण करता है जिन्हें कि उसे सहन करना पड़ेगा। यह स्पष्टतर बात है कि कारागार में प्राधिकारी का स्तर जितना ही नीचा होता है (ऊपर वार्डन से नीचे रक्षक तक) उतना ही बड़ा विवेकाधिकार कारागृह के पदधारी में निहित किया जाता है और न्यायालय उनके विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने के बारे में उतने ही अनिच्छुक रहते हैं। इस प्रकार चाहे वह चिकित्सीय उपचार के लिए प्रार्थना हो, आंगन में जाने में अथवा बंदीगृह की पुस्तकालय में जाने का अधिकार या फिर कारागृह अनुशासन तथा दण्डादेश का वस्तुतः अधिक गम्भीर मामला हो ब्लाक में विद्यमान रक्षक बंदी पर अन्तिम शक्ति रखता है। कारागृह जीवन के संदर्भ में सम्पूर्ण विघटन जहां कि उसे सही बनाने के लिए कोई उपचार विद्यमान न हो, सर्वथा विनाशक हो सकते हैं। न्यायाधिपति सी बलॉक ने इसे कठोर शब्दों में इस प्रकार कहा है: वास्तव में बंदीगृह के रक्षक अनियंत्रित प्राधिकारी के भ्रष्टाचारी प्रभाव से अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक असुरक्षित (सुभेद्य) होते हैं। यह एक जानी-मानी बात है कि बंदीगृह को न्यूनतम खर्च पर चलाया जाता है और साधारण वेतन तथा अनुचित कार्य सम्बन्धी शर्तें इस बात को कठिन बना देती हैं कि उच्चस्तर का कर्मचारिवृन्द उसके प्रति आकृष्ट हो। इसके अलावा, उत्पाती बंदियों के साथ व्यवहार करने में अधिकारियों का प्रशिक्षण अधिकतर राज्यों में बहुत कमजोर होता है।

जार्ज ए० हिल्स ने एक कैदी के पत्र को उद्धृत किया है[2]—

[1] राईट्स ऑफ प्रिजनर्स, पृ० 23.

[2] राजर की सेविजर : व्हीरन ग्राम फर्ल्स पृष्ठ 28-29.

> आप किसी व्यक्ति को बर्बरता और निरादर के जरिए पुनर्वास प्रदान नहीं कर सकते·····················यदि आप किसी व्यक्ति से पशु के समान व्यवहार करते हैं तो आपको यह उससे प्रत्याशा करनी चाहिए कि वह पशु के समान ही व्यवहार करेगा। प्रत्येक कार्यवाही की प्रतिक्रिया होती है··················और इस हेतु को कोई बंदी मानव के समान व्यवहार करे उस पर आपको भरोसा रखना चाहिए···········आप उसके मुंह पर थूककर उससे यह प्रत्याशा नहीं कर सकते कि वह मुस्करा देगा और आपका धन्यवाद करेगा।

मुलाकात करने वालों की बाबत आगन्तुकों के बोर्ड की संख्या तथा रचना यहां काम में आती है और इसे कानूनी शक्ति प्राप्त है। आगन्तुकों की देखरेख से सम्बन्धित शक्ति अति व्यापक है, आगन्तुकों के समूह के अन्तर्गत न्यायिक अधिकारी आते हैं और सांविधानिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किसी स्थिति को विधि सेवा के लिए काम में लाया जा सकता है। पैरा 53-ए के साथ पठित पैरा 47 बोर्ड की संरचना को उपवर्णित करता है। पैरा 47(बी) से (डी) के अन्तर्गत जिला एवम् सैशन न्यायाधीश, जिला मजिस्ट्रेट तथा अन्य अधिकारियों के साथ उपखण्ड मजिस्ट्रेट आते हैं। पैरा 53 तथा 53-बी में आगन्तुकों के कर्तव्यों को प्रगणित किया गया है और उनके अन्तर्गत (क) बैरकों, कोठरियों, वार्डों, कर्मशालाओं तथा सामान्य रूप से कारागार की अन्य इमारतों एवम् पकाये गए भोजन का निरीक्षण आता है; (ख) वे इस बात को सुनिश्चित करते हैं कि क्या स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा सुरक्षा के विषय पर ध्यान दिया जा रहा है, क्या हर प्रकार से समुचित प्रबन्ध तथा प्रशासन बनाए रखा जा रहा है और क्या किसी बंदी को जबकि वह अपने विचारण की प्रतीक्षा कर रहा है अवैध रूप से अवरुद्ध रखा गया है अथवा असम्यक कालावधि के लिए निरोध में रखा गया है; (ग) वे कारागृह के रजिस्टरों तथा अभिलेखों का निरीक्षण करते हैं; (घ) बंदियों द्वारा या उनकी ओर से प्रस्तुत किए गए सभी अभ्यावेदनों तथा पिटीशनों की सुनवाई करते हैं, उन पर विचार-विमर्श करते हैं और (ङ) यदि इस बात की सलाह उचित समझी जाए, तो यह निदेश देते हैं कि किसी ऐसे अभ्यावेदन या पिटीशन को सरकार के पास भेज दिया जाए। बंदीगृह न्याय के संवेदनशील क्षेत्र में न्यायिक सदस्यों पर विशेष दायित्व होते हैं और उनके लिए यह आवश्यक है कि वे सर्वथा स्वतन्त्र रूप से पूर्णतया देखरेख करें न कि औपचारिक पैनल के अधिकारियों के समान। न्यायाधीश बंदियों के अधिकारों के संरक्षक होते हैं क्योंकि उनका यह कर्तव्य है कि वे किसी अतिरेक के बिना दण्डादेशों के निष्पादन को कार्यान्वित कराएं तथा कारागार में निवास करने वाले

बंदियों के व्यक्तित्व पर कोई हिंसा किए बिना या उनके व्यक्तित्व का अतिलंघन किए बिना उनकी दैहिक स्वतन्त्रताओं को कायम रखें। इसके अलावा, जब किसी कारागार के भीतर कोई गलती की जाती है तो न्यायिक निरीक्षक व्यवहार्य रूप से एक भाग्यविपर्यय अधिकरण तथा संतरी का काम देता है, जो कि एक-साथ व्यवस्थाओं का आन्तरिक तथा बाह्य सम्प्रेक्षक, शासक तथा अधिनिर्णायक होता है।

64. ऐसी दशा में, बंदी प्रेम चन्द के, इस मामले की विशिष्ट परिसीमा में, क्या अधिकार है जहां कि परिवाद यह है कि कारागार के रक्षक ने विद्वेषपूर्ण प्रयोजनों के लिए उसे शारीरिक यन्त्रणा पहुंचाई थी।

65. पंजाब प्रिज़न मैनुअल में केन्द्रीय कारागारों के पर्याप्त निरीक्षण के लिए मजिस्ट्रेटों के कर्तव्य स्पष्ट रूप से अधिकथित किए गए हैं।

पैरा 41(1) और (3) इस प्रकार है—

*"41. (1) जिले के मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य होगा कि वह समय-समय पर अपने जिले की सीमाओं के भीतर स्थित कारागारों का दौरा करे और उनका निरीक्षण करे तथा समाधान करे कि कारागार अधिनियम, 1894 एवम् तदधीन बनाए गए या निकाले गए सभी नियम, विनियम, निदेश और आदेश, जो ऐसे कारागार को लागू होते हों, उनका सम्यक् रूप से पालन किया जा रहा और उन्हें लागू किया जा रहा है।

× × × ×

(3) किए गए प्रत्येक दौरे और निरीक्षण के परिणाम का अभिलेख एक रजिस्टर में प्रविष्ट किया जाएगा जो कि तत्प्रयोजनार्थ अधीक्षक द्वारा बनाए रखा जाएगा।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"41. (1) It shall be the duty of the Magistrate of the district from time to time to visit and inspect jails situate within the limits of his district and to satisfy himself that the provisions of the Prisons Act, 1894, and of all rules, regulations, directions and orders made or issued thereunders applicable to such jail are duly observed and enforced.

× × ×

(3) A record of the result of each visit and inspection made, shall be entered in a register to be maintained by the Superintendent for the purpose.

पैरा 42 भी यहां सुसंगत है—

*42. मुख्यालय से जिला मजिस्ट्रेट के अनुपस्थित होने की स्थिति में या ऐसी दशा में जिसमें कि वह अधिकारी किसी समय किसी कारणवश की उस रीति में जो कि तन्निमित्त इन नियमों में वर्णित की गई है दौरा करने में असमर्थ रहता है तो वह अपने अधीनस्थ किसी मजिस्ट्रेट को जो कि ड्यूटी के लिए उपलब्ध हो इस हेतु प्रतिनियुक्त करेगा कि वह उसकी ओर से कारागार का दौरा करे और निरीक्षण करे। इस प्रकार प्रतिनियुक्त किया गया कोई भी अधिकारी, जिला मजिस्ट्रेट के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए कारागार अधिनियम, 1894 द्वारा प्रदत्त सभी या उनमें से किन्हीं शक्तियों का अथवा जिला मजिस्ट्रेट को प्रदत्त इन नियमों का प्रयोग कर सकेगा।

पैरा 44 जिला मजिस्ट्रेट को शक्तियां प्रदान करता है और उसके आदेशों का पालन किए जाने के योग्य बनाता है।

*44. (1) कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन पारित आदेश, आकस्मिक मामलों को छोड़कर जिनमें कि तुरन्त कार्रवाई, ऐसे मजिस्ट्रेट की राय में आवश्यक है, इस प्रकार अभिव्यक्त किए जाएंगे कि अधीक्षक (यदि वह

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"42. In the absence of the Magistrate of the district from Headquarters, or in the event of that officer being at any time unable from any cause to visit the jail in the manner in these Rules prescribed in that behalf, he shall depute a Magistrate subordinate to him who is available for the duty, to visit and inspect the jail on his behalf. Any officer so deputed may, subject to the control of the Magistrate of the district exercise all or any of the powers by the Prisons Act, 1894, or these rules, conferred upon the Magistrate of the district.

*44. (1) The orders passed under sub-section (2) of section 11 of the Prisons Act, 1894, should except in emergent cases in which immediate action in the opinion of such Magistrate necessary, be so expressed that the Superintendent may have time to refer (if he thinks

आवश्यक समझे) तो उन पर कार्रवाई करने से पूर्व महानिरीक्षक के प्रति निर्देश कर ले।

(2) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा निकाले गए सभी आदेश, यदि वे तुरन्त पालन अपेक्षित करने वाले निबन्धनों में अभिव्यक्त किए गए हों, तो उनका अविलम्ब पालन किया जाएगा और जैसा कि उक्त उपधारा में विहित है महानिरीक्षक को उनकी रिपोर्ट भेजी जाएगी।"

66. इन उपबंधों से हम यह समझते हैं कि वे बंदियों से प्राप्त व्यथा को ग्रहण करने के आधार को अन्तर्विष्ट करते हैं तथा साथ ही उन पर तुरन्त जांच के पश्चात् आदेश जारी करते हैं। जिला मजिस्ट्रेट के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात को याद रखे कि इस हैसियत में वह एक न्यायिक अधिकारी है न कि कार्यपालक प्रधान और उसे चाहिए कि वह कारागार कार्यपालिका पर ध्यान न देते हुए स्वतन्त्र रूप से इस प्रकार कृत्यशील हो। सुधारात्मक संस्थाओं में बंदियों के अधिकारों को लागू करने योग्य बनाने के लिए हम सम्बद्ध जिला मजिस्ट्रेट को यह निदेश देते हैं कि वह अपने जिले में प्रति सप्ताह एक बार कारागृहों का निरीक्षण करे। व्यक्तिगत बंदियों से शिकायतें प्राप्त करे और उनकी तुरन्त जांच करे। यदि वह अवलम्ब कार्य में अत्यन्त संलग्न हो तो पैरा 42 उसे इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि वह अपने अधीनस्थ किसी मजिस्ट्रेट को प्रत्यायोजित करे कि वह कारागार का दौरा करे और उसका निरीक्षण करे। महत्वपूर्ण यह है कि वह बंदियों के साथ यदि उनकी व्यथाएं हों तो पृथक् रूप से मिले, रक्षकों तथा अधिकारियों की उपस्थिति निषेधात्मक होगी और उससे बचना चाहिए। उसे यह सुनिश्चित बनाना चाहिए कि उसकी जांच गोपनीय है हालांकि वह नैसर्गिक न्याय के अध्यधीन है कारागार पदधारियों द्वारा सजा दिए जाने के प्रति अवसर नहीं करती। नियमों में प्रत्येक दौरे तथा जांच के परिणाम के अभिलेख की चर्चा की गई है। यह उसे इस बात के लिए सशक्त बनाता है कि वह जांच करे और आदेश पारित करे। उसके द्वारा जारी किए गए सभी आदेशों

---

necessary) to the Inspector-General before taking action thereon.

(2) All orders issued by the Magistrate of the district shall, if expressed in terms requiring immediate compliance, be forthwith obeyed and a report made, as prescribed in the said sub-section, to the Inspector-General."

का तुरन्त पालन किया जाएगा क्योंकि पैरा 44 (2) द्वारा उनका पालन किया जाना आबद्धकर बनाया गया है। यदि पालन नहीं किया जाता तो उसे चाहिए कि वह ऐसे अनुपालन के बारे में सरकार को तुरन्त सूचित करे और बंदी को यह सलाह दे कि वह अपनी शिकायत उसकी अपनी रिपोर्ट के प्रति के साथ अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में भेज दे जिससे कि उच्च न्यायालय को इस बारे में मदद मिल सके कि वह बंदी प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी अपनी शक्ति का प्रयोग कर सके। जैसा कि विद्वान् महासालिसिटर द्वारा सुझाव दिया गया है यह व्यवहार्य होगा यदि जिला मजिस्ट्रेट प्रत्येक वार्ड में एक व्यथा बक्स रखता है जिसमें कि प्रत्येक बंदी जाकर बेरोकटोक अपनी शिकायत डाल सकता है इसे ताले में बन्द रखा जाना चाहिए और उस पर उसकी मोहर होनी चाहिए और समय-समय पर जब वह अकेले अथवा अधीनस्थ की मार्फत दौरा करे तो वह बक्स खोला जाना चाहिए और व्यथाओं का पता लगाया जाना चाहिए, उनके गुणागुण का अन्वेषण किया जाना चाहिए और यदि न्यायोचित हो तो उपचारात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए।

67. निर्देशिका (मेनुअल) का अध्याय 5 निरीक्षकों की बाबत है जो कि कारागार के प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण अंग है। पैरा 47 में विशेष रूप से जिला और सैशन न्यायाधीश, जिला मजिस्ट्रेट, उप-खण्ड मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक का उल्लेख निरीक्षकों के बोर्ड के सदस्यों के रूप में किया हुआ है। वास्तव में सैशन न्यायाधीशों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समय-समय पर कारागारों का दौरा करें। वर्तमान नियम के अधीन जिला मजिस्ट्रेट और उप-खण्ड मजिस्ट्रेट तथा उनके अधीनस्थ मजिस्ट्रेट तथा उनके विशेष नियुक्त किए गए अन्य व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी अधिकारिता के भीतर विद्यमान कारागारों का दौरा सप्ताह में एक बार करें। सांविधानिक बाध्यता को कार्यान्वित करने में हम यह निदेश देते हैं कि हमने पहले ही कुछ विस्तार पर्यन्त बंदियों के मूल अधिकारों के लिए रक्षोपाय करने हेतु विचार-विमर्श किया है, कि सैशन न्यायाधीश और जिला मजिस्ट्रेट अथवा उनके द्वारा नाम निर्दिष्ट अन्य अधीनस्थ अधिकारी दौरा करने संबंधी अपने कृत्यों के अन्तर्गत सप्ताह में एक बार कारागार का दौरा करेंगे।

68. पैरा 49 का योजनात्मक महत्व है और उसे नीचे प्रतिपादित किया जाता है—

*49. (1) कोई भी शासकीय निरीक्षक कारागार के किसी विभाग की सभी या किन्हीं पुस्तकों, कागज-पत्रों तथा अभिलेखों का निरीक्षण कर सकेगा तथा निरुद्ध किए गए किसी बंदी से साक्षात्कार कर सकेगा।

49. (2) प्रत्येक शासकीय निरीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह इस बारे में अपना समाधान कर ले कि कारागार अधिनियम, 1894 के उपबंधों तथा तदधीन बनाए गए नियमों, विनियमों, आदेशों तथा निदेशों के उपबंधों का सम्यक् रूप से पालन किया जाता है और वह किसी बंदी द्वारा उसे की गई किसी शिकायत या किए गए किसी अभ्यावेदन की सुनवाई करे और उसे जानकारी में लाए।

69. इस उपबंध से हम यह समझते हैं कि इससे यह अभिप्रेत है कि सैशन न्यायाधीश, जिला मजिस्ट्रेट अथवा उनके नामनिर्दिष्ट व्यक्ति परिवादों की सुनवाई करने सभी दस्तावेजों की परीक्षा करेंगे, साक्ष्य लेंगे, बंदियों के साथ साक्षात्कार करेंगे और यह देखने के लिए जांच-पड़ताल करेंगे कि क्या कोई विचलन, अवज्ञा, कर्तव्यच्युति आदि हुई है जो कि बंदियों के अधिकारों का अतिक्रमण करती है। उनका यह कर्तव्य है कि वे सुनवाई करें तथा किसी बंदी द्वारा उसे किए गए किसी परिवाद अथवा अभ्यावेदन को उसके ध्यान में लाएं। इन न्यायिक अधिकारियों को व्यथाओं का अन्वेषण करने तथा उनका न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त बनाने हेतु इससे स्पष्ट किसी भी चीज की आवश्यकता नहीं है। हम सम्बद्ध सैशन न्यायाधीश को यह निदेश देते हैं कि वह कारागार में अपेक्षित अनेक व्यथा बक्से ताले में बन्द रखें तथा अधीक्षक को आवश्यक निदेश दे कि वह इस बात का ध्यान रखे कि बंदियों को इस

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

49. (1) Any official visitor may examine all or any of the books, papers and records of any department of, and may interview any prisoner confined in the jail.

49. (2) It shall be the duty of every official visitor to satisfy himself that the provisions of the Prisons Act, 1894, and of the rules, regulations, orders and directions made or issued thereunder, are duly observed, and to hear and bring to notice any complaint or representation made to him by any prisoner.

बात की सुगमता प्रदान की जाती है कि वे किसी बंदी द्वारा अतिक्रमण, क्षतियां अथवा यन्त्रणा के परिवाद उनमें डाले जहां कि उसे उपचारात्मक कार्यवाही की आवश्यकता हो। किसी भी व्यक्ति द्वारा इन बक्सों की बाबत कोई गड़बड़ नहीं की जाएगी और उन्हें केवल सेशन न्यायाधीश के प्राधिकार के अधीन ही खोला जाएगा। हमें इस बात पर जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सेशन न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक है कि वह संवेदनशीलता से इस स्थिति में अत्यन्त सतर्कता और प्राधिकार के साथ कार्रवाई करे चूंकि इस शोचनीय स्थान में बंदी की दैहिक स्वतन्त्रता, उसकी जागरूकता, क्रियाशीलता, न्यायनिर्णयन-तथा प्रवर्तनशीलता पर निर्भर करती है। सांविधानिक अधिकारों को न्यायिक अधिकारियों की लापरवाही द्वारा विनष्ट नहीं किया जाएगा।

70. कारागार प्राधिकारी किसी भी रीति में शिकायत के ग्रहण किए जाने या उनकी छानबीन किए जाने में बाधा नहीं डालेंगे और न ही उसमें असहयोग दिखावेंगे। अन्यथा तुरन्त दण्डात्मक कार्रवाई की जाएगी और उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय को व्यथा से अवगत कराया जाएगा जिससे कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट सुनवाई के पश्चात् जारी की जा सके। पैरा 53 इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है और हम इसे नीचे दे रहे हैं—

> *53. सभी निरीक्षकों को राज्य की कारागार तथा उसके प्रबन्ध की अवस्था का सम्प्रेक्षण करने के लिए प्रत्येक सुविधा प्रदत्त की जाएगी और उन्हें समुचित विनियमों के अधीन कारागार के सभी भागों तथा उसमें परिरुद्ध प्रत्येक बंदी को देखने की अनुज्ञा दी जाएगी।
>
> प्रत्येक निरीक्षक को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह कारागार में विद्यमान किसी पुस्तक अथवा अभिलेख को मंगवा सके और उसका निरीक्षण कर सके जब तक कि अधीक्षक, अभिलिखित किए जाने वाले

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

53. All visitors shall be afforded every facility for observing the state of the jail, and the management thereof, and shall be allowed access under proper regulations, to all parts of the jail and to every prisoner confined therein.

Every visitor should have the power to call for and inspect any book or other record in the jail unless the

कारणों से, इस आधार पर इनकार कर देता है कि इसका पेश किया जाना अवांछनीय है।

*इसी प्रकार प्रत्येक निरीक्षक को किसी बंदी को देखने का अधिकार होना चाहिए और वह उससे ऐसा कोई प्रश्न पूछ सकता है जो कि कारागार के अधिकारी द्वारा न सुने जाएं। दोनों प्रकार के निरीक्षकों के वर्गों के लिए एक निरीक्षण पुस्तक होनी चाहिए, दोनों दशाओं में उनके टिप्पण महानिरीक्षक को अग्रेषित किए जाने चाहिए जो कि उन पर ऐसे आदेश पारित करेगा जैसे कि वह आवश्यक समझता है और महानिरीक्षक के आदेश की एक प्रति सम्बद्ध निरीक्षक को भेजी जानी चाहिए।

पैरा 53-ख और 53-घ न केवल अनुपूरक है बल्कि वे प्रक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि वे बंदियों के दृष्टिकोण से संरक्षणात्मक है। हम उन्हें दोहरा बल देने के लिए उसमें से उद्धरण देते हैं हालांकि उनके प्रति निर्देश किया जा चुका है—

**53-ख सभी शासकीय तथा गैर-शासकीय निरीक्षक, प्रत्येक निरीक्षण के समय—

(क) सामान्य रूप से कारागार की बैरकों, कोठरियों; वार्डों, कर्मशालाओं तथा अन्य इमारतों का एवम् पकाए गए खाने का निरीक्षण कर सकेंगे।

Superintendent, for reasons to be recorded in writing, declines on the ground that its production is undesirable.

*Similarly, every visitor should have the right to see any prisoner and to put any questions to him out of the hearing of any jail officer. There should be one visitor's remarks should in both cases be forwarded to the Inspector General who should pass such orders as he thinks necessary, and a copy of the Inspector-General's order should be sent to the visitor concerned.

**53-B. All visitors, official and non-official, at every visit, shall—

(a) inspect the barracks, calls, wards workshed and other buildings of the jail generally and cooked food;

(ख) यह अभिनिश्चित कर सकेंगे कि क्या स्वास्थ्य, स्वच्छता और अभिरक्षा सम्बन्धी विचारों पर ध्यान दिया जा रहा है, क्या हर प्रकार से समुचित प्रबन्ध तथा अनुशासन बनाए रखा जा रहा है और क्या किसी बंदी को अवैध रूप से निरुद्ध रखा गया है अथवा विचारण की प्रतीक्षा करते समय उसे अनुचित समय की अवधि के लिए निरुद्ध रखा जा रहा है;

(ग) कारागार के रजिस्टरों तथा अभिलेखों का निरीक्षण कर सकेंगे;

(घ) बंदियों द्वारा या उनकी ओर से किए गए सभी अभ्यावेदनों तथा पिटीशनों की सुनवाई कर सकेंगे; तथा

(ङ) यदि उचित समझा जाए तो यह निदेश दे सकेंगे कि ऐसे कोई अभ्यावेदन अथवा पिटीशन सरकार को भेजी जाए।

53-घ. किसी भी बंदी को इस कारण दण्डित नहीं किया जाएगा कि उसने कथन किया है जब तक कि मजिस्ट्रेट द्वारा की गई जाँच से यह परिणाम निष्कर्ष के रूप में न निकलता हो कि उसका कथन मिथ्या था।

(b) ascertain whether considerations of health cleanliness, and security are attended to, whether proper management and discipline are maintained in every respect and whether any prisoner is illegally detained, or is detained for an undue length of time, while awaiting trial;

(c) examine jail registers and records;

(d) hear, attend to all representations and petition made, by or on behalf of prisoners; and

(e) direct, if deemed advisable, that any such representations of petitions be forwarded to Government.

53-D. No prisoner shall be punished for any statement made by him to a visitor unless an enquiry made by a Magistrate results in a finding that *it is false.*

हम आशा करते हैं—वास्तव में हम यह निदेश देते हैं—कि न्यायिक और अन्य शासकीय निरीक्षक इन दोनों नियमों की प्रत्याशाओं के अनुकूल कार्रवाई करेंगे और उनके समादेश को यथार्थ रूप से कार्यान्वित करेंगे। पैरा 54 भी निरीक्षणात्मक उपबंधों के इस समूह का भाग है जिसकी सतर्कता से सुसंगति है। हम इन उपबंधों का पालन किए जाने की प्रत्याशा करते हैं और यदि स्थिति से ऐसी मांग की जाती है तो किसी बंदी के किसी मूल अधिकार के किसी उल्लंघन की दशा में कार्रवाई किए जाने के लिए उच्च न्यायालय को रिपोर्ट करेंगे।

71. कारागार विधि के क्षेत्र का विस्तारपूर्वक परिशीलन करने से यह साबित होता है कि बंदियों के अन्यायों हेतु विधिक उपचारों में एक भारी शून्यता विद्यमान है और इसलिए सांविधानिक समादेश बहिष्कृत मानवों के केवल तभी साथी बन सकते हैं यदि गैर-परम्परागत प्रक्रियाएं, सम्यक् रूप से दैनिक कार्मिक तथा वास्तविक अनुतोष कृत्य संबंधी आक्षेप की पूर्ति करते हैं। मोटे तौर पर, बंदी प्रत्यक्षीकरण संबंधी शक्तियां तथा प्रशासनिक अभ्युपाय बंदियों के अधिकारों के स्तम्भ हैं। इनमें से पूर्वतर अतिमूल्यवान तथा अनंध्य है किन्तु किसी अपढ़, भीरु, निर्धन बंदी के लिए सामुदायिक न्यायिक उपचार शिथिल पड़े रहते हैं। तथापि, इस सांविधानिक शक्ति को चाहिए कि वह औपचारिकताओं की अवहेलना कर दे, पूर्व विनिश्चियों को नजरअन्दाज कर दे और निरुद्ध करने वाले से उन सब तथ्यों की मांग करे जिनसे यह विनिश्चय किया जा सके कि क्या मानविक तथा उचित व्यवहार किया जा रहा है, सांविधानिक रूप से पर्याप्त तथा बंदियों के व्यवहार के लिए न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हों। इस क्षेत्र में न्यायालय के विनिर्णयों के कारागार समुदाय के अन्तर्गत प्रसार बंदियों के तथा आशावान रूप से रक्षकों के साहस को स्थिर बनाने के लिए एक अच्छा कदम है। इसलिए हम दिल्ली प्रशासन को यह निदेश देते हैं कि वह कारागार के लोगों के समूह के प्रति इस विनिर्णय की आवश्यक बातों को हिन्दी में पहुंचावें।

72. हम इस बात पर जोर देते हैं कि न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह बंदियों को उपचार प्रदान करने हेतु प्रगतिशील तथा नाना प्रकार से कार्रवाई करे। न केवल अवमान शक्ति बल्कि तदर्थ शक्ति का सृजन करने के लिए तथा न्याय के अधिकारों की सेवाओं को प्रयोग में लाने के लिए इन्हें लागू किया जाना चाहिए। इसी मामले में डा० चितले को न्यायमित्र के रूप में प्राधिकृत किया गया था और उसके समाधानप्रद परिणाम निकले थे।

अमेरिकन न्यायशास्त्रीय विचारधारा द्वारा समरूप कार्रवाई पर विचार किया गया है और न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित रूप में प्रयोग किया गया है—

मास्टर	—	प्राथमिक रूप से न्यायालय के तथ्य अन्वेषक;
रिसीवर	—	मुख्य रूप से सम्पत्ति को धारण करते हैं; उसका प्रबन्ध करते हैं अथवा परिमापन करते हैं ।

"विशेष" मास्टर—यह बहुत कृत्यों के लिए उत्तरदायित्व रखते हैं जैसे कि किसी योजना की रचना करना और उसको कार्यान्वित करने में सहायता देना है;

मानीटर—यह कार्यान्वयन प्रक्रिया पालन करने के लिए तथा न्यायालय को रिपोर्ट देने के लिए उत्तरदायी है;

तथा

ओमबुड्समैन (लोकपाल)—यह बंदियों की शिकायतों तथा व्यवस्थाओं की सुनवाई करने के लिए अन्वेषणों का संचालन करने के लिए तथा न्यायालय को सिफारिश करने के लिए उत्तरदायी है ।

जिन न्यायालयों ने इनमें से कुछ विशेष अधिकारियों का प्रयोग किया है, जैसे कि हेमिल्टन बनाम स्कीरो, 388 फैडरल सप्लीमेंट 1016 (ई० डी० लॉ०, 1970); और जैकसन बनाम हेन्ड्रिक 321 ए० सेकन्डम 603 (1974) (स्पैशल मास्टर); वेन काउंटी बोर्ड आफ कमिश्नर्स, सिविल एक्शन — 173271 (सर्किट कोर्ट ऑफ वेन सिटी, मिश०, 1972) (मानीटर); और, नैल्सन बनाम हरमन, 364 फैडरल सप्लीमेंट 166 (ई० डी० टैक्सास, 1973) (ओमबुड्समैन)[1] ।

विशेष न्यायिक अधिकारियों का प्रयोग, अवमान शक्ति के प्रयोग की भांति, इस बात के लिए पर्याप्त वचन प्रदान करता है कि उससे न्यायालयों को न्यायिक आदेशों को प्रवर्तित करने में सहायता मिलेगी । आशाजनक रूप से, उनका प्रयोग विस्तृत हो जाएगा और समयानुसार परिष्कृत बन जाएगा । यह अध्युपाय इसलिए आवश्यक है क्योंकि दशा उत्तरोत्तर कुटिल होती जा रही है ।

73. तिहाड़ जेल में स्थिति आपराधिक विस्फोट, न्यायिक मन्द-मन्थर गति तथा प्राविधिक पुलिस कार्रवाई एवम् अवास्तविक ह्रास और खर्चीली कारागार प्रशासन की निरर्थकता पर आक्षेप है । अधीक्षक ने न्यायालय के

[1] कानूनू लिखित पुस्तक के पृष्ठ 273-275.

समस्त चीखो-पुकार की है कि स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि वहां प्रबन्ध करना भी कठिन हो गया है—

(i) कारागार में अत्यन्त भीड़ है। कारागार की प्रसामान्य जनसंख्या मंजूरशुदा 1273 आवास व्यवस्था के मुकाबले में 2300-2500 के बीच रहती है।

(ii) विचारणाधीन, स्त्रियों, आदतन बंदियों, आकस्मिक व्यक्तियों, किशोरावस्था वाले बंदियों, राजनीतिक बंदियों के लिए समुचित वर्गीकरण हेतु कोई आवास सुविधा विद्यमान नहीं है।

(iii) सहायक अधीक्षकों का कर्मचारिवृन्द अशिक्षित है। सहायक अधीक्षकों को अन्य विभिन्न दिल्ली प्रशासन के विभागों से जैसे कि विक्रय कर, नियोजन राजस्व, नागरिकों के लिए आपूर्ति इत्यादि के अन्य विभिन्न भागों से तैनात किए जाते हैं।

(iv) रक्षक गार्ड अधिकतर अप्रशिक्षित होते हैं और अनुत्तरदायी होते हैं।

(v) न्यायालयों से कारागार का दूरी पर होना तथा प्रतिदिन 250-300 के बीच लगभग विचारणाधीन बंदियों का बड़ी संख्या में विद्यमान होना और सायंकाल को कारागार में उन्हें वापस ग्रहण करना।

(vi) कारागार में बंदियों में से अनेक लोग मादक औषध व्यसनी, आभ्यासिक जेब कतरे होते हैं जिनके कि बाहर नियमित गिरोह रहते हैं जो कि उनके वैध तथा अवैध दोनों प्रकार के हितों की बाहर से देख-रेख करते हैं।

74. जहां तक दुर्व्यवहार का संबंध है तिहाड़ जेल कोई अनोखी नहीं है और अन्य कारागार भी उससे समान ही हैं और इसलिए यह समस्या सम्पूर्ण भारत की समस्या है। यही कारण है कि विद्वान महासालिसिटर ने हमें प्रेरित किया है कि हम इस अनजाने क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस करें। इंडियन बार और हो सकता है कि भारत की विधिक परिषद् और शैक्षिक समुदाय के लिए यह आवश्यक हो कि वे न्यायालय की तथा देश की इस कारागार न्याय के कार्य में सहायता करें। किसी प्रजातंत्र में किसी एक व्यक्ति के साथ अनुचित व्यवहार करना प्रत्येक व्यक्ति के साथ अनुचित व्यवहार है और कोई ऐसा अपराधी जिसे सजा नहीं दी जाती वह समाज को अवश्यक रूप से दूषित बना देता है। यह बृहत्तर पर्यवेक्षण हमारे विनिश्चायक क्षेत्र को विधिमान्य बनाता है।

75. जो निदेश हम जारी करने जा रहे हैं उन्हें मूर्त रूप देने के पूर्व एक सर्वोपरि विचार अभिव्यक्त कर दिया जाना आवश्यक है। बंदी ग्रहण का उद्देश्य न केवल दण्डात्मक है बल्कि पुनर्वास करना भी है जिससे कि किसी अपराधी को ऐसा व्यक्ति बना दिया जाए कि वह भविष्य में अपराध न करे। बत्रा वाले मामले में यह हमारी सांविधानिक विधि है जो कि स्वयं अनुच्छेद 19 में विवक्षित पुनर्वास कारागार रूपी अस्पताल में रखे जाने का एक अनुषंग प्रयोजन है। किसी अपराधी के दोष को दूर करना चाहिए और क्रूरता इसी प्रकार उपचारात्मक नहीं है जैसे कि किसी बहते हुए घाव में छेद करना उसका उपचार नहीं है। सामाजिक न्याय तथा सामाजिक प्रतिरक्षा—कारागार प्रबंधन की पृष्ठभूमि में शामिल—प्रबुद्ध पुनर्वासात्मक प्रक्रियाओं की मांग करते हैं। एक विद्वान लेखक ने यह कहा है—

जिस एकमात्र रीति से हम ऐसे कारागार बना पायेंगे जिनमें कि पर्याप्त मात्रा में न्याय तथा औचित्य किया जाता है जब कि उस कारागार से संबंधित सभी व्यक्ति—कर्मचारिवृन्द तथा बंदी इत्यादि—सार्थक रूप से विनिश्चायक प्रक्रिया में हाथ बटाते हैं नियम बनाने तथा उनके लागू किए जाने में भाग लेते हैं। इससे तीन कैदियों के बारे में सूचना देने वाले व्यक्ति अभिप्रेत नहीं हैं जो कि वार्डन द्वारा 'कारागार-निवासी सलाहकार समिति' के रूप में नियुक्त किए गए हों। तथापि हमें लोगों में प्रजातन्त्रात्मक प्रक्रिया के लिए समादर प्रविष्ट करना होगा जिसमें कि अब स्वतन्त्र संसार रहने का प्रयत्न कर रहा है, हम लोगों को अत्यन्त तानाशाही संस्था में रहने के लिए विचार करके प्राप्त नहीं कर रहे हैं जो कि हमारे समाज में विद्यमान है। इस प्रकार इस बारे में नीतियां विकसित की जानी चाहिए कि बंदियों को विनिश्चय करने की प्रक्रिया में शामिल किया जाए जो कि कारागार में उनके जीवन के प्रत्येक पहलु पर प्रभाव डालता है।

यूनाइटेड नेशन्स एजेंन्सीज द्वारा प्रस्तुत मानक न्यूनतम नियम भी बंदियों के समाजीकरण हेतु तथा सामाजिक प्रतिरक्षा हेतु अग्रसर हैं—

> *57. बंदीग्रहण तथा अन्य अध्युपाय जिनके परिणामस्वरूप अपराधी बाहरी संसार से अकेला पड़ जाता है इस तथ्य मात्र से

*अंग्रेजी में वह इस प्रकार है—

> 57. Imprisonment and other measures which result in cutting of an offender from the outside world are afflictive by the very fact of taking from the person the

कष्टदायी है कि सम्बद्ध व्यक्ति से उसकी स्वाधीनता को वंचित करके आत्म-अवधारण संबंधी उसके अधिकार को छीन लिया गया है। इसलिए कारागार की पद्धति न्यायौचित्य, विलगता अथवा अनुशासन बनाए रखने के आनुषंगिक होने के सिवाए ऐसी स्थिति में अन्तर्निहित पीड़ा को और नहीं बढ़ायेंगे।

*58. कारागार में रखने अथवा स्वाधीनता का प्रवंचन करने के समरूप अध्युपाय के दण्ड को न्यायोचित ठहराने का प्रयोजन अन्ततः यह है कि समाज को अपराध से संरक्षित रखा जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल तभी हो सकती है यदि बंदीकरण की कालावधि का प्रयोग जहां तक सम्भव हो यह सुनिश्चित बनाने के लिए किया जाए कि जब अपराधी समाज में वापस लौटे तो वह न केवल विधि का पालन करने तथा आत्म-निर्भर रूप से जीवन व्यतीत करने के लिए इच्छुक हो बल्कि इस योग्य भी हो।

*59. इस उद्देश्य से, संस्था को चाहिए कि वह सभी उपचारात्मक, शैक्षिक, नैतिक आध्यात्मिक तथा अन्य शक्तियों तथा सहायता के स्वरूपों का उपयोग करे जो कि समुचित तथा उपलभ्य हों और उसे यह भी चाहिए कि वह उन्हें बंदियों की व्यक्तिगत उपचार संबंधी आवश्यकताओं के अनुकूल लागू करे।

---

right of self-determination by depriving him of his liberty. Therefore the prison system shall not except as incidental to justifiable segregation or the maintenance of discipline, aggravate the suffering inherent in such a situation.

*58. The purpose of justification of a sentence of imprisonment or a similar measure deprivate of liberty is ultimately to protect society against crime. This end can only be achieved if the period of imprisonment is used to ensure, so far as possible, that upon his return to society by the offender is not only willing but able to lead a law-abiding and self-supporting life.

**59. To this end, the institution should utilize all the remedial, educational, moral, spiritual and other forces and forms of assistance which are appropriate and available, and should seek to apply them according to the individual treatment needs of the prisoners.

76. कारागार में प्रसंस्कृत पुनर्वास पाश्चात्य देशों में अत्यन्त असफल रहा है और हमारे देश में भी अपराध व्यसन समरूप साक्ष्य दर्शित करता है :—कठोरता से पेश आना, अधिक तनाव उत्पन्न करना, अधिक क्रूर दण्ड अधिरोपित करना, अधिक दबाव की प्रोन्नति, अधिक पापराधिकता, अधिक उदण्ड, बहुदीपन तथा सीनाज की ओर ले जाता है हालांकि प्रपीड़क व्यक्तियों के लिए यह सुखदायक है। हैल्क जो कि विसकन्सीन विश्वविद्यालय में एक प्राध्यापक थे यह कहा—

> "जो तनाव मानसिक रुग्णता की ओर ले जाते हैं वे प्रायः वही तनाव होते हैं जो अपराध के प्रति अग्रसर करते हैं। मानसिक रुग्णता सदैव एक दुष्कर विधि है और दाण्डिकता में प्रायः सदोषता विद्यमान रहती है।

77. इसलिए कारागार अन्याय के लिए सर्वोत्तम उपचार यह है कि स्वयं मनुष्य तथा उसकी आन्तरिक अवस्था पर विचार करते हुए अधिक गतिशील, अत्यधिक निरुपायक नीतियां अपनायी जाएं। यदि कारागृहों को गांधी जी के शब्दों के अनुसार अस्पतालों का रूप दिया जाता है, और यदि दण्डशास्त्र, जैसा कि आधुनिक दण्डशास्त्री दावा करते हैं, उपचार के योग्य बन सकता है तो रक्षक या संरक्षक के सम्बन्ध में केवल उन्हें समग्र रूप में ही रखकर सुधार किया जा सकता है। सुधारात्मक वास्तविकताओं मात्र में विनिधान से समाज की आशा जब कि प्रत्येक मनुष्य की अन्तरात्मा कारागार के जीवन की तपस्या में संलग्न हो, उसके बाह्य मूल्यों में परिवर्तन ला देती है और उसके बंदोबस्त अस्तित्व के अनन्त मानव के साथ वातावरण संबंधी वास्तविकताओं से सामंजस्य स्थापित करती है। आध्यात्मिक अभ्यास पश्चात्वर्ती अनुसंधान और बहुत से देशों में सौष्ठव परिणाम व्यापक बनाने वाली जागरुकता की तकनीकों को आशावान बना देती है अन्तरात्मा को गम्भीरता प्रदान करते हैं तथा मानसिक अस्तित्व को शान्तमय बना देते हैं।

78. इस बात का उल्लेख करना प्रारम्भिक महत्व की बात है कि तमिलनाडु प्रिजन रिफार्म्स (1978-79) जिसके प्रधान, पटना उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश थे, विशेषज्ञों के एक समूह के साथ कार्य करते हुए मदुराई केन्द्रीय कारागार में अनुभवातीत मनन में अभ्यास के अनुमोदन के प्रति निर्देश किया है—

इस कार्यक्रम के लिए सफलता का दावा किया गया है। यह प्रतिवेदित किया गया है "कि कुंठा पर विचार करने में मनस्ताप तथा भय के लक्षणों में कमी तथा अधिक लोच आयी है और अन्य व्यक्तियों की देखरेख करने में इच्छा में वृद्धि हुई है तथा सामूहिक मुविधों में परस्पर क्रिया संबंधी योग्यता विवेकशील उपायों से न कि शुद्धतया कठोर माध्यमों से उत्पन्न हुई है। बंदीगृह में निवास करने वाले कुछ व्यक्तियों ने मदिरा तथा गांजे के छिपकर प्रयोग करने में स्वतः कमी करने की रिपोर्ट दी है और यहां तक कि धूम्रपान करने में भी कमी हुई है। कारागृह अधिकारियों ने हमें यह सूचना दी कि उन्होंने इन बंदियों में से कुछ बंदियों में व्यक्तित्व संबंधी परिवर्तनों का अवलोकन किया और अब वे शान्त मन से युक्त हैं तथा इन बंदियों के साथ मीठी बातचीत करते हैं। बंदीगृह में अन्य व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार तथा बंदीगृह के प्राधिकारियों के साथ सम्बन्ध में भी काफी परिवर्तन आ गया है"। यह सुझाव दिया गया है कि संक्षिप्त कालावधि के लिए रहने वाले बंदियों के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया जाए। ऐसे व्यवहार के सम्बन्ध में अन्य बंदीगृहों में भी प्रयत्न किया जाए जहां कि सुविधाएं विद्यमान हों। मदुराई इंस्टिट्यूट आफ सोशल वर्क के निदेशक की रिपोर्ट की एक प्रति, परिशिष्ट XI में विद्यमान है[1]।

79. कारागार सम्बन्धी सुधार के लिए समय आ गया है जब कि भारतीय पद्धति को इन आधारों पर अवसर प्राप्त है। हम मात्र अपराध से स्वतन्त्रता तथा सलाखों के पीछे बंदीकरण से स्वतन्त्रता उपदर्शित करते हैं जो कि आरोग्य न्यायशास्त्र की मुकुलित शाखा के रूप में विद्यमान है। जहां हम इस बात को मान्यता देते हैं वहां यह सब सार्थक हो जाता है कि सामुदायिक जीवन में बंदियों को किसी विधि का पालन करने वाले समाज के इच्छुक सदस्यों के रूप में सामुदायिक जीवन में निविष्ट करना उद्देश्य है। स्टैण्डर्ड मिनीमम रूल्स[2] का नियम 61 इस तत्व पर बल देता है—

---

[1] खण्ड I, पृ० 69-70, खण्ड III, परिशिष्ट XI, पृ० 26 भी देखिए।

[2] स्टैण्डर्ड मिनिमम रूल्स फार दी ट्रीटमेंट ऑफ प्रिजनर्स एण्ड रिलेटेड रिकमण्डेशन्स यूनाइटेड नेशन्स, डिपार्टमेन्ट ऑफ इकनामिक्स एण्ड सोशल वेलफेयर, न्यूयार्क 1958.

*61. बंदियों के साथ व्यवहार इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह इस बात पर जोर दें कि उन्हें समाज में से बहिष्कृत न किया जाए बल्कि वे उसका अंग बने रहें। इसलिए सामुदायिक अभिकरणों को सूचीबद्ध किया जाना चाहिए कि जहां भी सम्भव हो वहां बंदियों के सामाजिक पुनर्वास के अधिकार में संस्था के कर्मचारिवृन्द की सहायता की जाए। प्रत्येक संस्था के सम्बन्ध में सामाजिक कार्यकर्ता होने चाहिएं जिन्हें यह कार्य सौंपा जाए कि वे अपने परिवार तथा मूल्यवान सामाजिक अभिकरणों के साथ प्रत्येक बंदी के वांछनीय सम्बन्धों को बनाए रखें तथा उनमें सुधार करें। विधि तथा दण्ड नागरिक हितों से सम्बन्धित अधिकारों, सामाजिक अभिरक्षा के अधिकारों तथा बंदियों के अन्य सामाजिक फायदों के अनुकूल अधिकतम विस्तार पर्यन्त रक्षोपाय करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिएं।

परिणामस्वरूप सामाजिक स्रोत जो कि मानसिक उपचार तथा सन्निविष्ट में मदद देते हैं अन्तर्विष्ट किए जाने चाहिए, सुविख्यात विधि विद्यालयों के डीन द्वारा परखे गए श्रेष्ठ विधि छात्रों को उपयोगी रूप से इस बात के लिए प्रतिनियुक्त किया जा सकता है कि वे अभिरक्षा तथा अनुशासन के अधीन रहते हुए बंदियों से साक्षात्कार करें। इस प्रकार जो व्यवस्थाएं एकत्रित की जाती हैं उसे प्रक्रियागत तन्त्र में निविष्ट किया जा सकता है अर्थात् जिला

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

61. The treatment of prisoners should emphasize not their exclusion from the community, but their continuing part in it. Community agencies should, therefore, be enlisted wherever possible to assist the staff of the institution in the task of social rehabilitation of the prisoners. There should be in connection with every institution social workers charged with the duty of maintaining and improving all desirable relations of a prisoner with his family and with valuable social agencies. Steps should be taken to safeguard, to the minimum extent compatible with the law and the sentence, the rights relating to civil interests social security rights and other social benefits of prisoners.

मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश के क्रियाकलाप में स्थान दिया जा सकता है। हम यह उपदर्शित करते है कि दिल्ली लॉ स्कूल को इस बात की अनुज्ञा दी जानी चाहिए कि वह किसी अध्यापक के नेतृत्व के अधीन चुने हुए विद्यार्थियों को भेजे और यह न केवल इसलिए कि स्वयं उन छात्रों को नैदानिक शिक्षा मिल सके बल्कि वे बंदियों की व्यथा को एकत्रित करने का अभिकरण बन सकें। अन्य सेवा संगठन जिनका इतिवृत्त अच्छा हो उन्हें मौखिक रक्षा के लिए सामान्य रूप से जांच पड़ताल करने के पश्चात् इसी दशा में भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कारागार अधिनियम में नियम बनाने तथा निदेश जारी करने के लिए उपबन्ध किया गया है जिससे कि इस सुझाव को विचारगत किया जा सकता है।

अन्तिम प्रगति

80. हमारे निर्णय कीअन्तिमप्रगति ऐसी होनी चाहिए कि वह राज्य तथा बंदीगृह के कर्मचारिवृन्द के प्रति विस्तृत विचार-विमर्श को संक्षिप्त करते हुए स्पष्ट निदेश का आकार ग्रहण करे। विवाद्यक को अन्तिम रूप देने और सुनिश्चित निदेशों को प्रस्तुत करना अंतिम कदम है।

1. हम यह अभिनिर्धारित करते है कि बंदी प्रेम चन्द को अवैध रूप से यन्त्रणा पहुंचायी गई है और अधीक्षक अपने आपको इस उत्तरदायित्व से संरक्षित नहीं कर सकता हालांकि हो सकता है कि वह उसमें प्रत्यक्ष रूप से इसमें हिस्सा न लिया हो। सतर्कता का अभाव एक सीमित दोष है। हम प्राथमिक दोष को नियत करते है क्योंकि एक आपराधिक मामला लम्बित है अथवा बनने जा रहा है। राज्य प्रत्यक्ष विलम्ब तथा विचलन के लिए अन्वेषण करने वाली पुलिस के विरुद्ध कार्यवाही करेगा जिसके प्रति हमने पहले ही उपदर्शित कर दिया है। पुलिस की देखरेख करना विधि के नियम का एक नवीन लोकपाल के समरूप कार्य बन गया है।

2. हम अधीक्षक को यह निदेश देते है कि वह इस बात को सुनिश्चित बनाए कि कोई भी शारीरिक दण्ड अथवा दैहिक हिंसा प्रेम चन्द पर अधिरोपित न की जाए। बदले की भावना से प्रेम चन्द के शरीर पर कोई सलाखें नहीं चौभी जाएगी। उन विशिष्ट मामलों में जो कि संकटापन्न है अथवा बाकी मामले में इस न्यायालय द्वारा उपबन्धित सुनवाई तथा कारणों का नियम जिसे पहले ही विस्तारपूर्वक बताया गया है उसका पालन किया जाएगा।

3. जिला मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश, उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट किए गए वकीलों को अनुशासन तथा अभिरक्षा

के नियमों के अधीन रहते हुए बंदियों के साथ साक्षात्कार करने, उनसे मुलाकात करने तथा गोपनीय रूप से संसूचना करने की सभी सुविधाएं दी जाएंगी। इसकी जड़ें देखरेख करने सम्बन्धी अधिकारियों तथा पर्यवेक्षक न्यायिक भूमिका में विद्यमान है। इस प्रकार यथाविहित वकील इस बात के लिए आबद्ध होंगे कि वह समय-समय पर दौरे करें तथा अभिलिखित करने के पश्चात् सम्बद्ध न्यायालयों को उन परिणामों की रिपोर्ट करें जिनकी सुसंगति विधिक व्यथाओं से है।

4. अगले तीन मासों के भीतर व्यथा निक्षेप बक्से जिला मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायाधीश के आदेशों द्वारा या उनके अधीन बनाए गए रखे जाएंगे और उन्हें उतनी बार खोला जाएगा जितनी बार की उचित समझा जाता है और जो शिकायतें की गई है उन पर समुचित कार्यवाही की जाएगी। ऐसे बक्सों को सभी बंदी भली प्रकार देख सकेंगे।

5. जिला मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश निजी तौर पर यहां अपने अधीनस्थों की मार्फत अपनी अधिकारिता में विद्यमान कारागारों का दौरा करेंगे तथा विधिक व्यवस्थाओं को निष्कासित करने के लिए प्रभावशील अवसर प्रदान करेंगे, उनकी तुरन्त जांच करने तथा यथोचित उपचारात्मक कार्यवाही करेंगे। समुचित मामलों में उच्च न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट की जाएगी जिससे कि उच्च न्यायालय यदि आवश्यक समझे तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की कार्यवाही प्रारम्भ करेगा। इस बात का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि तमिलनाडु प्रीजन रिफार्म्स कमीशन ने क्या सम्प्रेक्षण किए थे—

> 38.16 व्यथाओं सम्बन्धी प्रक्रिया—यह किसी बंदी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है जिसके बारे में ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया है बंदीगृह में गैर शासकीय निरीक्षकों तथा शासकीय निरीक्षकों की नियुक्ति तथा कर्तव्यों को विनियमित करने वाले नियम काफी समय से प्रवृत्त रहे है और उनका प्राथमिक कर्तव्य यह है कि कारागार के सभी भागों का दौरा किया जाए और सभी बंदियों से मुलाकात की जाए और किसी भी ऐसी शिकायत की सुनवाई तथा जांच की जाए जो कि कोई बंदी करे। व्यावहारिक रूप से यह नियम बंदियों की व्यथाओं का उपचार करने हेतु फोरम है, व्यवस्था करने में पर्याप्त रूप से प्रभावशील नहीं रहे है। कुछ गैर-शासकीय निरीक्षक है जो कि अपने कर्तव्यों को ध्यानपूर्वक करते है और बंदियों की व्यथाओं को सुनते है। किन्तु उनमें से अधिकतर इस नियुक्ति को एक मान का पद मात्र समझते है और वे किसी बंदी को किसी निरीक्षण पुस्तक में

किसी व्यथा को अभिलिखित करने में किंचित अनिच्छुक रहते हैं जिससे कि कहीं बंदी कर्मचारिवृन्द को उससे ठेस न पहुंचे। न्यायिक अधिकारी अर्थात् सेशन न्यायाधीश तथा मजिस्ट्रेट जो कि पदेन निरीक्षक भी होते हैं अपने कार्यों का निर्वहन प्रभावशील रूप से नहीं करते।[1] हम इस बात पर जोर देते हैं कि जिन न्यायिक अधिकारियों के प्रति हमने निर्देश किया है वे अपने कर्तव्यों और दायित्वों को कार्यान्वित करेंगे और प्रभावशील व्यथा तन्त्र के रूप में कार्यवाही करेंगे।

6. सेशन न्यायाधीश के न्यायिक मूल्यांकन के बिना किसी बंदी को किसी एकांत अथवा दण्डात्मक कोठरी में नहीं रखा जाएगा, कोई कठिन श्रम अथवा दुखदायी अतिरिक्त वस्तु खान-पान के रूप में नहीं दी जाएगी, कोई अन्य दण्ड अथवा विशेषाधिकारों और कुछ सुविधाओं से प्रत्याख्यान नहीं किया जाएगा, दाण्डिक परिणामों के तौर पर किन्हीं अन्य बंदीगृह में अन्तरण अधिरोपित नहीं किया जाएगा और जहां आकस्मिकता के कारण ऐसी सूचना देना कठिन हो अथवा ऐसी जानकारी कार्यवाही किए जाने से दो दिन के भीतर दी जाएगी।

81. निष्कर्ष—हमने जो कुछ कथन किया है और निदेश दिया है वह निर्णय का आज्ञापक भाग गठित करता है और राज्य को उसका पालन करना होगा। किन्तु इस विचार-विमर्श तथा इन निष्कर्षों में कुछ ऐसे निदेश विवक्षित हैं जिनके लिए हम इस बात के सिवाए कोई विनिर्दिष्ट समय सीमा नियत नहीं करते और मात्र यह उपदर्शित करते हैं कि उनको क्रियान्वित करना अति महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के चार आज्ञापक स्वरूप आदेश हम यहां वर्णित करते हैं।

1. राज्य इस बात के लिए शीघ्रातिशीघ्र कदम उठायेगा कि वह बंदियों की एक पुस्तिका हिन्दी में तैयार करे और उसकी प्रतियां प्रचारित करे जिससे कि बंदियों के मन में विधिक जागरूकता उत्पन्न हो सके। समय-समय पर कारागार की पुस्तिकाएं यह कथन करते हुए कि किस प्रकार कारागार में सुधार तथा रिहायशी कार्यक्रम चलाया जा रहा है, एक सहयोगी कार्य करेगा जिससे कि तनाव दूर हो जाए। किन्हीं बंदियों की दीवार पर चिपका कागज जो कि स्वतन्त्र रूप से व्यथाओं को स्पष्ट करेगा तनाव को भी दूर करेगा। यह सब कारागार अधिनियम की धारा 61 को कार्यान्वित करने वाले कदम हैं।

[1] खण्ड II, पृष्ठ 76.

2. संयुक्त राज्य द्वारा बंदियों के उपचार हेतु जो सिफारिशें की गई हैं उनके लिए मानक न्यूनतम नियमों को कायम रखने के लिए राज्य कदम उठावेगा, विशेष रूप से ऐसा नियम जो कि कार्य तथा मजदूरी, गरिमा के साथ व्यवहार, सामुदायिक सम्पर्क तथा शोधात्मक नीतियों से सम्बन्धित हों। इस पश्चात्‌वर्ती पहलू में हमने जो व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास के बारे में सम्प्रेक्षण किए हैं उन्हें ध्यान में रखा जाएगा।

3. कारागार अधिनियम में पुनर्वास की आवश्यकता है और कारागार मैनुअल को पूर्ण रूप से नवीकरण करना अपेक्षित है क्योंकि, यहां तक कि माडल मैनुअल भी स्वस्थकारी उद्देश्यों के सिलसिले में उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। सुधारात्मक एवम् आधुनिकीकरण अनुक्रम कारागार कर्मचारिवृन्द के लिए अत्यावश्यक है जिसके अन्तर्गत सांविधानिक मूल्य, उपचार सम्बन्धी प्रवृत्तियां तथा तनाव रहित निविष्ट होना चाहिए।

4. बंदियों के अधिकारों को न्यायालय द्वारा अपनी रिट अधिकारिता से तथा अवमान शक्ति से संरक्षित रखा जाएगा। इस अधिकारिता को व्यवहार्य बनाने के लिए बंदी के कार्यक्रमों के प्रति निःशुल्क विधिक सेवाएं उन वृत्तिक संगठनों द्वारा प्रोन्नत की जाएंगी जिन्हें न्यायालय द्वारा मान्यता दी गई है जैसे कि निःशुल्क विधिक सहायता (उच्चतम न्यायालय) सोसाइटी। हम यह सिफारिश करते हैं कि जिला विधिक परिषद् बंदियों को राहत पहुंचाने के लिए एक कक्ष बनाएगी।

82. इस सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख करना उत्साहवर्धक है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि संकाय ने बंदियों के लिए भी निःशुल्क विधि सहायता की एक स्कीम बनायी है।

83. संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनायी गई सभी व्यक्तियों के लिए यन्त्रणा तथा अन्य प्रकार की क्रूरता, अमानविक अथवा अपमानजनक व्यवहार या दण्ड या सभी व्यक्तियों के लिए संरक्षण घोषणा (9 दिसम्बर, 1975 का संकल्प सं० 3452) हमारे विनिश्चय से सुसंगत है। विशेष रूप में निम्नलिखित अनुच्छेद ध्यान देने योग्य है—

> अनुच्छेद 8 :—कोई भी व्यक्ति जो यह अभिकथन करता है कि उसे यन्त्रणा अथवा अन्य भांति की क्रूरता, अमानविक अथवा अपमानजनक व्यवहार या दण्ड किसी लोक अधिकारी द्वारा या उसकी प्रेरणा पर दिया गया है उसे यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह सम्बद्ध राज्य के सक्षम प्राधिकारियों को शिकायत कर सके तथा अपने मामले को निष्पक्ष रूप से निरीक्षित करवा सके।

अनुच्छेद 9 :—जब कभी यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो कि अनुच्छेद में यथापरिभाषित यन्त्रणा का कार्य किया गया है तो सम्बद्ध राज्य के सक्षम प्राधिकारी तुरन्त निष्पक्ष रूप से अन्वेषण प्रारम्भ कर देंगे भले ही कोई औपचारिक परिवाद न किया गया हो ।

डा० चितले ने हमें बंदियों के अधिकारों पर "अमेरिकन सिविल लिबर्टीज यूनियन हैंडबुक ऑन दी राइट्स आफ प्रिज़नर्स" नामक पुस्तक दी है ।[1] उसमें सही तौर पर कारावास सम्बन्धी न्याय के अधिकारों को वर्णित किया गया है[2]—

संस्था के रूप में हमारी दाण्डिक तथा सुधारात्मक पद्धति बुरी तरह से असफल रही है । अमेरिका की जेलों तथा कारावासों में विद्यमान दशाएं व्यावहारिक रूप से मानसिक ह्रास तथा शारीरिक गिरावट हजारों पुरुषों तथा स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रत्येक वर्ष सुनिश्चित करते है । सुधार तथा पुनर्वास शब्दाडम्बर है; पद्धति गत अमानवीकरण वास्तविकता है । जनता का ध्यान कभी-कभार मनुष्य के निम्न स्तर की ओर आकृष्ट होता है जो कि इन संस्थाओं में विद्यमान है और प्राय: केवल इस कारण कि स्वयं बंदियों द्वारा ही परिरोध संबंधी कई वर्षों में वृद्धि कर दी जाती है और कुछ मामलों में तो वे प्रतिरोध द्वारा अपनी स्थिति को नाटकीय रूप देकर अपने जीवन का पतन कर लेते हैं[2] ।

84. इस पुस्तिका के अनुसार कारागार जीवन का केन्द्रीय दोष "वे अनिरीक्षित प्रशासनिक विवेकाधिकार जो कि घटिया प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारिवृन्द को अनुदत्त किया गया है जो प्रत्यक्ष रूप से बंदियों के साथ व्यवहार करते है । इसके अलावा ऐसे अधिकार भी जो अब न्यायालयों द्वारा गारन्टी किए गए है बहुत से बंदियों के लिए प्राय: भ्रामक होते है । इन अधिकारों का क्रियान्वयन तथा प्रवर्तन प्राथमिक रूप से कारागार के अधिकारियों पर निर्भर करता है । मुकदमेबाजी खर्चीली है और उसमें अत्यधिक समय लगता है और बहुत ही थोड़े वकीलों ने इस क्षेत्र में अपनी सेवाएं पेश की है । इस प्रकार ऐसे न्यूनतम अधिकार भी जो कि मात्र कागजों पर दिखाई देते है प्राय: वस्तुत: ऐसे है कि वे उपलब्ध नहीं हो पाते ।" हम इस आशा के साथ उपसंहार करते है कि हालांकि राज्य को अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं से

---

1 डेविड रूडोवस्की अल्विन जे०, ब्रांसटीन एडवर्ड आई० कोरेन

2 इसी पुस्तक के पृष्ठ 11 पर ।

जूझना पड़ता है वह अपने द्वारा कारावास में डाले गए अवरुद्ध मानवों के प्रति अपनी सांविधानिक बाध्यता का निर्वहन करेंगे और विधान बनाकर तथा प्रशासनिक दृष्टि से प्रस्तावना के उच्च मूल्यों का अनुसरण करते हुए एक कारागार संहिता की पुनः रचना करेंगे। एक सौ वर्ष से भी अधिक पहले (1870)[1]—

> "..........कुछ अमेरिकी कारागार प्रशासक अपनी सामान्य समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए एकत्रित हुए थे और उन्होंने यह देखा है कि इस समय अमेरिकी सुधारात्मक एसोसिएशन वास्तव में बना है। प्रथम अधिवेशन में ही इन महान् व्यक्तियों ने 22 सिद्धान्तों का एक प्रमुख कथन न्यायिक रूप से वर्णित किया था।"
>
> इन 22 सिद्धान्तों में निम्नलिखित सिद्धान्त थे—
>
> "बंदियों के दाण्डिक व्यवहार का प्रयोजन बदला लेने की भावना से प्रपीड़ित करना न होकर सुधार करना होना चाहिए। बंदी को इस बात का एहसास कराया जाना चाहिए कि उसकी किस्मत स्वयं उसके हाथ में है;
>
> कारागार अनुशासन ऐसा होना चाहिए जिससे कि बंदी की इच्छा को प्राप्त किया जा सके और उसके आत्मसम्मान को परिरक्षित रखा जा सके;
>
> कारागार का उद्देश्य यह होना चाहिए कि औद्योगिक दृष्टि से स्वतन्त्र बन पायें बजाए इसके कि सुव्यवस्थित तथा आज्ञाकारी बंदी;"

"दी क्राइम ऑफ पनिशमेंट" नाम सुविख्यात ग्रन्थ में से यह उद्धरण वार्ड एलिस ने अपनी पुस्तक "इनसाईड फालसम प्रिजन" : ट्रांसीडेंन्टल मेडीटेशन एण्ड टी एम सिद्धि प्रोग्राम[2]" ने दिया है जो एक व्यावहारिक परियोजना के रूप में उल्लेखनीय है जिससे कि बंदी की प्रकृति को विकसित करके उनकी संख्या में कमी कर दी जाएगी।

85. मानसिक तनाव को कम करने तथा पुनर्वास की गति को बढ़ावा देने की दृष्टि से हमारे कारागारों में जिन सामूहिक सौष्ठव परिवर्तनों की

---

[1] कार्ल मिनिंगर, एम॰ डी॰ : दी क्राइम ऑफ पनिशमेन्ट, दी वाईकिंग प्रेस इनकारपोरेटेड, न्यूयार्क, 1969, पृष्ठ 219.

[2] ई॰ टी॰ सी॰ पब्लिकेशन्स, पामस्प्रिंग्स, कैलिफोर्निया, पृष्ठ XXI.

आवश्यकता है उनके प्रति निर्देश हमने सामुदायिक जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने और जहां तक बंदियों का सम्बन्ध है लैंगिक दोष को दूर करने के लिए हमने विचारणाधीन बंदियों, युवा अपराधियों तथा लम्बे समय तक जेल काटने वाले बंदियों को व्यावहारिक दृष्टि से अवैज्ञानिक सम्मिश्रण का हवाला दिया है, इस बात पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है। हाल ही की एक पुस्तक "रेप इन प्रिजन[1]" में यह कहा गया है—

> "कारागार दण्डादेश के पहलुओं का एक अत्यन्त घोर पहलू यह तथ्य है कि न केवल युवा व्यक्तियों को बड़ी आयु के अपराधियों के साथ रखा जाता है बल्कि ऐसे अपराधियों को भी जो विचारण की प्रतीक्षा में होते हैं सिद्धदोष बंदियों के निवास स्थान में ही रखा जाता है। आक्रमण द्वारा लैंगिक भावना की तृप्ति को प्राप्त करने में पश्चात्वर्ती व्यक्तियों को कोई हानि नहीं होती...... जैसी कि स्थिति इस समय है सलाखों के पीछे निवास करने वाले बंदियों के लिए लैंगिक सम्भोग निर्विवाद रूप से सर्वाधिक सुसंगत विचारक है...... सुधारात्मक जेलों में फरलो पद्धति के प्रयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे पुरुष जिनका अभिलेख सदाचार दर्शित करता है उन्हें प्रति सप्ताहांत अपने कुटुम्ब तथा नातेदारों के साथ निवास करने के लिए निर्मुक्त कर दिया जाना चाहिए[2]।"

86. जहां तक जेलर तथा पुलिस अन्वेषक का सम्बन्ध है इस मामले को अन्तिम रूप से अभी समाप्त नहीं किया जा सकता। इनमें से पूर्वतर अधिकारियों का विचारण किया जाएगा और उन्हें न्याय प्रदान किया जाएगा। इससे अधिक हम यहां और कुछ नहीं कहेंगे। जहां तक अन्वेषक तथा सहायक लोक अभियोजकों का सम्बन्ध है जिससे कि अन्वेषक ने परामर्श किया होता है हमें इस बारे में दुख होता है क्योंकि हमने मामले की डायरी का परिशीलन किया है। जिस अपराध का अभिकथन किया गया है वह एक साधारण अपराध है, जिस सामग्री का अवलम्ब लिया गया है वह संक्षिप्त रूप में है और फिर भी बार-बार न्यायाधीशों की ओर से सम्प्रेक्षण किए जाने पर अन्वेषक ने साक्ष्य का संग्रह करने की पूर्ति करने में और आरोप-पत्र प्रस्तुत करने में अनुचित रूप से समय गंवाया है। बंदी जो कि इसका शिकार है उससे भिन्न-भिन्न वातावरणों में बार-बार पूछताछ की गई है और विभिन्न

---

[1] एंथनी एम० स्कैको जूनियर।

[2] रेप इन प्रिजन, पृष्ठ 18, 33 और 113.

कथन अभिलिखित किए गए हैं। हम यह कहना नहीं चाहते कि इसे प्रत्यक्ष अनुमान के तौर पर समझ लिया जाए किन्तु हमें ऐसी दशा में अचम्भा होता है जब सहायक लोक अभियोजक यह राय प्रकट करता है जो कि, यदि हम उसके पक्ष में उपधारणाएं भी करें, तो उसकी ओर से उदासीनता दर्शित करता है और यदि हम तत्प्रतिकूल अनुमान लगाएं तो हमें सन्देह होने लगता है। जब यह अभिकथन किया जाता है कि अपराध कारागार के भीतर हुए थे तो इसमें विभागीय दुःसन्धि अथवा सांठगांठ का कोई पुट अथवा रेखा पुलिस तथा कारागार के कर्मचारिवृन्द के बीच नहीं होनी चाहिए। हम यह न्यूनतम सम्प्रेक्षण कर रहे हैं ताकि राज्य उचित कार्यवाही करने के लिए सतर्क हो जाए। निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष का आचरण ऐसा है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं सौंपा जा सकता जिसने कि उस पर पहले ही लांछन लगा दिया है।

87. हम पिटीशन को मंजूर करते हैं और यह निदेश देते हैं कि एक रिट जारी किया जाए जिसके अन्तर्गत छः समादेश भी हों तथा आगे यह आदेश देते हैं कि इसकी एक प्रति उचित कार्यवाही के लिए गृह मन्त्रालय को तथा सभी राज्य सरकारों को भेजी जाए क्योंकि कारागार न्याय व्यापक रूप से सुसंगत होता है।

88. मैंने अपने विद्वान् बन्धु द्वारा तैयार किए गए निर्णय का परिशीलन किया है। अपनी ओर से मैं यह पर्याप्त समझता हूं कि उस निर्णय के अन्त में जो निम्नलिखित निष्कर्ष तथा निदेश दिए गए हैं उनका समर्थन करूं—

(1) बन्दी प्रेम चन्द को जब कि वह तिहाड़ जेल में अभिरक्षा में था यन्त्रणा पहुंचायी गई। चूंकि एक दाण्डिक मामला अभियोजित किया जाने वाला है इसलिए इस कार्रवाई में यह विनिश्चित करना आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति यन्त्रणा पहुंचाने के लिए उत्तरदायी है।

(2) कारागार के अधीक्षक को यह निदेश दिया जाता है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि प्रेम चन्द को जो यन्त्रणा पहुंचायी गई है उसकी बाबत किए गए परिवाद के कारण उस पर कोई दण्ड अथवा दैहिक हिंसा अधिरोपित न की जाए।

89. इसके अलावा मैं इस सिलसिले में अपने विद्वान् बन्धु से सामान्य रूप से सहमति रखता हूं कि कारागृह सम्बन्धी सुधार की आवश्यकता है और

इस बात के लिए तुरन्त उपलब्ध किए जाने चाहिए कि बंदियों को यथायोग्य प्रसुविधाएं दी जाएं जिनसे वे न केवल अपने विधिक अधिकारों से अवगत हों बल्कि उन्हें इस योग्य भी बनाया जाए कि वे अपने परिवाद तथा व्यथाएं अभिलिखित कर सकें तथा अधिकारिता रखने वाले न्यायालय या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तत्प्रयोजनार्थ नामनिर्दिष्ट वकीलों के साथ वे गोपनीय साक्षात्कार कर सकें हालांकि यह सब निःसन्देह कारागार अनुशासन तथा अभिरक्षा के विचार्य विषयों के अध्यधीन होगा। यह लाजमी है कि जिला मजिस्ट्रेटों तथा सेशन न्यायाधीशों को चाहिए कि वे अपनी अधिकारिता के भीतर विद्यमान कारागारों का निरीक्षण करें और बंदियों को प्रभावशील अवसर प्रदान करें जिससे कि वे अपनी व्यथाओं को अवगत कर सकें और जहां विषय उनकी शक्तियों के भीतर हो वहां वे उसके सम्बन्ध में तुरन्त जांच कर सकें और यथोचित उपचारात्मक कार्रवाई कर सकें। यह भी आवश्यक है कि सेशन न्यायाधीश को कारागार प्राधिकारियों द्वारा इस बात से ऐसी कार्रवाई के दो दिन के भीतर अवगत किया जाना चाहिए कि किसी बंदी के विरुद्ध कोई दाण्डिक कार्रवाई की जाने वाली है। सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए निरीक्षणों, जांच-पड़ताल तथा उस पर की गई कार्रवाई जांच-पड़ताल ब्यौरा समय-समय पर उच्च न्यायालय को उसकी अधिकारिता के भीतर कारागार में प्रचलित वातावरण से अवगत कराने के लिए विवरण प्रस्तुत किया जाए।

पिटीशन मंजूर किया गया।

स०/मु०

(1981) 3 उम॰ नि॰ प॰ 1300

(1981) 1 SCC 50:

AIR 1981 SC 625

किशोर सिंह रवीन्द्र देव

बनाम

राजस्थान राज्य

(Kishor Singh Ravinder Dev

v.

State of Rajasthan)

(4 नवम्बर, 1980)

(न्यायाधिपति वी॰ आर॰ कृष्ण अय्यर और आर॰ एस॰ पाठक)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 1, 2, 14, 19—मानविक गरिमा—बंदीगृहों में भी मानविक गरिमा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए—बंदी को एकांत परिरोध तथा बेड़ियों में जकड़कर रखा जाना—ऐसा कदम केवल सुरक्षा कारणोंवश सर्वथा असाधारण मामलों में ही उठाया जाना चाहिए।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 46 तथा राजस्थान जिहल कल्स के नियम 1 (एक), 46 एवम् 79—इनका निर्वचन संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुकूल होना चाहिए।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—पुलिस द्वारा उत्पीड़न (थर्ड डिग्री मेथड्स) के उपयोग की भर्त्सना—पुलिस द्वारा की जाने वाली क्रूरताओं के प्रति सरकार का ध्यान आकृष्ट किया जाना—अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित मानव जीवन के महत्व पर जोर दिया जाना।

उच्चतम न्यायालय ने यह आदेश दिया कि बंदी को उसके समक्ष पेश किया जाए। यह अभिकथन किया गया था कि जब बंदी को न्यायालय में ले जाया जा रहा था तो उसे ले जाने वाले पुलिस कर्मचारियों द्वारा उसकी गम्भीरतापूर्वक मारपीट की गई। उच्चतम न्यायालय ने इस विषय में जांच का आदेश दिया और यह मत व्यक्त किया कि पुलिस की ऐसी पद्धति, जो मस्तिष्क की बजाय मारपीट का अधिक अवलम्ब लेती है, परित्यक्त कर दी जानी चाहिए। दूसरे, राज्य को चाहिए कि वह अपने पुलिस कर्मचारिवृन्द को

पुनः शिक्षित करते हुए उत्पीड़न कार्यों से उसे दूर रखे और व्यक्ति की मानविकता के लिए समादर की बात उसके मन में बिठाये। तीसरे, यदि कुछ पुलिस कर्मचारियों के बारे में यह पाया जाता है कि उन्होंने कदाचार किया है तो पुलिस के गठजोड़ अथवा उसमें निविष्ट व्यक्तियों को इस बात के लिए प्रेरित नहीं किया जाना चाहिए कि वे अपराध को छिपायें। न्यायालय ने यह आशा प्रकट की कि जिस बात से पुलिस की क्रूरता सम्भव होती है उसके विरुद्ध में सरकार को गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए और उत्पीड़न को समाप्त कर देना चाहिए, अन्यथा अनुच्छेद 21, जो कि जीवन और अवयव के लिए अत्यन्त ध्यान देता है, व्यर्थ हो जाएगा। बंदियों को हथकड़ियां पहनाने और बेड़ियों में रखने के विरुद्ध राज्य के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए, उच्चतम न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित—बंदीगृह में बाबागरादी, धृष्टतापूर्वक व्यवहार तथा अभद्र आचार, जैसे कि वृत्तान्त पर्चों (हिस्टरी टिकट) को फाड़ देना, इस संबंध में सारहीन आधार है। न्यायालय ने अधीक्षक के शपथ-पत्र का परिशीलन किया है और वह उसे सर्वथा समाधानप्रद महसूस नहीं करता है कि सुनील बत्रा वाले मामले में दिए गए समादेश का अनुपालन किया गया है। (पैरा 7)

अनुच्छेद 21 का उल्लंघन जिस रूप में कि वह इस न्यायालय द्वारा अपने हाल ही के विनिश्चयों में किया गया है, यदि उसे दोहराया जाए तो उसके और भी गम्भीर परिणाम होंगे। तथापि जिस परिवाद की शिकायत की गई है उसके बारे में जिस अवलेख का अवलम्ब लिया गया था उसके प्रति निर्देश किया जाएगा और संक्षिप्त रूप से अनुच्छेद 21 में विवक्षित समादेशात्मक विनिधानों तथा प्रायाशंसाओं को दोहराया जाएगा जिन्हें निर्णयज-विधि द्वारा स्पष्टीकृत किया गया है। (पैरा 8)

यदि सुरक्षा कारणोंवश दाण्डिक अथवा कठोर प्रकृति के विशेष निर्बन्धन अधिरोपित किए जाने है तो यह आवश्यक है कि नैसर्गिक न्याय का अनुवर्तन किया जाए जैसा कि सुनील बत्रा वाले मामले में उपदर्शित किया गया है। इसके अलावा, जब ऐसा व्यवहार किया जाता है अधीन पदिनायक की ओर से अधिनायक को नहीं की जानी चाहिए बल्कि किसी बंदीगृह प्राधिकारी की ओर से न्यायिक उपांग को ही की जानी चाहिए। (पैरा 10)

कोई आत्यंतिक वर्जन अधिरोपित नहीं किया जा रहा किन्तु इस बात पर जोर दिया जाता है कि अन्य बंदियों की सुरक्षा के लिए अथवा निकल

मानने के विरुद्ध निवारक आवश्यकता के अति गम्भीर मामलों में ही ऐसी बेड़ियों आदि का सहारा लिया जा सकता है। मानविक गरिमा संविधान के लिए भिन्न रूप से मूल्यवान है और मात्र कारागार पदधारियों द्वारा विचारगत आशंकाओं से इन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। राजस्थान में विद्यमान कारागृह प्राधिकारी इस प्रकार अधिकथित सिद्धांतों का अनुवर्तन करेंगे। धारा 46 का तथा राजस्थान प्रिज़न रूल्स के नियम 1 (एफ) एवम् 79 का अवधीलन करके उन्हें इस सीमित रीति में कायम रखते हैं। (पैरा 11)

राजस्थान राज्य में तैनात सेशन न्यायाधीश सुनील बत्रा तथा द्वितीय और राकेश कौशिक वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिर्णयों को याद रखें और ऐसी नीति में कार्रवाई करें कि दण्डादिष्ट व्यक्तियों पर न्यायिक प्राधिकारी तथा उनके कारावास की अवस्थाएं ऐसी हों कि उन्हें न्यायिक कर्महीनता के परिणामस्वरूप कमी न हो जाए। (पैरा 12)

इसलिए, राजस्थान राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाता है—और वस्तुतः देश के अन्य राज्यों की सरकारों को भी यही निदेश है—कि वे कारागृह संबंधी प्रशासन पर प्रभाव डालने वाले इस न्यायालय के विनिर्णयों को तुरन्त नियमों और निदेशों के रूप में संपरिवर्तित करें जिससे कि बंदियों की स्वतंत्रताओं के उल्लंघन से बचा जा सके और बन्दी प्रत्यक्षीकरण संबंधी मुकदमेबाजी प्रचुर मात्रा में उत्पन्न न हो जाए। बहरहाल, मानविक अधिकार राज्य द्वारा ऐसे ही सराहे जाते हैं जैसे कि नागरिक द्वारा। (पैरा 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1980]	(1980) 3 एस० सी० सी० 488(494) : सुनील बत्रा II बनाम दिल्ली प्रशासन (Sunil Batra II v. Delhi Administration);	7,8, 11, 12, 14
[1980]	(1980) एस० सी० सी० (क्रिमिनल) : राकेश कौशिक बनाम बी० एल० विग, अधीक्षक केन्द्रीय कारागार, नई दिल्ली और एक अन्य (Rakesh Kaushik v. B. L. Vig, Superintendent Central Jail, New Delhi and Another)	11,12,14

[1978]	(1978) 4 एस० सी० सी० 494 : सुनील बत्रा I बनाम दिल्ली प्रशासन (Sunil Batra I v. Delhi Administration);	2,4,7,8,10, 11,12,14

प्रारम्भिक अधिकारिता : 1980 का रिट पिटीशन सं० 5287.

(संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन)

पिटीशनर की ओर से	श्री पी० एच० पारेख
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री बी० डी० शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

इस मामले की शिक्षा मार्मिक है। जब तक संविधान द्वारा स्थापित और राज्य के कारागारों की ओर से उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रकाशित विधि को लोहे की सलाखों का पर्दा विभाजित करता है तब तक इस न्यायालय का रिट एक रहस्यमय कल्पना तथा निर्दोष अर्ध-सत्य बना रहेगा जिससे कि पुस्तकों में लिखित विधि तथा प्रयोग में लाए जाने वाली विधि दूरस्थ पड़ोसी बने रहेंगे। किन्तु ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए।

2. बंदी प्रत्यक्षीकरण की इस कार्रवाई द्वारा विघटित धुंधला दृश्य-विधान बंदियों की ओर से दी गई तारीख 3 अक्तूबर, 1980 को तार से प्रारम्भ होता है। इन बन्दियों में से एक ने जो कि पिटीशनरों में सम्मिलित है, इनमें से एक को संक्षेप में असह्य, अवैध, एकांत परिरोध की शिकायत की थी जिसमें यह कहा गया था कि बीच-बीच में बेड़ियों में आबद्ध रखा गया था और यही हालत उसके दो अन्य साथियों की जयपुर केन्द्रीय कारागार में हुई थी। यह मानसिक आघात का सन्देश निम्नलिखित है—

> "विद्रोही किशोर सिंह रवीन्द्र देव पारेख गुरजीत सिंह को केन्द्रीय कारागार, जयपुर में कोठरियों में परिरुद्ध रखा गया था और उन्हें असांविधानिक रूप से आठ मास से अधिक समय से अवैध रूप से जंजीरों में जकड़ा हुआ था। बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट द्वारा यह प्रार्थना की गई थी कि जांच का आदेश दिया जाए और दौलत सिंह को बचाया जाए।"

सलाखदार हवालातों में रहने वाले बंदियों की व्यथा के परिणामस्वरूप मानों तार की गति से न्यायिक क्रिया उद्भूत हो गई और न्यायपीठ ने यह निदेश दिया

कि बंदियों को एकांत परिरोध से तुरन्त रिहा कर दिया जाए और सुनील बत्रा वाले मामले[1] में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के निबन्धनों के अनुसार बेड़ियों से मुक्त कर दिया जाए। तारीख 6 अक्तूबर, 1980 वाले उस आदेश में यह कहा गया है—

> "हम श्री पी० एच० पारेख को न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त करते हैं।"

यदि पिटीशनर एकांत परिरोध में है तो उसे सुनील बत्रा वाले मामले[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रकाश में एकांत परिरोध से तुरन्त रिहा कर दिया जाए। सम्बद्ध केन्द्रीय कारागार का अधीक्षक 21 अक्तूबर, 1980 को इस न्यायालय में इस बारे में रिपोर्ट पेश करेगा कि उस बंदीगृह में एकांत परिरोध में कितने व्यक्ति हैं और साथ उन व्यक्तियों की विशिष्टियां भी देगा। वह उस तारीख को स्वयं हाजिर होगा। राजस्थान राज्य के स्थायी काउन्सेल श्री बी० डी० शर्मा को इस बात की सूचना दी जाती है। हमारे मुकदमे की प्रक्रिया के अन्तर्गत काउन्सेल की सेवाएं उपचारात्मक न्याय के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करती हैं और इसलिए हमने श्री पी० एच० पारेख को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त करने का कदम उठाया था। यदि समस्त विधिज्ञ परिषद् व्यापक रूप से निष्ठावान है, तो वह न्यायमित्र के रूप में मानी जायेगी क्योंकि ऐसा कोई भी हेतु नहीं होना चाहिए जो कि जनता के प्रति उद्दिष्ट, न्याय के आशय की पूर्ति रखता हो, बावजूद इस बात के कि उसके शोचनीय 'बीन' विशिष्ट वर्ग युक्त तत्व और तात्पर्य दृष्टिकोण होते हैं जो अपेक्षाकृत न्यायिक उपचारों के प्रजातंत्र में विनिश्चायक कार्य करते हैं जिससे कि कोई भी व्यक्ति—चाहे वह निर्धन हो या बंदी, विमति-कर्ता हो या कर्मचारी, सनकी हो या पराकाष्ठा वादी—उस अपराध से पीड़ित रखा जाये जिसे कि विधि प्रतिषिद्ध करती है। इस न्यायालय में विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों को जब कभी आहूत किया गया, उनके दरवाजे खुले पाये गये हैं और उन्होंने न्याय के स्वतन्त्र द्वारपालों के रूप में इस न्यायालय की पूर्णरूपेण सहायता की है और अन्यायी द्वारा व्यथित तथा विधिक न्याय की मांग करने वाले किसी भी व्यक्ति को सेवा में रत विधि संबंधी स्वतन्त्र कार्य-कर्ताओं की मदद मिलती रही। बहरहाल यह महान प्रस्थापना भी कि न्यायकरण की अपेक्षा किये जाने को प्रेरणा देती है—चाहे वह न्यायपीठ की

---

[1] [1978] 4 एस० सी० सी० 494.

ओर से हो या विधिज्ञ परिषद् की ओर से—डा० मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) द्वारा अल्बामा कारागार से लिखे गये उनके पत्र द्वारा सर्वोत्तम रूप से अभिव्यक्त की गई है—

> अन्याय चाहे कहीं भी हो वह सर्वत्र न्याय के प्रति आतंक है। हम पारस्परिकता के अपरिहार्य जाल में जकड़े हुये हैं और विधि के एकमात्र वस्त्र में बंधे हुये हैं। जो कुछ भी किसी एक व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है वह सभी व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

3. यहां भी हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम बंदियों के हित में श्री पारेख की आकांक्षा जिसमें कि वे व्यथाएं सम्मिलित हैं जो कि वे झेल रहे थे जिससे कि उन्हें ध्यानपूर्वक प्रस्तुत किया गया उसके लिये हम अपनी सराहना अभिलिखित करें। इसी प्रकार श्री बी० डी० शर्मा की कारागार न्याय के प्रति वचनबद्धता, जो कि जेलर के अन्याय से अधिक है, उनके मुवक्किल के संबंध में उन्होंने जो 'नोट' तैयार किया है उसकी भी हम सराहना करते हैं। भूतलक्षी प्रभाव से हम यह महसूस करते हैं कि यह सही था कि हमें उन तीन बंदियों को उनका निर्दयतापूर्वक एकांतवास, बर्बरतापूर्वक शृंखलाबंधन और एकांत परिरोध से रिहा कराने के लिए तुरन्त कार्रवाई की जाए। न्याय के लिए यह आवश्यक है कि वह तुरन्त कार्यान्वित किया जावे और जैसा कि बुद्धिमतापूर्वक कहा गया है : "महोदय सतर्क रहिए—यह कायरतावादी नारा है"। जहां मानसिक बंधन और शारीरिक यंत्रणा अन्तर्वेलित हो, वहां प्रतीक्षा करना पराजय के समान है। दैहिक स्वाधीनता संबंधी विधिशास्त्र में इस न्यायालय ने कभी विलम्ब नहीं किया और न ही यह ऐसा करने में कभी लड़खड़ाया है और न ऐसा करेगा ही, इसका कारण स्पष्ट है। रिट के लिये यह आवश्यक है कि वह दोष को तुरन्त दूर करे अथवा आत्म-शोधन के रूप में छल के तौर पर निष्फल खड़ा रहे। जहां न्याय जोखिमपूर्ण हो अथवा स्वतन्त्रता शृंखलाबद्ध हो वहां न्यायालय पंक्तिबद्ध नहीं है, ऐसा नहीं होता और वहां अतिसंवेदनशील गति से कार्रवाई करनी होती है। जहां यन्त्रणा अन्यथा परिणत होती है, वहां समय विषय का सार होगा।

4. तारीख 6 अक्तूबर, 1980 वाले इस न्यायालय के आदेश द्वारा दोनों ओर से काउन्सेलों को एक दूसरे के सामने लाया गया, पूर्णतया एकान्तवास से बन्दियों को रिहा किया गया और 21 अक्तूबर, 1980 को कारागार अधीक्षक को हमारे समक्ष उपस्थित किया गया जिससे कि वह

सुनील बत्रा वाले मामले[1] में अभिकथित आधारभूत विधि संबंधी अपने द्वारा उल्लंघन किये जाने का जवाब दे सके। उस दिन अर्थात् 21 अक्तूबर, 1980 को संक्षिप्त सुनवाई के पश्चात्, हमने यह निदेश दिया—

> "प्रत्यर्थी एक विस्तृत शपथ-पत्र फाइल करेगा जिसके अन्तर्गत विशिष्टियां दी जाएंगी और साथ ही साथ वह एकान्त परिरोध में परिणत होने वाली जांच के संबंध में कार्यवाहियां पेश करेगा। बन्दी को इस न्यायालय में 24 अक्तूबर, 1980 को पेश किया जायेगा और श्री पारेख को इस बात की इजाजत होगी कि वह उससे साक्षात्कार कर सके।"

इस आदेश के अनुसरण में कारागार अधीक्षक ने जो स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया वह बत्रा वाले मामले[1] के प्रकाश में किये गये विनिश्चयाधार की दृष्टि से विधिविरुद्ध है। हम शीघ्र ही अपचारी जेलर के आचरण पर विचार करेंगे किन्तु जो विक्षुब्धकारी वृत्तान्त हमारे ध्यान में लाया गया और जिससे हम परेशान हुये वह ऐसी हिंसा थी जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि वह गुरजीत सिंह नामक एक बन्दी के शरीर पर—ले जाने वाले पुलिस अधिकारी द्वारा उपयोग में लाई गई थी जबकि वह रास्ते में था और जिसके बारे में अभिसाक्ष्य उन दृश्य घावों द्वारा मिलता है जोकि काउन्सेल ने शरीर पर पाये थे। जो शारीरिक क्षतियां विद्यमान थीं, उन्हें दर्शित करने की मांग करके श्री पारेख ने उन्हें दिखाकर हम पर आघात पहुंचाया है। यदि इस न्यायालय के रिट के आधार पर किसी व्यक्ति को जयपुर कारागार से न्यायिक उपस्थिति में लाया जाता है तो क्या यह हो सकता है कि थोड़े से सिपाही बन्दी अभिरक्षा में रहते हुये रास्ते में उसकी मारपीट निर्लज्ज बर्बरता तथा दाण्डिक उन्मुक्ति के साथ करें हालांकि वह व्यक्ति उनकी अभिरक्षा है और ऐसी विधि विहीनता के समक्ष विधि के हाथ पंगु धारण कर लेते हैं ?

> "शक्ति के बिना न्याय अशक्त है; न्याय के बिना शक्ति क्रूरता है……………इसलिये न्याय और शक्ति का एकसाथ लाना आवश्यक है जिससे जो कुछ भी न्यायोचित हो वह शक्तिशाली हो और जो कुछ भी शक्तिशाली हो वह न्यायोचित हो।" (ब्लेस पास्कल)

---

[1] [1978] 4 एस० सी० सी० 494.

इसलिये हमने यह आदेश दिया—

"हम नार्दमिक श्री पारेख द्वारा यह जानकर अत्यन्त विक्षुब्ध हुये हैं कि बन्दियों में से एक गुरजीत सिंह जबकि उसे इस न्यायालय में लाया जा रहा था उसे बुरी तरह पीटा गया। काउन्सेल का यह कहना है कि उसके शरीर पर घाव तथा अन्य क्षतियों के चिह्न विद्यमान हैं। कारागार का अधीक्षक, जोकि न्यायालय में उपस्थित है, इस बात की ओर विशेष ध्यान देगा कि इस बन्दी को वापस जयपुर सुरक्षापूर्वक ले जाया जाए। अधीक्षक गुरजीत सिंह बन्दी को आज ही उस बन्दी को परीक्षा के लिए तथा समुचित उपचार के लिए, जिसके बारे में अस्पताल में चिकित्सक द्वारा सुझाव दिया जाए, राम मनोहर लोहिया अस्पताल ले जायेगा। चिकित्सा रिपोर्ट के प्रकाश में अधीक्षक उन सिपाहियों के विरुद्ध जोकि पुलिस के रूप में बन्दी को ला रहे थे, संबद्ध पुलिस थाने के समक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखवाएगा। स्वयं बन्दी को इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि वह परिवाद दायर कर सके और बन्दी प्राधिकारियों द्वारा इस बारे में सुविधाएं प्रदान की जाएंगी। यहां हम इस बात को स्पष्ट कर दें कि इस अन्वेषण में विनाशीय प्रवृत्ति का तनिक भी पुट नहीं होना चाहिए जिससे कि पुलिसमैन को मदद मिलती हो, यदि यह पाया जाता है कि उसके बारे में अत्याचार का साक्ष्य है। जो कुछ भी किया जाता है, उसके बारे में 31 अक्तूबर, 1980 पर्यन्त इस न्यायालय में रिपोर्ट दाखिल की जाएगी।"

5. तत्पश्चात्, चिकित्सा रिपोर्ट जिसके बारे में हमें श्री पारेख ने अवगत कराया है, संबद्ध सिपाहियों के विरुद्ध जिसके बारे में श्री शर्मा ने प्रतिवेदित किया है, इन दोनों के बारे में आगे कार्रवाई की जा रही है। हम उनके बारे में कोई सम्प्रेक्षण नहीं करेंगे क्योंकि वह एक पृथक जांच का विषय है। तथापि, कोई पुलिस संबंधी कार्यशीलता जोकि मस्तिष्क की बजाय मार-पीट का अधिक अवलम्ब लेती है, संस्कृति की अपेक्षा यंत्रणा पर अधिक निर्भर करती है, अपराध को नियंत्रित कर सकती है क्योंकि उद्देश्य पर पद्धतियां आच्छादित रहती हैं और उस दोष को पुनः भड़काती हैं जिसे वह बुझाना चाहता है। दूसरे, राज्य को चाहिए कि वह अपने सिपाहियों को अपने परपीड़न संबंधी कार्यकलाप से दूर करते हुए उसे पुनः शिक्षित करे तथा मानव के लिए आदर प्रदत्त करे जो ऐसी प्रक्रिया है जिसके बारे में यह आवश्यक है कि वह सिद्धांत की अपेक्षा और उदाहरण द्वारा ही प्रारम्भ होगी यदि निचले वर्गों को वस्तुतः

बराबरी प्राप्त करनी है। तीसरे, यदि लाने वाले इन पुलिस के व्यक्तियों के बारे में यह पाया जाता है कि उन्होंने कदाचार किया था, तो पुलिस संबंधी एकता की भावना अथवा सेवा के अन्तर्गत साम्प्रदायिकता से प्रेरित होकर प्राधिकारियों को कदापि अपराध को छिपाना न होगा। जल्दबाजी में की गई उपयुक्त कार्रवाई सामुदायिक आश्वासन की अधिक सुनिश्चित गारन्टी है बजाए इसके कि इस बारे में प्रचार किया जाए कि पुलिस में सब कुछ ठीक है और आलोचक सर्दैव गलत होते हैं। यदि पुलिस की हिरासत में किसी व्यक्ति को पीटा जाता है, तो इससे बढ़कर कायरतापूर्ण तथा अत्यन्त अनैतिक कोई कुकृत्य नहीं होगा और मानव अधिकारों पर ध्यान दिए बिना यदि कोई सरकारी पदधारी उन्मत्त हो जाता है तो इससे गम्भीरतर घाव किसी अन्य बात से नहीं पहुंचेगा। हमारा यह विश्वास है कि आधारभूत निदान जोकि पुलिस क्रूरता को संभव बनाती है सरकार द्वारा गम्भीरतापूर्वक विचार का विषय होगी। प्रश्न यह है कि इस पुलिस पर सख्ती से कार्रवाई कौन करेगा? पुलिस की संस्था जिस रूप में कार्य करती है, उस पर भला किस प्रकार मनोवैज्ञानिक दबाव तथा सामाजिक बंधन में सुधारात्मक स्वस्थता लाना आवश्यक होगा? उत्पीड़न की जड़ें कब उखाड़ी जाएंगी और उनके स्थान पर मानविक समादर की नवीन कोंपलें कैसे प्रतिस्थापित की जाएंगी? हम ऐसे सम्प्रेषण इस मानसिक आशा को लेकर करते हैं कि अनुच्छेद 21 जोकि जीवन तथा स्वतंत्रता के लिए गम्भीरतापूर्वक संबंध है, दुष्कृत्य हो जाएगा जब तक कि पुलिस तथा कारागार स्थापन के अन्तर्गत विधि के अभिकरण पूर्वोक्त अनुच्छेद की मानविक विचारधारा के लिए सहानुभूति नहीं रखेंगे।

6. इस न्यायालय ने, सिवाय अत्यन्त विरले मामलों को छोड़कर, जहां कि सुरक्षा को गम्भीर खतरा होगा हथकड़ी लगाए जाने आदि पर रोष प्रकट किया है जब तक कि हथकड़ी आदि का अवरोध किसी बंदी पर अधिरोपित करना अत्यावश्यक न हो। हमें यह जानकार प्रोत्साहन मिला है कि ऐसे राज्य भी हैं जिनमें शिष्टाचार और मानवता के साथ बंदियों को सिपाहियों द्वारा ले जाया जाता है। उदाहरणार्थ, केरल पुलिस मैनुअल, 1970, खण्ड II पैरा 443 इस प्रकार है—

*"443. (1) हथकड़ियों अथवा रस्सों आदि के प्रयोग से उस व्यक्ति को अपमान पहुंचता है जिस पर अवरोध अधिरोपित किया

*अंग्रेजी में वह इस प्रकार है—

"443. (1) The use of hand-cuffs or ropes causes humiliation to the person subjected to the restraint.

जाता है और यह पद्धति अपराधियों के साथ व्यवहार की बाबत आधुनिक नीति के प्रतिकूल है।

इसलिए हथकड़ी लगाना और/या बांधना केवल ऐसे मामलों तक निर्बन्धित रखा जाएगा जहां कि अभिरक्षा में रखा गया व्यक्ति उच्छृंखल प्रकृति का हो अथवा जहां ऐसा विश्वास करने के कारण हो कि वह हिंसा का उपयोग करेगा अथवा भाग निकलने का प्रयत्न करेगा या जहां समरूप ऐसे अन्य कारण हों जो ऐसा कदम उठाए जाने के लिए आवश्यक हों।"

हमने इसका उल्लेख यहां इसलिए किया है क्योंकि ऐसे पुलिसमैन, जो अपनी अभिरक्षा के अधीन व्यक्तियों को पीटते हैं, सुगम अन्तःकरण से उन्हें हथकड़ी लगा सकते हैं और पांव में बेड़ियां पहना सकते हैं जो कि अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल अनुक्रम है।

7. राज्य द्वारा मामले का जो कथन किया गया है उससे सारवान् रीति में मन्त्रणादायक तथ्य उद्भूत होते हैं। यह स्वीकार किया गया है कि पिटीशनरों को दीर्घकालावधियों के लिए जो 8 मास से लेकर 11 मास तक विस्तृत हैं पृथक् एकांत कोठरियों में रखा गया है और पूर्वोक्त कालावधियां इतनी लम्बी हैं कि यदि सुनील बत्रा वाले मामले में दिया गया विनिश्चय अभिभावी होना है तो इन्हें बर्बरतापूर्ण माना जा सकता है। स्वीकृत रूप से, किशोर सिंह को कई दिनों तक और गुरजीत सिंह को 30 दिन तक बेड़ियों में जकड़े रखा गया था—पिटीशनर के काउन्सेल ने औचित्यपूर्ण रूप से यह दलील दी है कि बंदीगृह में मारापीटी, धृष्टतापूर्वक व्यवहार तथा अभद्र व्यवहार जैसे कि वृत्तान्त पर्ची (हिस्टरी टिकट) को फाड़ देना, इस संबंध में सारहीन आधार है। हमने अधीक्षक के शपथ-पत्र का परिशीलन किया है और

---

and is contrary to the modern policy regarding the treatment of offenders.

Therefore, handcuffing and/or binding shall be restricted to cases where a person in custody is of a desparate character, or where there are reasons to believe that he will use violence or attempt to escape or where there are other similar reasons necessitating such a step."

हम उसे सर्वथा समाधानप्रद महसूस नहीं करते हैं कि सुनील बत्रा वाले मामले[1] में दिए गए समादेश का अनुपालन किया गया है। यह मामला और कोठरी में एकांतवास तथा मानसिक आघात पहुंचाने वाली बेड़ियों से जकड़ने वाले धमड़ आदेश हमें इस बात के लिए आबद्ध करते हैं कि पहले सुनील बत्रा (द्वितीय) वाले मामले[1] में जो कथन किया गया है उसे हम यहां दोहराएं—

> इस मामले का सार यह है कि मानविक अधिकारों का आवश्यकता के मामले इस युग में बंदी प्रत्यक्षीकरण का कृत्यात्मक बाहुल्य है और मानविक शालीनता तथा गरिमा के लिए सम्मान इस सामर्थ्य द्वारा कसौटी पर परखा जाता है। हम सैद्धांतिक दृष्टि से बिल दर्रा के निम्नलिखित शब्दों को स्वीकार करते हैं—

> समय आ गया है कि सभी भद्र व्यक्ति अपने पक्ष की सहायता करें जिसे सभ्यता का नाम दिया गया है।

इसी प्रकार, हम अपनी सांविधानिक विचारधारा के भाग के तौर पर उस विवेक का समर्थन करते हैं जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रभावशाली रूप में "पीपल इन प्रिज़न" शीर्षक में श्वेत-पत्र में कहा गया था—

> कोई ऐसा समाज जो व्यक्तिगत मानवों के महत्व पर विश्वास करता है अपने विश्वास की गुणिता का अनुमान लगवा सकता है, चाहे यह भागतः ही क्यों न हो, कि उसके बंदीगृह किस क्वालिटी के हैं तथा परिवीक्षा सेवाएं ऐसी हैं और उन्हें इस प्रकार के साधन उपलब्ध किए गए हैं।

8. हम अधीक्षक के इस कथानक को स्वीकार नहीं करते कि उसने बंदियों को दण्डित करने से पूर्व उन्हें सुनवाई का अवसर दिया था। यह एक अगम्य प्रतिरक्षी ब्याज है और सम्भवतः उसे केवल जो अनुपयुक्त "अन्यथा स्थितियां" उपलब्ध हैं वे ये हैं कि पुरातन प्रिज़न रूल्स [राजस्थान प्रीज़न रूल्स, 1951 का नियम 1(एक) भाग 16 तथा नियम 79] बंदीगृह के सर्वोच्च अधिकारी की प्रशासनिक सर्वोच्चता का समर्थन करते हैं और मुझे वे अधिक सम्बद्ध हैं जैसा कि काउन्सेल श्री शर्मा ने साफ-साफ कथन किया है। अधीक्षक सुनील बत्रा (द्वितीय) वाले विनिश्चय में सौम्य विनिहित विनियमों के बारे में अनजान था। वास्तव में श्री शर्मा ने आश्वासनपूर्वक हमें इस बात

[1] [1980] 3 एस० सी० सी० 488, पृष्ठ 494.

के लिए प्रेरित किया था कि हम अधीक्षक के व्यवहार के बारे में नया दृष्टिकोण अपनाएं और इस हेतु उसने इस बात पर जोर दिया था कि उसने कारागार अधीक्षक को बत्रा वाले मामले में दिए गए विनिर्णय का परिशीलन तथा स्पष्टीकरण प्रभावशील रूप से कराया था और फिर उसने हमें यह आश्वासन भी दिया था कि "पृथक् कोठरी में रखे जाने" के बहाने अब कोई एकांत परिरोध नहीं किया जाएगा और न ही किसी बंदी को बेड़ियों से जकड़ा जाएगा जब तक कि कोई सर्वथा विरला मामला न हो और ऐसा करते समय बंदियों को दण्डित करने से संबंधित इस न्यायालय के विनिश्चयों में अन्तर्विष्ट प्रक्रियागत रक्षोपायों का यथार्थ अनुपालन किया जाएगा। हम कारागार पदधारी की सद्भावपूर्वकता को स्वीकार करते हैं, किन्तु इस बात पर जोर देते हैं कि अनुच्छेद 21 का उल्लंघन जिस रूप में कि वह इस न्यायालय द्वारा अपने हाल ही के विनिश्चयों में किया गया है, यदि उसे दोहराया जाए तो उसके और भी गम्भीर परिणाम होंगे। तथापि, हम जिस परिवाद की शिकायत की गई है उसके बारे में जिस अवरोध का अवलम्ब लिया गया था उसके प्रति निदेश करेंगे और संक्षिप्त रूप से अनुच्छेद 21 में विवक्षित समादेशात्मक विनिषेधों तथा प्रत्याशंसाओं को दोहराएंगे जिन्हें निर्णयज विधि द्वारा स्पष्टीकृत किया गया है।

9. राजस्थान प्रिज़न रूल्स के भाग VI के नियम 79 और 1(एक) को यहां उद्धृत किया जाता है—

> *79. "सुरक्षा के लिए विशेष पूर्वावधानियां : अधीक्षक ऐसी विशेष पूर्वावधानियों के बारे में आदेश देते समय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा जैसी कि किसी महत्वपूर्ण बंदी की सुरक्षा के लिए की जानी आवश्यक हों, चाहे उसे मजिस्ट्रेट से कोई चेतावनी प्राप्त हुई हो या नहीं, क्योंकि अधीक्षक इस बात का एकमात्र निर्णायक है कि बंदियों को सुरक्षित अभिरक्षा के लिए कौन से अभ्युपाय अपनाए

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> 79. "Special Precautions for security : The Superintendent shall use his discretion in ordering such special precautions as may be necessary to be for the security of any important prisoner, whether he has received any warning from the Magistrate or not, as the Superintendent is the sole Judge of what measures

जाने आवश्यक हैं; वह इस बात का ध्यान रखने के लिए उत्तरदायी होगा कि जो पूर्वावधानियां बरती जाती हैं वे युक्तियुक्त रूप से तत्-प्रयोजनार्थ प्राप्त हों।

1(एफ) ऐसे सिद्धदोष आपराधिक बंदियों के परिरोध के लिए कोठरियों का उपयोग किया जा सकता है जिनके बारे में कि अधीक्षक की यह राय है कि अन्य अपराधियों के बारे में उनका बुरा असर पड़ना सम्भाव्य है।

इन नियमों को विरचना बंदीगृह अधिनियम की धारा 46 के अधीन की गई थी और इस प्रक्रम पर उनका भी परिशीलन करना उचित होगा—

46. अधीक्षक किसी ऐसे अपराध से सम्पृक्त किसी व्यक्ति की परीक्षा करेगा और तदुपरि इस बात का अवधारण करेगा तथा निम्नलिखित द्वारा ऐसे अपराध को दण्डित करेगा..................

(6) ऐसे नमूने और वजन की हथकड़ियों का ऐसी रीति में और ऐसी कालावधि के लिये लगाया जाना जैसी कि सपरिषद् महाराज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों द्वारा विहित किया जाये;

are necessary for the safe custody of the prisoners; he shall be held responsible for seeing that precautions taken are reasonably sufficient for the purpose.

1(f). Cells may be used for the confinement of convicted criminal prisoners who are in the opinion of the Superintendent, likely to exercise a bad influence over other prisoners, if kept in their association.

These Rules were framed under s. 46 of the Prisons Act which also may be read at this stage—

46. The Superintendent may examine any person touching any such offence, and determine thereupon and punish such offence by............

(6) imposition of handcuffs of such pattern and weight, in such manner and for such period, as may be prescribed by rules made by the Governor General in Council;

(7) ऐसे नमूने और वजन की बेड़ियों से ऐसी रीति में और ऐसी कालावधि के लिये जकड़ा जाना जैसी कि सपरिषद् महाराज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों द्वारा विहित किया जाए;

(8) अनधिक तीन मास की किसी कालावधि के लिए पृथक् परिरोध;

स्पष्टीकरण—पृथक् परिरोध से श्रम सहित या उसके बिना ऐसा परिरोध अभिप्रेत है जैसा कि किसी बंदी को अन्य बंदियों से संचार करने से निवारित करता है, किन्तु उसे देखने से नहीं तथा उसे प्रतिदिन एक घण्टे से अन्यून विश्राम अनुज्ञात करता है तथा उसे इस बात की भी अनुज्ञा देता है कि वह किसी एक या एक से अधिक अन्य बंदियों के साथ अपना भोजन करे;

....

(9) कोठरी में एकांतवास में ऐसा परिरोध चाहे वह श्रम से युक्त हो या उसके बिना अभिप्रेत है जैसा कि सम्पूर्ण रूप से किसी व्यक्ति को अन्य बंदियों से संचार करने से निवारित करता है किन्तु देखने से नहीं।"

(7) imposition of fetters of such pattern and weight in such manner and for such period, as may be prescribed by the rules made by Governor General in Council;

(8) separate confinement for any period not exceeding three months;

Explanation—Separate confinement means such confinement with or without labour as secludes a prisoner from communication with, but not from sight of other prisoners, and allows him not less than one hour's exercise per diem and to have his meals in association with one or more other prisoners;

....

(9) Cellular confinement means such confinement with or without labour as entirely secludes a prisoner from communication with, but not from sight of other prisoners."

10. हम इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि धारा अथवा नियमों का परिशीलन उस आत्यंतिक विस्तीर्णता से किया जाएगा जिससे कि बंदीगृह के प्राधिकारी हमसे परिशीलन करने की अपेक्षा करते हैं। इससे वस्तुतः यह अभिप्रेत होगा कि बंदी मर्यादाविहीन प्राणी हैं जिनके साथ कारागृह के उच्च अधिकारियों की दया के साथ व्यवहार किया जाएगा। इस देश में कोई भी सर्वसत्तावादी राज्यक्षेत्र नहीं है चाहे प्रस्त दीवार से घिरे संसार का ही क्यों न हो जिसे हम बंदीगृह कहते हैं। अनुच्छेद 14, 19 और 21 इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा सुनील बत्रा (प्रथम) वाले मामले में स्पष्टीकृत रीति से बंदियों के अन्तर्गत प्रवर्तित होते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि उस निर्णय में पृथक रूप से प्रवृत्त दोनों मत भावना तथा सार, युक्तियुक्तता और निष्कर्षों के समरूप हैं। उस मामले में बत्रा के बारे में यह कहा गया था कि वह पृथक् परिरोध में है, न कि एकांत कोठरी में। यहां भी समरूप अभिवाक प्रस्तुत किया गया है। सुनील बत्रा वाले मामले में जो कारण दिए गए थे उनके परिणामस्वरूप हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इस परिशमनकारी अभिकथन को अस्वीकृत कर दें कि पृथक् कोठरी एकांत परिरोध से भिन्न होती है। इसलिए पिटीशनर बंदीगृह के अन्तर्गत उन अन्य बंदियों के समान चलने-फिरने के हकदार हैं जो कि कठिन कारावास भुगत रहे हैं। यदि आवश्यक सुरक्षा कारणोंवश दाण्डिक अथवा कठोर प्रकृति के विशेष निर्बन्धन अधिरोपित किए जाते हैं तो यह आवश्यक है कि नैसर्गिक न्याय का अनुवर्तन किया जाए जैसा कि सुनील बत्रा वाले मामले में उपदर्शित किया गया है। इसके अलावा, अधीन अधिनायक की ओर अधिनायक को नहीं की जानी चाहिए बल्कि किसी बंदीगृह प्राधिकारी की ओर से न्यायिक उपाय को की जानी चाहिए जब ऐसा व्यवहार किया जाता है।

11. सुनील बत्रा[1] वाले उसी मामले में सोबराज को बेड़ियों में रखा गया था और इसके लिए जो कारण दिए गए थे वे प्रतिपरीक्षा में प्रस्तुत किए गए कारणों से अधिक जोरदार हैं बजाय उनके जोकि वर्तमान मामले में दिए गए हैं। किन्तु इस न्यायालय ने यह निदेश किया कि "ऐसी बेड़ियों को तुरन्त हटा दिया जाएगा।" निस्संदेह हम कोई आत्यंतिक वर्जन अधिरोपित नहीं करते हैं किन्तु इस बात पर जोर देते हैं कि अन्य बन्दियों की सुरक्षा के लिए अथवा निकल भागने के विरुद्ध विश्वसनीय आवश्यकता के अति गम्भीर मामलों में भी ऐसी बेड़ियों आदि का सहारा लिया जा सकता है।

[1] [1978] 4 एस॰ सी॰ सी॰ 494.

मानविक गरिमा हमारे संविधान के लिए प्रिय रूप से मूल्यवान है और मात्र कारागार पदधारियों द्वारा विचारगत आशंकाओं से इन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। सुनील बत्रा (द्वितीय)[1] वाले मामले में इस न्यायालय का पश्चात्-वर्ती विनिश्चय सुनील बत्रा (प्रथम)[2] वाले मामले में अधिकथित सिद्धान्तों को सम्पूर्ण संरक्षण देता है। राकेश कौशिक[3] वाले मामले में स्थिति और भी अग्रसर हो चुकी है और इस बारे में ठोस निदेश जारी किए गए हैं जिन्हें हम यहां इस कारण उद्धृत करते हैं कि इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि मात्र किसी एक या अन्य राज्य को लागू नहीं होती बल्कि वह इस देश की सभी राष्ट्रीय संस्थाओं को लागू होती है—

> *"(2) वह, वैयक्तिक हमले तथा विक्रयकला के अपराधी के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश से इस बात की भी जांच करेगा कि क्या बन्दी ने जलपान-गृह में चोरी-चकारी में हिस्सा लिया है तथा इस बात पर भी ध्यान देगा कि क्या उस बन्दी द्वारा अधीक्षक तथा उप-अधीक्षक के विरुद्ध अन्य दुष्कृत्य किए हैं।
>
> (3) वह सुनील बत्रा वाले मामले (रिट पिटीशन संख्या 1009/79) के अन्तिम भाग में जारी किए गए निदेशों के प्रश्न का भी अन्वेषण करेगा जिससे कि वह इस बात को विनिश्चित कर सके कि क्या इन निदेशों का सारवान रूप से अनुपालन किया गया है और

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "(2) He will further enquire, with specific reference to the charges of personal assault and compulson for collaboration in canteen swindle and other vices made by the prisoner against the Superintendent and the Dy. Superintendent.
>
> (3) He will go into the question of the directives issued in the concluding portion of Sunil Batra's case (W. P. 1009/79) with a view to ascertain whether these directions have been substantially complied with and

[1] [1980] 3 एस० सी० सी० 488.

[2] (1978) 4 एस० सी० सी० 494.

[3] 30-4-80 को विनिश्चित 1980 की रिट पिटीशन संख्या 393 और 549.

> कहाँ तक त्रुटि अथवा व्यतिक्रम है और क्या उसके लिए कोई युक्ति-युक्त स्पष्टीकरण है ।
>
> (4) कारागृह के निरीक्षक होने के नाते सेशन न्यायाधीश के निरीक्षण संबंधी कृत्यों का एक भाग है कि वह तनाव, दोष तथा हिंसा की अवस्था से बन्दियों की व्यथाओं से अपने आप को अवगत कराए·····..........."

हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि राजस्थान में विद्यमान कारागृह प्राधिकारी इस प्रकार अधिकथित सिद्धांतों का अनुवर्तन करेंगे । हम धारा 46 का तथा राजस्थान प्रिजन रूल्स के नियम 1(एफ) एवं 79 अवलोकन करते हैं और उन्हें इस सीमित रीति में कायम रखते हैं ।

12. हम प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हैं कि वे तदनुसार कार्रवाई करें । इसके अलावा हम यह स्मरण कराते हैं कि राजस्थान राज्य में तैनात सेशन न्यायाधीश सुनील बत्रा I[1] तथा II[2] और राकेश कौशिक[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिर्णयों को याद रखें और ऐसी रीति में कार्रवाई करें कि दण्डादिष्ट व्यक्तियों पर न्यायिक प्राधिकारी तथा उनके कारावास की अवस्थाएं ऐसी हों कि उनमें न्यायिक कर्महीनता के परिणामस्वरूप कमी न हो पाए ।

13. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रिजन ऐक्ट के अधीन जारी किए गए पुरातन नियमों और परिपत्रों तथा निदेशों का परिशीलन संविधान से, विशेष रूप से अनुच्छेद 21 से तथा इस न्यायालय द्वारा उसका जो निर्वचन किया गया है, उससे सुसंगत रूप से किया जाया करे । इसलिए हम राजस्थान राज्य सरकार को यह निदेश देते हैं—और वस्तुतः, देश के अन्य राज्यों की सरकारों को भी यह निदेश देते हैं—कि वे कारागृह संबंधी प्रशासन पर प्रभाव डालने वाले इस न्यायालय के विनिर्णयों को तुरन्त नियमों और निदेशों के

> to the extent there is shortfall or default whether there is any reasonable explanation therefor.
>
> (4) Being a Visitor of the jail, it is part of his visitorial functions for the Sessions Judge to acquaint himself with the condition of tension, vice and violence and prisoners' grievances.........."

[1] (1978) 4 एस० सी० सी० 494.

[2] (1980) 4 एस० सी० सी० 488.

[3] 30-4-80 को विनिश्चित 1980 की रिट पिटीशन सं० 393 और 549.

रूप में संपरिवर्तित करे जिससे कि बन्दियों की स्वतंत्रताओं के उल्लंघन से बचा जा सके और बन्दी प्रत्यक्षीकरण संबंधी मुकदमेबाजी प्रचुर मात्रा में उत्पन्न न हो जाए। बहरहाल, मानविक अधिकार राज्य द्वारा ऐसे ही सराहे जाते हैं जैसे कि नागरिक द्वारा।

14. चूंकि पिटीशनरों के पृथक् परिरोध तथा बेड़ियों के फन्दों से रिहा किया जा चुका है और चूंकि राज्य के काउन्सेल ने यह आश्वासन दिया है कि इस न्यायालय के अनेक मामलों में सुनील बत्रा I[1] और II[2] तथा राकेश कौशिक[3] में उपवर्णित प्रस्थापनाओं का किसी प्रकार से भी उल्लंघन नहीं किया जाएगा, इसलिए हम यह अनावश्यक समझते हैं कि हम बन्दी प्रत्यक्षीकरण संबंधी इस आवेदन पत्र के अनुसरण में कोई अतिरिक्त निदेश दें।

राज्यों को दिए गए निदेशों का
भू० यथावत् पालन किया जाए।

---

[1] (1978) 4 एस० सी० सी० 494.

[2] (1980) 4 एस० सी० सी० 488.

[3] 30-4-80 को विनिश्चित 1980 की रिट पिटीशन सं० 393 और 549.

AIR 1981 SC 939:
(1981) 3 SCC 671:
1981 CRI.L.J. 481

कादरा पहाड़िया

बनाम

बिहार राज्य

न्यायाधिपति पी. एन. भगवती और ए. पी. सेन

रिट याचिका संख्या 5943 वर्ष 1980, निर्णीत/17.12.80

काद्रा पहाड़िया और अन्य .... याची

बनाम

बिहार राज्य .... प्रत्यर्थी

(अ) भारत का संविधान, अनुच्छेद 21–शीघ्र विचारण–अनुच्छेद 21 के अधीन अभियुक्त का मूल अधिकार। (पैरा 2)

(ब) भारत का संविधान, अनुच्छेद 21–विचाराधीन बन्दियों को राज्य के खर्चे पर साधारणतः सक्षम वकील उपलब्ध कराया जाना चाहिए। (पैरा 2)

(स) भारत का संविधान, अनुच्छेद 21–कारागार अधिनियम (1984 का 9) धारा 56–विचाराधीन बन्दी–न तो उन्हें पैरों में बेड़ी लगाकर रखा जा सकता है और न तो उन्हें कारागार की दीवारों के बाहर काम करने को कहा जा सकता है। (पैरा 3)

निर्दिष्ट निर्णय कालानुक्रम पैरा

ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1360 : (1980) 1 एस. सी. सी. 81 : 1979 सी. आर. एल. जे. 1036. 2

ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1675 : (1978) 4 एस. सी. सी. 494 : 1978 सी. आर. एल. जे. 1941. 3

न्यायाधिपति भगवती :– डाक्टर वसुधा धागम्बर, शोधकर्त्री और सामाजिक वैज्ञानिक, जो बिहार राज्य के संथाल परगनों में कार्य कर रही है, के इस न्यायालय को सम्बोधित पत्र दिनांक 28 नवम्बर, 1980 पर यह मामला हमारे समक्ष है। यह जेलों में बन्द (languishing) विचाराधीन बन्दियों के प्रति हमारी विधिक व न्यायिक प्रणाली की अत्यन्त निष्ठुरता (callousness) व उदासीनता का एक और उदाहरण प्रस्तुत करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक बार कोई व्यक्ति किसी अपराध से अभियुक्त होकर कारागार में दाखिल किया जाता है तो सब लोग उसके बारे में भूल जाते हैं और कोई भी यह परेशानी नहीं उठाता है कि उसके साथ क्या घटित हो रहा है। वह मात्र टिकिट संख्या बन जाता है–मानवता का एक विस्मृत नमूना, समाज से दूर व अलग, उस हृदयहीन विधिक व न्यायिक व्यवस्था का एक अभागा शिकार, जोकि उसको अनन्त प्रायः समय के लिए जेल भेजकर विस्मृतिगर्त में ढकेल देती है।

2. यहाँ एक ऐसा मामला है, जहाँ चार किशोर जोकि इस रिट याचिका में याचियों के रूप में अभिहित (designated) हैं, पकुड़ उप-जेल, संथाल परगनों में 8 वर्षों की अवधि से, उनके विचारण में बिना किसी प्रगति के बन्द हैं। यह सब पहेड़िया जनजाति के हैं, जो कि स्वीकार्यतः एक पिछड़ी जनजाति है। इनमें से दो 26 नवम्बर, 1972 को गिरफ्तार किये गये थे जबकि अन्य दो 19 दिसम्बर, 1972 को गिरफ्तार किये गये थे। जेल के अभिलेख इन याचियों की आयु गिरफ्तारी के समय 18 से 22 वर्ष प्रकट करते हैं, परन्तु डाक्टर वसुधा धागम्बर ने अपने पत्र में कहा है कि वे जब गिरफ्तार किये गए थे तब वे 9 से 11 वर्ष से अधिक आयु के नहीं हो सकते थे, क्योंकि जाँच करने पर जेल कर्मचारी-वृन्द ने उनको बताया है कि जब याची पहले-पहल जेल आए थे तब वे "नग्न बकरी चरवाहे" (naked goat herds) थे और जब डाक्टर वसुधा धागम्बर ने उनको अक्टूबर, 1980 में देखा तब वे 18 से 22 वर्ष के लगते थे। यद्यपि याची जेल में वर्षों पूर्व नवम्बर व दिसम्बर 1972 में लाये गये थे, परन्तु उनका मामला 2 जुलाई, 1977 के पहले सेशन सुपुर्द नहीं किया गया था। यह समझना कठिन है कि सेशन न्यायालय को उनकी सुपुर्दगी, उनकी गिरफ्तारी के

इतने लम्बे समय बाद जैसे 20 माह, देरी से क्यों की गई। हम पटना उच्च न्यायालय से यह चाहेंगे कि वे जाँच करें और यह पता लगावें कि याचियों के मामले को सेशन-न्यायालय को सुपुर्द करने में 20 माह का समय क्यों लगा था और हमें इस जाँच के परिणाम की एक रिपोर्ट भेजें। परन्तु यही न्यायिक प्रक्रिया की देरी व टालमटोल का अन्त नहीं था, यह मात्र शुरुआत थी, क्योंकि हम पाते हैं कि यद्यपि मामला 2 जुलाई, 1974 को सेशन सुपुर्द किया गया था मगर विचारण का प्रारम्भ 20 अगस्त, 1977 तक नहीं हुआ था। सेशन न्यायालय को सुपुर्द होने के बाद, विचारण के प्रारम्भ होने में 3 वर्ष का समय लग गया। यह कार्यकलाप की शोचनीय स्थिति को प्रकट करता है। सारी प्रणाली में कुछ दोष है। कोई भी सभ्य समाज ऐसी विधिक व न्यायिक प्रणाली को कैसे सहन कर सकता है जो कि व्यक्ति को बिना उसके विचारण प्रारम्भ हुए 3 वर्षों तक जेल में रख सकती है। परन्तु नृशंसता (atrocity) यहीं समाप्त नहीं होती है अभी आगे और बाकी है। यद्यपि याचियों का विचारण 30 अगस्त, 1977 को प्रारम्भ हो गया था मगर यह प्रारम्भ मात्र प्रतीकात्मक था। क्योंकि यह उसके आगे कभी बढ़ा ही नहीं और न इसमें अभी तक कोई प्रगति हुई है। याची 20 अगस्त, 1977 को सेशन न्यायालय में उपस्थित हुए थे, परन्तु उसके बाद, डाक्टर वसुधा धागम्बर का कहना है कि वे लोग पुनः न्यायालय में नहीं गए हैं। 3 वर्ष और निकल गए परन्तु यह लोग अभी तक कारागार में पड़े सड़ रहे हैं उनको नहीं मालूम कि उनके मामले में क्या हो रहा है। कारागार की चहारदीवारी में परिरुद्ध, कोठरी में बन्द, अपनी छोटी बन्द कोठरी की दुनिया में रहते-रहते सम्भवतः उन्होंने अपने भाग्य से समझौता कर लिया है। बाह्य संसार उनके लिए विद्यमान ही नहीं है। संविधान का उनके लिए कोई अर्थ और महत्व नहीं है और मानव अधिकारों की उनके लिये कोई प्रासंगिकता नहीं है। यह हमारी न्याय निर्णय प्रणाली के लिये बड़े शर्म की बात है कि यह व्यक्तियों को बिना विचारण के लगातार वर्षों तक जेल में रखती है। हमें हुसैन आरा खातून वाले मामले में (1980) 1 एस. सी. सी. 81 इस कार्यकलाप की शोचनीय स्थिति की आलोचना करने का अवसर मिला था और हमें आशा थी कि हमारे द्वारा अभिव्यक्त परिवेदना (anguish) और पारित कठोर आक्षेपों

(strictures) के पश्चात् बिहार राज्य की न्याय प्रणाली में सुधार होगा और किसी भी व्यक्ति को युक्तियुक्त कालावधि से अधिक समय के लिये जेल में परिरुद्ध रखने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जो हम समझते हैं कि सेशन विचारण में एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए, परन्तु हम पाते हैं कि अवस्थिति (situation) अपरिवर्तित रही है और यह चार याची जो कि जेल में प्रवेश करते समय 12–13 वर्ष के किशोर थे, 8 वर्ष से अधिक से जेल में एक ऐसे अपराध के लिए सड़ रहे हैं जो कि सम्भवतः अन्त में उनके द्वारा करना नहीं पाया जाएगा। यह सुस्पष्ट है कि इतने वर्षों की कैद के बाद विचारण की प्रतीक्षा करते-करते या तो उनकी हिम्मत पूरी तरह से टूट गई होगी या वे समाज के विरुद्ध रोष व क्रोध से खौल रहे होंगे। हम यह समझने में असफल रहे हैं कि क्यों हमारी न्याय प्रणाली इतनी अमानवीयकृत है कि वकीलों और न्यायाधीशों को बिना विचारण के वर्षों व्यक्तियों को जेल में बन्द रखने पर घृणा की अनुभूति नहीं होती है। यह समझना कठिन है कि कैसे सेशन न्यायाधीश यह भूल सका होगा कि उसने याचियों को 30 अगस्त, 1977 को विचारण प्रारम्भ करने के लिये न्यायालय में बुलाया था और उसके बाद उसने इस विषय में कुछ नहीं किया। हमने हुसैन आरा खातून वाले मामले में यह कहा था कि शीघ्र विचारण अभियुक्त का एक मूल अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित है। परन्तु हम देखते हैं कि इन चार याचियों के मामले में यह मूल अधिकार केवल एक कागजी वचन (paper promise) रहा है और उसका घोर उल्लंघन हुआ है। यह आश्चर्य की बात है कि इन चारों याचियों को हुसैन आरा खातून वाले मामले में हमारी समुक्तियों के बाद भी जमानत पर छोड़ा नहीं गया। चूंकि गत 8 वर्षों से अधिक समय से विचारण में कोई प्रगति नहीं हुई है, हम सेशन न्यायाधीश दुम्का को निदेश देते हैं कि वह इन याचियों के मामले को तुरन्त सुनना प्रारम्भ करें और बिना किसी व्यवधान के दिन-प्रति-दिन कार्यवाही चलाते रहें। सेशन न्यायाधीश दुम्का इस मामले के निस्तारण के तुरन्त बाद यह बताते हुए कि कब उन्होंने मामले की सुनवाई प्रारम्भ की और कब पूरी की एक रिपोर्ट इस न्यायालय को भेजेंगे। इन याचियों को राज्य के खर्चे पर साधारणतः सक्षम विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध कराया जायेगा; क्योंकि दाण्डिक

मामले में विधिक सहायता हमारे द्वारा हुसैन आरा खातून वाले मामले में अनुच्छेद 21 में अन्तर्निहित एक मूल अधिकार घोषित किया जा चुका है। हम सेशन न्यायाधीश दुम्का से अपने निदेश के पूर्ण अनुपालन की अपेक्षा करते हैं और हम सेशन न्यायाधीश दुम्का से यह भी चाहेंगे कि वह एक सप्ताह में सूचित करें कि याचियों का विचारण वह 30 अगस्त, 1977 से पहले क्यों नहीं प्रारम्भ कर सके थे और क्यों उसके बाद विचारण में कोई आगे की कार्यवाही नहीं की गई थी।

3. डाक्टर वसुधा धागम्वार ने अपने पत्र में यह भी कहा है कि जब वह अक्टूबर, 1980 में पकुड़ उप-जेल गई थीं और चारों याचियों से मिली थीं तब उन्होंने उनको बेड़ियों में पाया था। पूछने पर मालूम हुआ था कि चारों याची जेल दीवारों के बाहर पानी लाने और अन्य कामों को करते हैं तथा उनके भागने की सम्भावना से बचाव करने के लिए उनको बेड़ियों में रखा जाता है, और सायंकाल बाहर का काम करने के पश्चात् जेल में अन्दर आने के बाद भी बेड़ियाँ नहीं खोली जाती हैं और वे लोग ताला बन्द होने के समय तक उन्हीं बेड़ियों में रहते हैं। यह अत्यन्त विक्षोभकारी कार्यकलाप की स्थिति है और यह निष्ठुरता का भाव और सभ्यता के सामान्य मूल्यों की उपेक्षा को प्रकट करती है। यह समझना कठिन है कि किस प्रकार चारों याचियों, जोकि केवल विचारण की प्रतीक्षा कर रहे विचाराधीन बन्दी हैं, को कारागार विनियमों के प्रतिकूल और सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एस. सी. सी. पेज 494 : (ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1675) में इस न्यायालय के निर्णय के घोर उल्लंघन में बेड़ियों में रखा जा सकता है। यह भी विस्मय कारी बात है कि कैसे चारों याची, जोकि सिद्धदोष बन्दी न होकर केवल विचाराधीन बन्दी हैं, को जेल दीवारों के बाहर काम करने को कहा जा सकता था। यह कारागार विनियमों के घोर उल्लंघन में और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बलात् श्रम (forced labour) के अभिसमयों (conventions) के प्रतिकूल होगा। हम पकुड़ उप-जेल के अधीक्षक से यह चाहेंगे कि वह स्पष्ट करें कि क्यों उन्होंने देश की विधि के प्रतिकूल चारों याचियों को बेड़ियों में रखा और जबकि वह केवल विचाराधीन बन्दी थे क्यों उनसे काम लिया। हम अधीक्षक को निदेश देते हैं कि तुरन्त चारों याचियों के पैरों की बेड़ियों को खोल दें और जब

तक वे लोग केवल विचाराधीन बन्दी हैं उनसे काम लेने से प्रतिविरत (desist) रहें। हम यह भी निदेश देते हैं कि किसी सिद्धदोष अथवा विचाराधीन बन्दी को सुनीत बन्दी के मामले के निर्णय के अनुपात की अनुज्ञता के अतिरिक्त बेड़ियाँ लगाकर न रखा जाए।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि जब एक बार मामला सेशन सुपुर्द हो जाता है तब जेल में परिरुद्ध बन्दियों को राज्य प्राधिकारियों द्वारा विचाराधीन बन्दी नहीं माना जाता है और यही कारण है कि सम्भवतः हुसैन आरा खातून वाले मामले में राज्य सरकार द्वारा प्रेषित विचाराधीन बन्दियों की सूची में चारों याचियों के नाम नहीं आए थे। अतएव हम चाहेंगे कि राज्य सरकार एक सूची दाखिल करके हमें इस बारे में सूचित करे कि बिहार राज्य में कितने बन्दी हैं जो कि अपने मामले सेशन सुपुर्द होने के बाद से 12 मास से अधिक से जेल में हैं। हम ऐसे बन्दियों के नाम, उन जेलों के नाम जिनमें वे दाखिल हैं, उन सेशन न्यायालयों के नाम जिनमें उनके मामले लम्बित हैं, वे तारीखें जिनमें उनके मामले सेशन सुपुर्द हुए थे और वे अपराध जिनसे वे लोग आरोपित हैं आदि विशिष्टियों के साथ लेना चाहेंगे। हम उच्च न्यायालय से भी यह चाहेंगे कि हमें सूचित किया जाये कि बिहार राज्य में कितने मामले सेशन न्यायालयों में लम्बित हैं, जिनकी सुपुर्दगी सेशन न्यायालय को 12 मास से अधिक पहले हो गई थी और क्या कारण है कि यह सेशन मामले अभी तक नहीं निस्तारित किए गए हैं। हम राज्य सरकार को यह भी निदेश देते हैं कि वह ऐसे विचाराधीन बन्दियों की सूची दाखिल करे जो 18 मास से अधिक से जेल में हैं और जिनके विचारण मजिस्ट्रेट न्यायालयों में अभी तक प्रारम्भ नहीं हुए हैं। राज्य सरकार द्वारा विचाराधीन बन्दियों के बारे में विस्तृत विशिष्टियाँ इस सूची में दी जा सकती हैं।

हम बिहार राज्य को नोटिस जारी करते हैं और निदेश देते हैं कि रिट याचिका 6 जनवरी, 1981 को सुनवाई के लिए बोर्ड पर लगाई जाए।

तदनुसार आदेशित।

AIR 1982 SC 1167

काद्रा पहाड़िया

बनाम

बिहार राज्य

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और बी० बी इराडी

रिट याचिका संख्या 5943 वर्ष 1980, निर्णीत – 6.5.1981

काद्रा पहाड़िया और अन्य .... याची

बनाम

बिहार राज्य .... प्रत्यर्थी

भारत का संविधान, अनुच्छेद 21 और 32–शीघ्र विचारण का अधिकार ऐसे अधिकार से वंचित होने (denial) की दशा में उपचार।

शीघ्र विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित (enshrined) जीवन व वैयक्तिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति में अन्तर्निहित एक मूल अधिकार है। कोई अभियुक्त, जिसको शीघ्र विचारण के इस अधिकार से वंचित किया गया है हकदार है कि वह ऐसे अधिकार को प्रवर्तित (enforce) कराने के उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय की शरण ले और उच्चतम न्यायालय अपने संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में राज्य सरकारों और अन्य समुचित प्राधिकारियों को आवश्यक निदेश देने की शक्ति रखता है जिससे कि अभियुक्त को यह अधिकार प्राप्त हो।

निर्दिष्ट निर्णय	कालानुक्रम पैरा
ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1360 :	पैरा 1 व 2

हुसैन आरा खातून – बनाम –सचिव बिहार राज्य

आदेश :–

यह रिट याचिका आज हमारे समक्ष निदेशों के लिए आई है,

क्योंकि बिहार राज्य में बड़ी संख्या में बन्दी है जो कि अपने मामले सेशन न्यायालय के सुपुर्द हो जाने के बाद से 12 मास से भी अधिक से जेल में है और ऐसे भी बन्दी बड़ी संख्या में है जो कि 18 मास से अधिक से मजिस्ट्रेट न्यायालयों में, बिना किसी जाँच या विचारण प्रारम्भ हुए जेल में है। हमें जानकर प्रसन्नता हुई है कि उन याचियों जिनके मामले इस याचिका में वर्णित है, वे विचारण, जिससे उनको 8 वर्ष की अवधि तक वंचित रखा गया था, के पश्चात दोषमुक्त कर दिये गये है। उनकी दोषमुक्ति विशाल मात्रा में की गई दुर्दशा और कष्ट को प्रकट करती है जो कि, अन्त में निर्दोष पाये गये इन चार किशोर बालकों ने कारागार में 8 वर्ष की अवधि में बिना किसी देख-भाल करने वाले या उनके हितों की देख-रेख करने वाले के, भोगे होंगे। हम निःसन्देह डाक्टर वसुधा के आभारी है कि उन्होंने हमारा ध्यान इन चारों याचियों के अभागे मामले की ओर आकृष्ट किया है। याचियों द्वारा मांगे गये तुरन्त अनुतोष के प्राप्त होने और उनके दोषमुक्त होने के पश्चात अब सामान्यतः हमने इस विषय में आगे कार्यवाही नहीं की होती परन्तु जो विवेचन बिहार राज्य व उच्च न्यायालय द्वारा हमारे सामने रखे गये है, वे जहाँ तक बिहार राज्य के न्याय प्रशासन का सम्बन्ध है, कार्यकलाप की एक भयावह स्थिति प्रकट करते है। हमें बिहार राज्य की न्याय प्रणाली में व्याप्त अत्यन्त चिन्ताजनक स्थिति के बारे में मनुक्ति करने का अवसर मिला था जब हमने हुसैन आरा खातून वाले मामले (ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1360) में पिछले वर्ष अन्तरिम आदेश किए थे, परन्तु हमारे द्वारा की गई समुक्तियों के बाद भी कोई सुधार हुआ प्रतीत नहीं होता है। स्थिति अत्यन्त दुःखद बनी हुई है और अभी भी बिना विचारण प्रारम्भ हुए बड़ी संख्या में बन्दी जेल में सड़ रहे है। जो आँकड़े बिहार राज्य व उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए है वे किसी भी न्यायाधीश यहाँ तक कि इस विषय में इस देश के किसी भी नागरिक के अन्तःकरण को झकझोर देने के लिए पर्याप्त है, क्योंकि हम पाते है कि 31 दिसम्बर, 1980 को बिहार राज्य के विभिन्न सेशन न्यायालयों में 18133 ऐसे सेशन मामले लम्बित है जिनकी सुपुर्दगी 12 मास से अधिक पहले हो गई थी और यह सेशन विचारण अभी तक प्रारम्भ नहीं हुये है। हम यहाँ पर उन बन्दियों की संख्या वर्णित नहीं कर रहे है जो कि बिहार राज्य के विभिन्न मजिस्ट्रेट

न्यायालयों में अपनी जाँच या विचारण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्योंकि सूची बहुत लम्बी है और संख्या बहुत विशाल है। हम नहीं समझ पाते हैं कि क्यों सम्बद्ध प्राधिकारी, चाहे वह राज्य सरकार हो या उच्च न्यायालय; कार्यकलाप की इस अत्यन्त असंतोषजनक स्थिति के उपचार के प्रयोजन के लिये आवश्यक कदम नहीं उठा रहे हैं। हमने याचियों की ओर से उपस्थित हो रहे विद्वान अधिवक्ता श्री मुद्गल से एक सूची बनाने को कहा था जिसमें उन बन्दियों की विशिष्टतायें दी गयी हों जिनके मामले 31 दिसम्बर, 1976 के पहले सेशन न्यायालय को सुपुर्द किये गये थे, और जिनका विचारण अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है। श्री मुद्गल ने ऐसी सूची उन अभिलेखों से बनाई है जो राज्य सरकार और उच्च न्यायालय ने हमको दिए थे, और इस सूची में हम पाते हैं कि 313 बन्दी विचारण की प्रतीक्षा में जेल में सड़ रहे हैं जब कि उनके मामले 31 दिसम्बर, 1976 के पहले सेशन न्यायालय को सुपुर्द किये जा चुके हैं, इस सूची में बड़ी संख्या में ऐसे बन्दी भी सम्मिलित हैं, जिनके मामले यहाँ तक कि 31 दिसम्बर, 1974 से पहले सेशन सुपुर्द किए जा चुके हैं। यह हमारे मस्तिष्क के लिये अबोधगम्य है कि कैसे बिहार राज्य में सेशन न्यायालयों में सेशन मामले सुपुर्दगी के बाद लगभग 5–7 वर्ष तक लम्बित रह सकते हैं। श्री मुद्गल ने न्यायालय के समक्ष अभिलेखों से एक और सूची बनाई है जिसमें उन बन्दियों के ब्यौरे दिये गये हैं, जो कि 31 दिसम्बर, 1976 से भी पहले से सेशन सुपुर्दगी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसे बन्दियों की संख्या 99 है और उनमें से कुछ सेशन सुपुर्दगी की प्रतीक्षा 31 दिसम्बर, 1974 से भी पहले से कर रहे हैं। यह सूची स्पष्टतया प्रकट करती है कि यहाँ तक की सुपुर्दगी की जाँच कार्यवाईयाँ इन बन्दियों के मामले में लगभग 5–7 वर्ष से नहीं की गई है। सेशन सुपुर्दगी के पूर्व ही ये लोग इतने लम्बे समय से जेल में हैं; यह सोचकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि इनको सेशन सुपुर्दगी के पश्चात्, विचारण प्रारम्भ होने व समाप्त होने के पूर्व कितना अधिक और जेल में रहना होगा। यह सुस्पष्ट है कि कार्य कलाप की इस दुःखद स्थिति को ठीक करने के लिये कुछ सशक्त कदम उठाने आवश्यक हैं। अतएव हम सेशन न्यायालयों जिनके समक्ष यह मामले, जिनकी सुपुर्दगी 31 दिसम्बर, 1976 के पूर्व की गई थी और लम्बित विचारण हैं, को यह निदेश देते हैं कि वे न्यायालय शीघ्रतम उपलब्ध

तारीख पर इन मामलों को विचारण के लिये लेकर इनके विचारण की कार्यवाही दिन-प्रति-दिन करें और यथासम्भव शीघ्रता के साथ और जो किसी भी अवस्था में आज से 6 माह के भीतर ही निपटावें। अभियोजन द्वारा जो कोई भी कदम इन मामलों के दिन-प्रति-दिन विचारण के प्रयोजन से उठाने आवश्यक है उठाये जायेंगे और इन बन्दियों का विचारण ऐसे किसी आधार पर विलम्ब नहीं किया जायेगा। यदि इन बन्दियों में से कोई न्यायालय में अप्रतिनिधित है तो उसको सूचना दी जायेगी कि वह अपनी प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिये कानूनी सहायता का हकदार है और उसको राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध कराया जावेगा, जिसके लिये राज्य न्यायालय को निधि देगा। जहाँ तक 31 दिसम्बर, 1976 के पहले से सेशन सुपुर्दगी की प्रतीक्षा कर रहे बन्दियों का सम्बन्ध है, मजिस्ट्रेट जिनके समक्ष उनके मामले लम्बित है तुरन्त उनके विरुद्ध विधि अनुसार जांच की कार्यवाही करेंगे और आज से 3 मास के भीतर पूरी करेंगे। इन बन्दियों को जो अपनी पसन्द के वकील द्वारा प्रतिनिधित नहीं है को कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जायेगी और राज्य मजिस्ट्रेट न्यायालयों को इस प्रयोजन के लिये आवश्यक निधि उपलब्ध कराएगा।

2. हम यह पहले ही हुसैन आरा खातून वाले मामले (ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1360) में अभिनिर्धारित कर चुके है कि शीघ्र विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता की प्रत्याभूति में अन्तर्निहित एक मूल अधिकार है और कोई अभियुक्त जिसको शीघ्र विचारण के इस अधिकार से वंचित किया गया है, हकदार है कि वह ऐसे अधिकार को प्रवर्तित करने के उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय की शरण ले और उच्चतम न्यायालय अपने संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में राज्य सरकारों और अन्य समुचित प्राधिकारियों को आवश्यक निदेश देने की शक्ति रखता है जिससे कि अभियुक्त को यह अधिकार प्राप्त हो। अतएव हम उच्च न्यायालय से यह अनुरोध करेंगे कि इस शक्ति के प्रयोग के लिये हमें समर्थ बनाने और इस मूल अधिकार को बिहार राज्य के बन्दियों के लिये अर्थवान बनाने के लिये हमें सूचित करें कि बिहार राज्य के प्रत्येक जिले में कितने सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश व सहायक सेशन न्यायाधीश है और उनमें से प्रत्येक के समक्ष लम्बित मामलों की वर्षानुसार संख्या क्या है।

हम उच्च न्यायालय से यह भी चाहेंगे कि वह हमें सूचित करें कि सेशन न्यायाधीशों, अपर सेशन न्यायाधीशों व सहायक सेशन न्यायाधीशों द्वारा कार्य निस्तारण के क्या मानक उन्होंने निश्चित किए हैं और क्या सेशन न्यायाधीशों, अपर सेशन न्यायाधीशों और सहायक सेशन न्यायाधीशों का कार्य निस्तारण उच्च न्यायालय द्वारा नियत मानकों के अनुरूप है और उन मानकों के अनुरूप कार्य निस्तारण सुनिश्चित करने के लिये कोई कदम उच्च न्यायालय द्वारा उठाये जा रहे हैं तो वे क्या हैं? उच्च न्यायालय इस न्यायालय को यह सूचना भी देगा कि क्या सेशन न्यायाधीशों, अपर सेशन न्यायाधीशों, सहायक सेशन न्यायाधीशों के समक्ष लम्बित पत्रावलियों और उच्च न्यायालय के द्वारा निश्चित कार्य निस्तारण के मानकों को विचार में रखते हुए किसी जिले में अतिरिक्त न्यायालयों की आवश्यकता है, और यदि ऐसी आवश्यकता है तो क्या उच्च न्यायालय ने ऐसे अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना के लिए कदम उठायें हैं। यदि अभी तक ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया है तो उच्च न्यायालय तुरन्त राज्य सरकार को पत्र सम्बोधित करके अतिरिक्त न्यायालयों के सृजन की आवश्यकता पर बल देते हुए, राज्य सरकार से ऐसे न्यायालयों की स्थापना करने और ऐसे न्यायालय का संचालन करने हेतु न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने का अनुरोध करें। और हमें यकीन है कि राज्य सरकार इस प्रयोजन के लिए आवश्यक कदम उठायेगी। हम आशा और विश्वास करते हैं कि यह कार्य पूरा किया जायेगा और ग्रीष्म-अवकाश के पश्चात न्यायालय के पुनः खुलने पर जब यह रिट याचिका आगे सुनवाई के लिए आएगी तो उसके पूर्व इस बारे में आवश्यक कदम उठा लिये जाएंगे।

3. हम यह भी बताएंगे कि राज्य सरकार के द्वारा जो विवरण बन्दियों के नाम देते हुए जो कि सेशन न्यायालयों में उनके मामले सुपुर्द होने के बाद से 12 मास से अधिक से जेल में है हमें दिये हैं उनमें बड़ी संख्या में दृष्टान्त है, जहाँ कि जेल में प्रवेश की तारीख नहीं दी गई है, और इस कारण से न्यायालय के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह पता लगा सके कि वे लोग अपने मामलों की सेशन सुपुर्दगी के पहले कितने लम्बे समय से जेल में है। अतएव हम राज्य सरकार को निदेश देंगे कि वह प्रत्येक जेल से उन बन्दियों, जिनका नाम इस सूची में दिया गया है, की प्रवेश की

तारीख अभिनिश्चित करें और हमें सूचित करें कि उनका जेल में कब प्रवेश हुआ था। हम यह भी बतायेंगे कि जहाँ तक उन बन्दियों, जो कि 31 दिसम्बर, 1976 से पहले से सेशन सुपुर्दगी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, और जिनकी विशिष्टियाँ श्री मुद्गल द्वारा प्रस्तुत सूची में दी गई है, का सम्बन्ध है, मजिस्ट्रेट विचार कर सकते हैं कि क्या उनको समुचित मामले में जमानत पर नहीं छोड़ा जाना चाहिये। मजिस्ट्रेट द्वारा यह विचार तब किया जा सकता है जब ये बन्दी उनके समक्ष प्रतिप्रेषण के प्रयोजन से अथवा जाँच करने के समय पेश किये जाते हैं। इसी प्रकार यदि और भी विचाराधीन बन्दी हैं जो सुपुर्दगी की प्रतीक्षा कर रहे हैं अथवा जिनके विरुद्ध मजिस्ट्रेट न्यायालयों में विचारण प्रारम्भ नहीं हुआ है, उनको भी जमानत देने के प्रश्न पर मजिस्ट्रेट स्वतः (suomoto) विचार कर सकते हैं और यदि वे इस न्यायालय द्वारा हुसैन आरा खातून वाले मामले में अधिकथित सिद्धान्तों की अनुरूपता में जमानत पर छोड़े जाने योग्य है, तो उनको छोड़ा जा सकता है। मजिस्ट्रेट इस बारे में उस समय कार्यवाही कर सकते हैं जब ऐसे बन्दी अगली बार उनके समक्ष पेश किये जावें। हम आशा और विश्वास करते हैं कि हुसैन आरा खातून वाले मामले में हमारे द्वारा दिये गये विभिन्न निर्णयों में अधिकथित सिद्धान्तों और दिये गये निदेशों का नियमनिष्ठता (strictly) और कर्त्तव्य-निष्ठता (scrupulously) से बिहार राज्य के मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायाधीशों द्वारा पालन किया जायेगा। हम यह सुझाव देंगे कि इन निर्णयों की प्रतियाँ उच्च न्यायालय द्वारा बिहार राज्य के मजिस्ट्रेटों व सेशन न्यायाधीशों को इस निदेश के साथ दी जावें कि इन निर्णयों में जो विधि अधिकथित की गई है, मजिस्ट्रेटों व सेशन न्यायाधीशों के द्वारा उनका अनुसरण किया जायेगा।

4. रिट याचिका अब 3-8-81 तक के लिये स्थगित की जायेगी।

—तदनुसार आदेशित।

(1981) 4 उम० नि० प० 956 :
(1981) 1 SCC. 627 :
AIR 1981 SC 928 :

खत्री और अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(Khatri and Others

v.

State of Bihar and Others)

(19 दिसम्बर, 1980

और

14 जनवरी, 1981)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और ए० पी० सेन)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19, 21 और 39-ए—पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए विचाराधीन बन्दियों को अंधा बनाया जाना—राज्य द्वारा ऐसे अंधे बनाए गए विचाराधीन बन्दियों की चिकित्सा को सुनिश्चित बनाए जाने के लिए उन्हें नई दिल्ली भेजे जाने का आदेश दिया जाना—यह आदेश उन बन्दियों के विषय में होना जिन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया था—राज्य द्वारा यह निदेश भी दिया जाना कि प्रत्येक प्रतिप्रेषण के समय ऐसे विचाराधीन बन्दियों को विधिक अभ्यावेदन करने की सुविधा प्रदान की जाए—सम्बद्ध जिला न्यायाधीश तथा प्रतिप्रेषण मजिस्ट्रेट को भी यह निदेश दिया जाना कि वे जानकारी दें कि वे निःशुल्क विधिक सहायता के हकदार हैं—चिकित्सा के लिए भेजे गए बन्दियों को नकद राशि सम्बन्धी संदाय के लिए आदेश।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—निर्धन अथवा कृपण अभियुक्त व्यक्तियों को जो कि वकील की सहायता प्राप्त करने में असमर्थ हों निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार होना—राज्य सांविधानिक दृष्टि से इस हेतु आबद्ध है कि वह ऐसी सहायता न केवल विचारण के प्रक्रम पर प्रदान करे बल्कि उस समय भी जब बन्दियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है अथवा उन्हें कारागार में प्रतिप्रेषित किया जाता है—ऐसे अधिकार से इस आधार

पर वित्तीय निर्बन्धनों अथवा प्रशासनिक असमर्थता से प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता और न ही इस आधार पर कि अभियुक्त ने इसकी मांग नहीं की थी—मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे अधिकार के बारे में अभियुक्तों को सूचित करें।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 57—गिरफ्तारी के 24 घण्टे के भीतर गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने सम्बन्धी अपेक्षा का ध्यानपूर्वक अनुपालन किया जाना चाहिए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 167—विचारणाधीन बन्दी को क्षति पहुंचाना—क्षतियों के प्रति निर्देश करते हुए पुलिस भारसाधक अधिकारी द्वारा अन्वेषण रिपोर्ट भेजी जाना—न्यायिक मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह इस विषय की खोज करे और यह उचित नहीं होगा कि वह यंत्रवत् प्रतिप्रेषण के आदेश पर हस्ताक्षर कर दे, भले ही क्षतिग्रस्त अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष स्वयं पेश नहीं किया जाता है।

बिहार राज्य की विभिन्न जेलों में कुछ बंदियों को अंधा बना दिया गया। इन बन्दियों ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल की। ये समस्त बन्दी विभिन्न अपराधों के लिए विचारणाधीन थे। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले के विभिन्न पहलुओं पर सुनवाई की और अंधे बनाए गए बन्दियों के पक्ष में बिहार राज्य को कुछ निदेश दिए। उन निदेशों के पालन में किंचित् विलम्ब हुआ, अतः अंधे बनाए गए बन्दियों को रखने, उनका उपचार करने और उनका खर्चा वहन करने से सम्बन्धित समस्या पर दोबारा विचार किया गया। बिहार की जेलों में कुल 18 बन्दियों को अंधा बनाया गया था। इनमें से पन्द्रह बन्दियों की चिकित्सा राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान, नई दिल्ली में चल रही थी, जहां से उन्हें छुट्टी दे दी गई। उन्हें कुछ समय के लिए नेत्रहीन सहायता संगठन द्वारा चलाए जा रहे लाल बहादुर शास्त्री मार्ग स्थित आश्रम में रखा गया था, किन्तु उक्त संगठन ने उन्हें अपने पास रखने में अनिच्छा प्रकट की जिससे उन्हें अस्थायी रूप से डाइरेक्ट फर्स्ट हास्टल में रखा गया है। अब प्रश्न उनके भरण-पोषण और हास्टल के खर्चों के वहन का है कि इसका संदाय कौन करेगा ? और इन अंधे बनाए गए बन्दियों के भविष्य का और उनके आश्रितों का क्या होगा ? उनके द्वारा किए गए अपराधों के अन्वेषण और विचारण की प्रक्रिया क्या होगी ? इन सभी प्रश्नों पर अपनी राय देते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा,

अभिनिर्धारित—इस न्यायालय ने हुसैनआरा खातून वाले मामले में जिसका विनिश्चय कुछ पूर्व 9 मार्च, 1979 को दिया गया था, इस बात के प्रति संकेत किया है कि मुफ्त विधिक सेवाओं का अधिकार किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए युक्तियुक्त, ऋजु और उचित प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है और अनुच्छेद 21 में दी गई प्रतिभूति में इसे अन्तर्विष्ट अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को विधिवेत्ता के उपलब्ध करने के लिए सांविधानिक समादेश के अधीन है, यदि मामले की परिस्थितियां और न्याय की आवश्यकताएं ऐसी अपेक्षा करें, परन्तु निश्चय ही अभियुक्त व्यक्ति ऐसे विधिवेत्ता के उपबन्ध के लिए कोई आक्षेप नहीं करता है। यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है कि यद्यपि इस न्यायालय ने विधिक सहायता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा किसी अभियुक्त व्यक्ति के मूल अधिकार के रूप में घोषित किया है फिर भी देश में अधिकतर राज्यों ने इस विनिश्चय की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है और किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए मुफ्त विधिक सेवाओं का उपबन्ध नहीं किया है। अनुच्छेद 141 में इस सांविधानिक घोषणा के बावजूद कि इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र पर आबद्ध होगी, अनेक राज्यों द्वारा देश के इस उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को नजरअन्दाज करने के लिए खेद प्रकट करते हैं। राज्य की ओर से इस बारे में सहमति हो गई है कि इस न्यायालय के विनिश्चय की दृष्टि से देश के अन्दर के किसी अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने के लिए राज्य आबद्ध था किन्तु उसने यह सुझाव दिया कि राज्य को वित्तीय कठिनाइयों के कारण ऐसा करने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। हम बिहार राज्य को यह बता सकते हैं कि वह वित्तीय अथवा प्रशासनिक असमर्थता का अभिवचन करके किसी गरीब अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से बच नहीं सकता है। राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को मुफ्त विधिक सहायता उपलब्ध करने के लिए जो गरीबी के कारण विधिक सेवाएं प्राप्त करने के अयोग्य है, और जो कुछ इस प्रयोजन के लिए आवश्यक हो, वह राज्य द्वारा किया जाता है। राज्य की अपनी वित्तीय कठिनाइयां हो सकती हैं और व्यय में उसकी अपनी पूर्विकताएं हो सकती हैं। किन्तु रैम बनाम मैल्काम में न्यायालय द्वारा जैसा संकेत किया गया है "विधि किसी सरकार को अपने नागरिकों को गरीबी का अभिवाक् करके सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने की अनुमति नहीं देती है" और जैक्सन बनाम बिशप में न्यायाधीश ब्लैकमन के शब्द इस प्रकार हैं—

"मानवता के सिद्धान्त और सांविधानिक अपेक्षाओं को आज डालर के मूल्य से मापा नहीं जा सकता ।" किसी गरीब अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने की सांविधानिक बाध्यता केवल उस समय उत्पन्न नहीं होती है जब विचारण प्रारम्भ होता है अपितु उस समय भी जब अभियुक्त को पहली बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है । यह उस समय प्रारम्भिक है जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि उस स्तर पर उसे जमानत के लिए आवेदन करने का तथा अपनी निर्मुक्ति अभिप्राप्त करने का साथ ही पुलिस अथवा जेल अभिरक्षा में रिमाण्ड का विरोध करने का भी प्रथम अवसर मिलता है । यह वह प्रक्रम है जिस पर अभियुक्त व्यक्ति को सक्षम विधिक सलाह तथा प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है और किसी भी प्रक्रिया को युक्तियुक्त ऋजु और न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है जो उस स्तर पर उसे विधिक सलाह और प्रतिनिधित्व से वंचित करे । राज्य किसी गरीब अभियुक्त को न केवल विचारण के प्रक्रम पर अपितु उस प्रक्रम पर भी जब उसे प्रथम बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, और जब उसे समय-समय पर रिमाण्ड किया जाता है, मुफ्त विधिक सलाह उपलब्ध करने की सांविधानिक बाध्यता के अधीन है । (पैरा 4)

किन्तु मुफ्त विधिक सलाह का यह अधिकार भी किसी निर्धन अभियुक्त के लिए काल्पनिक हो जाएगा जब तक कि वह मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश जिसके समक्ष उसे पेश किया जाता है, ऐसे अधिकार से उसे सूचित नहीं करता है । यह सामान्य ज्ञान है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 70 प्रतिशत लोग निरक्षर होते हैं और इससे भी अधिक प्रतिशत में विधि द्वारा उन्हें प्रदत्त अधिकार से वे अवगत नहीं होते हैं । विधिक जानकारी की इतनी कमी है कि इस देश में विधिक सहायता के प्रोग्राम की सदैव यह एक मुख्य बात समझी गई है कि विधिक साक्षरता को प्रोन्नति दी जाए । विधिक सहायता का यह मजाक उड़ाना होगा यदि उसे किसी गरीब, अनभिज्ञ और निरक्षर अभियुक्त से मुफ्त विधिक सहायता की मांग पर छोड़ दिया जाए । विधिक सहायता मात्र एक कागज पर किए जाने वाला वचन रह जाएगा और उसका प्रयोजन असफल हो जाएगा । मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश जिसके समक्ष अभियुक्त उपस्थित होता है, अभियुक्त को इस बात से सूचित करने की बाध्यता के अधीन समझा जाना चाहिए कि यदि वह गरीबी अथवा दरिद्रता के कारण कोई विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है तो वह राज्य के खर्चे पर मुफ्त विधिक सेवा अभिप्राप्त करने के लिए हकदार है । दुर्भाग्यवश न्यायिक

मजिस्ट्रेट, बंदी किए गए व्यक्तियों के मामले में इस बाध्यता का निर्वहन करने में असफल हो गया था और उन्होंने मात्र यह कथन किया था कि बंदी किए गए व्यक्तियों द्वारा किसी विधिक प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की गई थी और इसलिए वह किसी को उपलब्ध नहीं की गई थी। देश में मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश प्रत्येक अभियुक्त को जो उनके समक्ष उपस्थित होता है और जिसका अपनी गरीबी अथवा दरिद्रता के कारण किसी विधिवेत्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता है, उसे इस बात से सूचित करें कि वह राज्य के खर्चे पर मुफ्त विधिक सेवाओं के लिए हकदार है। जब तक कि वह राज्य द्वारा उपलब्ध मुफ्त विधिक सेवाओं का फायदा उठाने के लिए इच्छुक न हो तब तक उसे राज्य के खर्चे पर विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध होना चाहिए। देश के प्रत्येक राज्य से किसी अभियुक्त को जो गरीबी, दरिद्रता अथवा जानकारी न होने की स्थिति के कारण किसी विधिवेत्ता की सहायता लेने में असमर्थ है, मुफ्त विधिक सेवाएं प्रदान करने का उपबन्ध करने के लिए देश के प्रत्येक अन्य राज्य से अपेक्षा है। एकमात्र अर्हता यह होगी कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित अपराध ऐसा है कि दोषसिद्ध किए जाने पर उसका परिणाम कारावास का दण्डादेश होगा और ऐसी प्रकृति का है कि मामले की परिस्थितियां और सामाजिक न्याय की आवश्यकताएं यह अपेक्षा करती है कि उसे मुफ्त विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। ऐसे अपराध भी हो सकते है जैसे कि आर्थिक अपराध अथवा वेश्यावृत्ति का निषेध करने वाली विधि या बालकों का शोषण अथवा इसी प्रकार के अपराध, जहां सामाजिक न्याय यह अपेक्षा करेगा कि मुफ्त विधिक सेवाओं के राज्य द्वारा उपलब्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। (पैरा 5)

अभिलेखों से दो अन्य अनियमितताएं सामने आती है जिनके प्रति निर्देश करना आवश्यक है। प्रथम स्थान पर कुछ मामलों में अभियुक्त व्यक्ति जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 22 में अपेक्षित है, अपनी गिरफ्तारी के 24 घण्टों के भीतर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं हुए है। इस अनियमितता के सम्बन्ध में कोई निश्चित राय अभिव्यक्त करना उचित नहीं होगा जो प्रथमदृष्ट्या, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ मामलों में हुई है। किन्तु राज्य पर तथा उसके पुलिस प्राधिकारियों पर इस बात को देखने के लिए बलपूर्वक जोर दिया जाएगा कि गिरफ्तारी के 24 घण्टों के भीतर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्तियों को पेश करने की सांविधानिक और विधिक अपेक्षा का पूरी तरह से पालन होना चाहिए। न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेखों से हमारे समक्ष पेश की गई विशिष्टियों से यह भी स्पष्ट है कि कुछ

मामलों में, विशेषकर श्री पटेल साहू, रमण मिश्र, शालिग्राम सिंह और कुछ अन्य अभियुक्त व्यक्तियों से सम्बन्धित है, उन्हें प्रथम बार पेश किए जाने के पश्चात् बाद में न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था और वे न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किसी रिमाण्ड आदेशों के पारित किए बिना जेल में ही रहे थे। यह स्पष्ट रूप से विधि के विरुद्ध है। यह समझना कठिन है कि राज्य ने किस प्रकार इन अभियुक्त व्यक्तियों को किसी रिमाण्ड आदेश के बिना जेल में निरुद्ध रखा था। हम आशा करते हैं और विश्वास करते हैं कि राज्य सरकार इस बात की जांच करेगी कि इस अनियमितता की इजाजत क्यों दी गई थी और यह देखेगी कि भविष्य में विधि के प्रशासकों द्वारा विधि का कोई ऐसा उल्लंघन किए जाने की अनुमति न दी जाए। रिमाण्ड के बिना निरोध का प्रतिषेध करने वाला उपबन्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपबन्ध है जो मजिस्ट्रेट को पुलिस अन्वेषण पर रोक-टोक लगाने के लिए समर्थ करता है और यह इसलिए भी आवश्यक है कि मजिस्ट्रेटों को इस अपेक्षा को प्रभावी करने का प्रयत्न करना चाहिए और जहां उसकी अवज्ञा की गई पाई जाती है वहां इसका भार पूर्ण रूप से पुलिस पर होता है। (पैरा 6).

अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि एक अंधे किए गए बन्दी ने जिसका नाम उमेश यादव था, जिला और सेशन न्यायाधीश, भागलपुर को 30 जुलाई, 1980 को यह परिवाद करते हुए एक पिटीशन भेजा था कि उसे पुलिस के जिला अधीक्षक, श्री वी० के० शर्मा द्वारा अन्धा किया गया था और चूंकि उसके पास इस पुलिस अधिकारी को अभियोजित करने के लिए कोई धन नहीं था, इसलिए उसे सरकार के खर्चे पर विधिवेत्ता उपलब्ध होना चाहिए जिससे कि वह पुलिस के अत्याचारों को न्यायालय के समक्ष लाने और न्याय मांगने के समर्थ हो सके। 10 अन्य अन्धे बन्दियों ने भी इसी प्रकार के पिटीशन किए थे और ये समस्त पिटीशन जिला और सेशन न्यायाधीश को 30 जुलाई को भेज दिए गए थे। जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपने तारीख 15 अगस्त, 1980 वाले पत्र द्वारा भागलपुर केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक को संबोधित करते हुए यह कथन किया था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन अन्धे किए गए बन्दियों को जिन्होंने उसे पिटीशन किया है, विधिक सहायता दी जा सके और यह कि उसने उनके पिटीशनों को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास आवश्यक कार्रवाई किए जाने को भेजा था। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने भी मामले में कुछ करने के लिए अपनी असमर्थता अभिव्यक्त की थी। यह प्रतीत होता है कि भागलपुर के केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक ने भी इन अन्धे किए गए व्यक्तियों के पिटीशन पटना कारागार के

महानिरीक्षक को 30 जुलाई, 1980 को इस निवेदन के साथ भेजे थे कि इस मामले पर राज्य सरकार का ध्यान दिलाया जाना चाहिए। कारागार के महानिरीक्षक ने इन पिटीशनों को गृह विभाग को भेज दिया था। कारागार के महानिरीक्षक ने तीन अन्धे किए गए व्यक्तियों को 9 सितम्बर, 1980 को जब उसने बांका जेल का निरीक्षण किया था, यह भी सूचित किया था कि उन्हें पुलिस द्वारा अन्धा किया गया है और कारागार के महानिरीक्षक ने अपने निरीक्षण टिप्पण में यह मत अभिव्यक्त किया था कि मामले को सरकार के समक्ष रखना आवश्यक है जिससे कि पुलिस के अत्याचारों को रोका जा सके। इन तथ्यों से बहुत ही खराब हालत सामने आती है। 30 जुलाई, 1980 के पश्चात् कुछ दिन के भीतर गृह मंत्रालय को कारागारों के महानिरीक्षक से यह जानकारी मिली थी कि अन्धे किए गए बन्दियों के अनुसार जिन्होंने पिटीशन भेजे थे, उन्हें पुलिस द्वारा अन्धा किया गया था और पुलिस के महानिरीक्षक के निरीक्षण टिप्पण से यह उपधारणा करना युक्तियुक्त प्रतीत होगा कि उसे मामले को सरकार के समक्ष लाना चाहिए था। कारागारों के महानिरीक्षक से यह जानना चाहिए कि वह कौन-सा व्यक्ति था अथवा राज्य सरकार का वह कौन-सा विभाग था जिसके समक्ष वह इस मामले को लाया था और कारागारों के महानिरीक्षक द्वारा भेजे गए अन्धे बन्दियों के पिटीशनों के प्राप्त होने पर राज्य सरकार ने कौन-से कदम उठाए थे। साथ ही साथ, कारागारों के महानिरीक्षक द्वारा मामले को उसके विचार के लिए लाए जाने पर क्या किया गया था, जैसा कि अपने निरीक्षण टिप्पण में उसने अपना मत अभिव्यक्त किया है। (पैरा 8)

अवलम्बित निर्णय

पैरा

[1979] [1979] 3 एस० सी० आर० 532 :
हुसैनआरा खातून बनाम गृह सचिव
(Hussainara Khatoon v. Home Secretary); 4

377 एफ० सप्लीमेंट 995 :
रेम बनाम मैल्कोम
(Rhem v. Malcolm); 4

404 एफ० सप्लीमेंट सेकेण्ड 571 :
जैक्सन बनाम बिशप
(Jackson v. Bishop). 4

मूल अधिकारिता : 1980 का रिट पिटीशन सं० 5670.

(संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन)

पिटीशनर की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी और कुमारी रेखा तिवारी
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री के० जी० भगत और डी० गोवर्धन

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती—

यह मामला बिहार राज्य पर नोटिस के तामील किए जाने के पश्चात् हमारे समक्ष आया है। जब 2 दिसम्बर, 1980 को हमने इस मामले पर सुनवाई आरम्भ की तो हमने इस बात पर अपनी नाराजगी अभिव्यक्त की कि बिहार राज्य नोटिस के उत्तर में उपस्थित नहीं हुआ था किन्तु यह नाराजगी हमारे द्वारा इस उपधारणा पर अभिव्यक्त की गई थी कि नोटिस की तामील बिहार राज्य पर की गई थी। किन्तु, राज्य सरकार की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री के० जी० भगत द्वारा हमें सूचित किया गया है कि रिट पिटीशन की सूचना की तामील राज्य सरकार पर 6 दिसम्बर, 1980 को की गई थी और यही कारण है कि राज्य सरकार के लिए 2 दिसम्बर, 1980 को हमारे समक्ष उपस्थित होना सम्भव नहीं हो पाया था। हम श्री के० जी० भगत द्वारा दिए गए इस स्पष्टीकरण को स्वीकार करते हैं और बिहार राज्य को 2 दिसम्बर, 1980 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित न होने के लिए भारमुक्त करते हैं।

2. राज्य ने हमारे समक्ष राज्य सरकार के गृह (पुलिस) विभाग के अवर सचिव, तारकेश्वर प्रसाद द्वारा शपथित प्रतिशपथ-पत्र पेश किया है जिसमें तारीख 2 दिसम्बर, 1980 को दिए गए हमारे आदेश द्वारा अपेक्षित विभिन्न विशिष्टियां पेश की गई हैं। हमारे समक्ष राज्य सरकार की ओर से भागलपुर केन्द्रीय कारागार के सहायक जेलर, जितेन्द्र नारायण सिंह द्वारा फाइल किया गया प्रति शपथ-पत्र भी है और इस शपथ-पत्र में हमारे द्वारा अपेक्षित कतिपय अन्य विशिष्टियां दी गई हैं। राज्य ने इन विशिष्टियों के अतिरिक्त अन्धे किए गए बन्दियों के सम्बन्ध में विभिन्न विशिष्टियां देते हुए कथन फाइल किए हैं जो उनके मामलों के सम्बन्ध में विचार करने वाले न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेखों से लिए गए हैं। जिला और सेशन न्यायाधीश ने भी इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (न्यायिक) को यह कथन करते हुए

एक पत्र लिखा है कि उसके पत्र में दिए गए कारणों से भागलपुर केन्द्रीय जेल का कोई निरीक्षण वर्ष 1980 में जिला और सेशन न्यायाधीश द्वारा नहीं किया गया था। रजिस्ट्रार (न्यायिक) ने अन्धे किए गए बन्दियों और भागलपुर सैन्ट्रल जेल के पूर्ववर्ती अधीक्षक, बी० एन० दास के कथनों की प्रतियां भी पेश की हैं जो उसके द्वारा इस न्यायालय के 1 दिसम्बर, 1980 के आदेश के अनुसरण में अभिलिखित किए गए थे। इन दस्तावेजों में अन्तर्विष्ट विशिष्टियों के आधार पर, हमारे समक्ष पूर्ण और विस्तृत तर्क दिए गए हैं परन्तु इस प्रक्रम पर हम प्रत्येक अन्धे किए गए बन्दी के सम्बन्ध में तर्क देने की प्रस्थापना करते हैं और हम प्रत्येक विशिष्ट अन्धे किए गए बन्दी के सम्बन्ध में दिए गए तर्कों को छोड़कर जिन पर बाद में किसी प्रक्रम पर विचार किया जाएगा जब रिट पिटीशन फिर से सुनवाई के लिए आयेगा, अपने समक्ष पेश की गई विशेष बातों की जांच करेंगे।

2क. इससे पूर्व कि हम पक्षकारों की ओर से दी गई उन मुख्य बातों पर विचार करें जिन पर हमारे समक्ष जोर दिया गया है, हमें एक मुख्य प्रश्न का निपटारा कर देना चाहिए जिससे अधिक कठिन समस्या पैदा होती है और उसका समाधान हमें किंचित् शीघ्रता से करना चाहिए। यह समस्या कोई विधिक समस्या नहीं है जैसी कि मानवता की है और यह इस कारण उद्भूत हुई है कि अन्धे किए गए बन्दी जिनका राजेन्द्र प्रसाद ऑफ्थैल्मिक इंस्टीट्यूट में उपचार हो रहा है, उनके वहां से उन्मुक्त किए जाने की संभावना है क्योंकि उनकी नेत्रज्योति को इतना ज्यादा नष्ट कर दिया गया है कि उसे वापस लाना किसी भी चिकित्सीय अथवा शल्य चिकित्सीय उपचार द्वारा संभव नहीं है और प्रश्न यह है कि वे कहां जा सकते हैं। अन्धे किए गए बन्दियों की ओर से श्रीमती हिंगोरानी द्वारा यह आशंका अभिव्यक्त की गई थी कि उनके लिए भागलपुर जाना सुरक्षित नहीं हो सकता, विशेषकर जब अन्धा किए जाने के अपराध में अन्वेषण अभी किया जा रहा है और इसलिए उनके लिए राज्य के खर्चे पर नई दिल्ली में रहने की कोई व्यवस्था की जानी चाहिए। हम इस बात का निश्चित रूप से कोई कथन नहीं कर सकते हैं कि श्रीमती हिंगोरानी द्वारा अभिव्यक्त की गई आशंका पूर्ण रूप से आधार रहित है और न ही हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान प्रक्रम पर यह न्यायोचित है, किन्तु हमारी यह भावना है कि कम से कम सुनवाई की अगली तारीख तक अन्धे किए गए बन्दियों को भागलपुर वापस न भेजना उचित होगा। अतएव हम यह सुझाव देंगे कि अन्धे किए गए बन्दियों को जिन्हें राजेन्द्र प्रसाद आफ्थैल्मिक इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली से उन्मुक्त किया गया है, ऐसे गृह में रखा

जाना चाहिए जो लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, नई दिल्ली में दिल्ली के नेत्रहीन अनुतोष संगम (ब्लाइंड रिलीफ एसोसिएशन ऑफ दिल्ली) द्वारा चलाया जा रहा है और बिहार राज्य को उस गृह में उनके रहने और खाने-पीने का खर्च वहन करना चाहिए। हम यह आशा और विश्वास करते हैं और वस्तुतः जोर देकर यह सुझाव देते हैं कि दिल्ली का नेत्रहीन अनुतोष संगम अपने द्वारा चलाए जाने वाले गृह में इन नेत्रहीन बन्दियों को स्वीकार करेगा और रिटीशन की अगली सुनवाई की तारीख तक, उनकी देख रेख करेगा। बिहार राज्य, धार्मिक धन के रूप में या अन्यथा रख-रखाव के लिए ऐसे गृहों में किए गए अन्धे बन्दियों के खर्चों, प्रभारों और व्ययों का संदाय करेगा जो अपेक्षित हों।

3. अन्धे किए गए बन्दियों की ओर से श्रीमती हिंगोरानी द्वारा उठाया गया दूसरा प्रश्न यह था कि क्या राज्य अन्धे किए गए बन्दियों को संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण करने के लिए प्रतिकर का संदाय करने के दायित्वाधीन है। उन्होंने यह दलील दी कि अन्धे किए गए बन्दी पुलिस अधिकारियों द्वारा जो राज्य की ओर से कार्य करने वाले सरकारी सेवक थे, अपनी आंखों की रोशनी से वंचित किए गए थे क्योंकि यह अनुच्छेद 21 के अधीन सांविधानिक अधिकार का उल्लंघन था इसलिए राज्य, अन्धे किए गए बन्दियों को प्रतिकर का संदाय करने के दायित्वाधीन है। विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार से अन्यथा उन व्यक्तियों को जिन्हें अपने जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित किया गया था, प्रतिकर का दायित्व, श्रीमती हिंगोरानी के अनुसार, अनुच्छेद 21 में अन्तर्विष्ट है। तथापि राज्य की ओर से श्री के० जी० भगत ने यह दलील दी कि अभी यह स्थापित नहीं हुआ है कि बन्दियों को पुलिस द्वारा अन्धा किया गया था और जांच की जा रही है और उसने इस बात पर भी जोर दिया कि यद्यपि अन्धा पुलिस द्वारा किया गया था और अनुच्छेद 21 में अन्तर्विष्ट सांविधानिक अधिकार का उल्लंघन किया गया था, फिर भी राज्य को उन व्यक्तियों को प्रतिकर का संदाय करने के दायित्वाधीन अभिनिर्धारित न ही किया जा सकता था। इन विरोधी तर्कों से इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त सांविधानिक महत्व का प्रश्न उठता है कि अनुच्छेद 21 में प्रत्याभूत सांविधानिक अधिकार का उल्लंघन करने के लिए किसी न्यायालय को क्या अनुतोष देना चाहिए। न्यायालय निश्चित रूप से किसी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा वैयक्तिक स्वतन्त्रता से वंचित करने से राज्य को न्यादिष्ट कर सकता है सिवाय उस दशा के जब विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ऐसा किया गया हो किन्तु यदि जीवन अथवा वैयक्तिक स्वतन्त्रता का यदि ऐसी प्रक्रिया के अनुसार

से अन्यथा उल्लंघन किया गया है तो न्यायालय उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार वंचित किया गया है, कोई अनुदान देने में असमर्थ है। न्यायालय को जीवन और वैयक्तिक स्वतन्त्रता के मूल्यवान मूल अधिकारों में से अत्यन्त मूल्यवान अधिकार की रक्षा करने के प्रयोजनार्थ नये रास्ते क्यों नहीं निकालने चाहिए और नवीन उपचार क्यों नहीं खोजना चाहिए। श्रीमती हिंगोरानी की दलील पर हमारे समक्ष ये विवाद्यक उठाए गए थे और हमारी राय में ये अत्यन्त सांविधानिक महत्व के विवाद्यक हैं जिनमें जीवन और वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार के एक नवीन विस्तार की खोज करना अन्तर्वलित है। अतएव हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले काउन्सेल को सूचित कर दिया है कि हम इन विवाद्यकों पर विस्तृत तर्कों की सुनवाई रिट पिटीशन की अगली सुनवाई में करेंगे और अनुच्छेद 21 के सांविधानिक अधिकार की ठीक-ठीक उपयोगिताओं को परिवर्तनशील सांविधानिक न्याय-शास्त्र की रोशनी में अभिकथित कर रहे हैं जो हम इस न्यायालय में प्रस्तुत कर रहे हैं।

4. इसके पश्चात् हम एक और महत्वपूर्ण विवाद्यक पर जो इस मामले में उठा है, विचार करेंगे। अन्धे किए गए बन्दियों के सम्बन्ध में विभिन्न न्यायिक मजिस्ट्रेटों द्वारा अभिलेखों में समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली विशिष्टियों से यह स्पष्ट होता है कि न तो उस समय जब अन्धे बन्दियों को पहली बार न्यायिक मजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया गया था और न ही उस समय जब रिमाण्ड आदेश पारित किए गए थे, अन्धे किए गए बन्दियों में से अधिकतर को कोई विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध था। न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेखों से यह दर्शित होता है कि अन्धे किए गए बन्दियों के लिए किसी विधिक प्रतिनिधित्व का उपबन्ध नहीं किया गया था, क्योंकि उनमें से किसी ने भी न तो इसकी मांग की थी और न ही न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उसके समक्ष पेश किए गए अन्धे बन्दियों से न तो प्रारम्भ में अथवा रिमाण्ड के समय इस बात की पूछताछ की थी कि वे राज्य के खर्चे पर कोई विधिक प्रतिनिधि चाहते हैं या नहीं। अन्धे बन्दियों को राज्य के खर्चे पर कोई विधिक प्रतिनिधित्व का उपबन्ध न करने के लिए केवल यह बहाना किया गया था कि अन्धे किए गए बन्दियों में से किसी ने इसकी मांग नहीं की थी। परिणाम यह हुआ था कि 2 या 3 अन्धे किए गए बन्दियों को छोड़कर जिन्होंने रिमाण्ड के पश्चात्वर्ती प्रक्रम में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी विधिवेत्ता का प्रबन्ध कर लिया था, अन्धे किए गए बन्दियों में से अधिकतर का प्रतिनिधित्व किसी विधिवेत्ता द्वारा नहीं किया गया था और उनमें से कुछ को छोड़कर जिनको जमानत पर निर्मुक्त कर

दिया गया था और वह भी पर्याप्त समय तक जेल में रहने के पश्चात् उनमें से बाकी लोग जेल में ही रहे थे। यह समझना कठिन है कि किस तरह से इस मामले की ऐसी स्थिति को हुसैनआरा खातून[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के बावजूद, बने रहने की अनुमति दी जा सकती है। इस न्यायालय ने हुसैनआरा खातून वाले (पूर्वोक्त) मामले में जिसका विनिश्चय कुछ पूर्व 9 मार्च, 1979 में किया गया था, इस बात के प्रति संकेत किया है कि मुफ्त विधिक सेवाओं का अधिकार किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए युक्तियुक्त, ऋजु और उचित प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है और अनुच्छेद 21 में दी गई प्रतिभूति में इसे अन्तर्विष्ट अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को विधिवेत्ता के उपलब्ध करने के लिए सांविधानिक समादेश के अधीन है, यदि मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताएं ऐसी अपेक्षा करें, परन्तु निश्चय ही अभियुक्त व्यक्ति ऐसे विधिवेत्ता के उपबन्ध के लिए कोई आक्षेप नहीं करता है। यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है कि यद्यपि इस न्यायालय ने विधिक सहायता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा किसी अभियुक्त व्यक्ति के मूल अधिकार के रूप में घोषित किया है फिर भी देश में अधिकतर राज्यों ने इस विनिश्चय की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है और किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए मुफ्त विधिक सेवाओं का उपबन्ध नहीं किया है। हम अनुच्छेद 141 में इस सांविधानिक घोषणा के बावजूद कि इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र पर आबद्ध होगी, अनेक राज्यों द्वारा देश के इस उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को नजरअन्दाज करने के लिए खेद प्रकट करते हैं। राज्य की ओर से श्री के० डी० भगत इस बात से सहमत हो गए हैं कि इस न्यायालय के विनिश्चय की दृष्टि से देश के अन्दर के किसी अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने के लिए राज्य आबद्ध था किन्तु उसने यह सुझाव दिया कि राज्य को वित्तीय कठिनाइयों के कारण ऐसा करने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। हम बिहार राज्य को यह बता सकते हैं कि वह वित्तीय अथवा प्रशासनिक असमर्थता का अभिवचन करके किसी गरीब अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से बच नहीं सकता है। राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को मुफ्त विधिक सहायता उपलब्ध करने के लिए जो गरीबी के कारण विधिक सेवाएं प्राप्त करने के अयोग्य है, और जो कुछ इस प्रयोजन के लिए आवश्यक हो,

[1] [1979] 3 एस० सी० आर० 532.

वह राज्य द्वारा किया जाता है। राज्य की अपनी वित्तीय कठिनाइयां हो सकती हैं और व्यय में उसकी अपनी पूर्विकताएं हो सकती हैं किन्तु रैम बनाम मालकम[1] में न्यायालय द्वारा जैसा संकेत किया गया है "विधि किसी सरकार को अपने नागरिकों को गरीबी का अभिवाक् करके सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने की अनुमति नहीं देती है" और जैक्सन बनाम बिशप[2] में न्यायाधीश ब्लैकमन के शब्द इस प्रकार हैं—"मानवता के सिद्धान्त और सांविधानिक अपेक्षाओं को मात्र डालर के मूल्य से मापा नहीं जा सकता।" इसके अतिरिक्त किसी गरीब अभियुक्त को मुफ्त विधिक सेवाएं उपलब्ध करने की सांविधानिक बाध्यता केवल उस समय उत्पन्न नहीं होती है, जब विचारण प्रारम्भ होता है अपितु उस समय भी है जब अभियुक्त को पहली बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है। यह उस समय प्रारम्भिक है जब किसी व्यक्ति को जैसे ही गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि उस स्तर पर उसे जमानत के लिए आवेदन करने का तथा अपनी निर्मुक्ति प्रभिप्राप्त करने का साथ ही पुलिस जेल अभिरक्षा में रिमाण्ड का विरोध करने का भी प्रथम अवसर मिलता है। यह वह प्रक्रम है जिस पर किसी अभियुक्त व्यक्ति को सक्षम विधिक सलाह तथा प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है और किसी भी प्रक्रिया को युक्तियुक्त, ऋजु और न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है जो उस स्तर पर उसे विधिक सलाह और प्रतिनिधित्व से वंचित करे। अतएव हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि राज्य किसी गरीब अभियुक्त को न केवल विचारण के प्रक्रम पर अपितु उस प्रक्रम पर भी जब उसे प्रथम बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, साथ ही साथ जब उसे समय-समय पर रिमाण्ड किया जाता है, मुफ्त विधिक सलाह उपलब्ध करने की सांविधानिक बाध्यता के अधीन है।

5. किन्तु मुफ्त विधिक सलाह का यह अधिकार भी किसी निर्धन अभियुक्त के लिए काल्पनिक हो जाएगा जब तक कि वह मजिस्ट्रेट या सैशन न्यायाधीश जिसके समक्ष उसे पेश किया जाता है, ऐसे अधिकार से उसे सूचित नहीं करता है। यह सामान्य ज्ञान है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 70 प्रतिशत लोग निरक्षर होते हैं और इससे भी अधिक प्रतिशत में लोग विधि द्वारा उन्हें प्रदत्त अधिकार से अवगत नहीं होते हैं। विधिक जानकारी की इतनी कमी है कि इस देश में विधिक सहायता के प्रोग्राम की सदैव यह एक मुख्य बात समझी

[1] 377 एस० डब्ल्यू० 995.

[2] 404 एफ० सप्लीमेंट सैकेंड 571.

गई है कि विधिक साक्षरता को प्रोन्नति दी जाए। विधिक सहायता का यह मजाक उड़ाना होगा यदि उसे किसी गरीब अनभिज्ञ और निरक्षर अभियुक्त से मुफ्त विधिक सहायता की मांग पर छोड़ दिया जाए। विधिक सहायता मात्र एक कागज पर किए जाने वाला वचन रह जाएगा और उसका प्रयोजन असफल हो जाएगा। मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश जिसके समक्ष अभियुक्त उपस्थित होता है, उसे अभियुक्त को इस बात से सूचित करने की बाध्यता के अधीन समझा जाना चाहिए कि यदि वह गरीबी अथवा दरिद्रता के कारण कोई विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है तो वह राज्य के खर्चे पर मुफ्त विधिक सेवा अभिप्राप्त करने के लिए हकदार है। दुर्भाग्यवश न्यायिक मजिस्ट्रेट, अन्धे किए गए व्यक्तियों के मामले में इस बाध्यता का निर्वहन करने में असफल हो गया था उन्होंने मात्र यह कथन किया था कि अन्धे किए गए व्यक्तियों द्वारा किसी विधिक प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की गई थी और इसलिए वह किसी को उपलब्ध नहीं की गई थी। अतएव हम यह निदेश देंगे कि देश में मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश प्रत्येक अभियुक्त को जो उनके समक्ष उपस्थित होता है और जिसका अपनी गरीबी अथवा दरिद्रता के कारण किसी विधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता है, उसे इस बात से सूचित करें कि वह राज्य के खर्चे पर मुफ्त विधिक सेवाओं के लिए हकदार है। जब तक कि वह राज्य द्वारा उपलब्ध मुफ्त विधिक सेवाओं का फायदा उठाने के लिए इच्छुक न हो तब तक उसे राज्य के खर्चे पर विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध होना चाहिए। हम बिहार राज्य को यह भी निदेश देंगे और देश के प्रत्येक अन्य राज्य से किसी अभियुक्त को जो गरीबी, दरिद्रता अथवा जानकारी न होने की स्थिति के कारण किसी विधिवेत्ता की सहायता लेने में असमर्थ है, मुफ्त विधिक सेवाएं प्रदान करने का उपबन्ध करने के लिए देश के प्रत्येक अन्य राज्य से अपेक्षा करेंगे। एकमात्र अर्हता यह होगी कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित अपराध ऐसा है कि दोषसिद्ध किए जाने पर उसका परिणाम कारावास का दण्डादेश होगा और ऐसी प्रकृति का है कि मामले की परिस्थितियां और सामाजिक न्याय की आवश्यकताएं यह अपेक्षा करती हैं कि उसे मुफ्त विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। ऐसे अपराध भी हो सकते हैं जैसे कि आर्थिक अपराध अथवा वेश्यावृत्ति का निषेध करने वाली विधि या बालकों का शोषण अथवा इसी प्रकार के अपराध, जहां सामाजिक न्याय यह अपेक्षा करेगा कि मुफ्त विधिक सेवाओं के राज्य द्वारा उपलब्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. अभिलेखों से दो अन्य अनियमितताएं सामने आती हैं जिनके प्रति हमारी राय में निदेश करना आवश्यक है। प्रथम स्थान पर कुछ मामलों में

अभियुक्त व्यक्ति जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 22 में अपेक्षित है, अपनी गिरफ्तारी के 24 घण्टों के भीतर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं हुए हैं। हम इस अनियमितता के संबंध में कोई निश्चित राय अभिव्यक्त करना नहीं चाहते हैं जो प्रथमदृष्टया, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ मामलों में हुई है। किन्तु हम बलपूर्वक राज्य पर तथा उसके पुलिस प्राधिकारियों पर इस बात को देखने के लिए बलपूर्वक जोर देंगे कि गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्तियों को पेश करने की सांविधानिक और विधिक अपेक्षा का पूरी तरह से पालन होना चाहिए। न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेखों से हमारे समक्ष पेश की गई विशिष्टियों से यह भी स्पष्ट है कि कुछ मामलों में, विशेषकर जो पटेल साहू, रमण बिन्द, शालिगराम सिंह और कुछ अन्य अभियुक्त व्यक्तियों से संबंधित हैं, उन्हें प्रथम बार पेश किए जाने के पश्चात् बाद में न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था और वे न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किसी रिमाण्ड आदेशों के पारित किए बिना जेल में ही रहे थे। यह स्पष्ट रूप से विधि के विरुद्ध है। यह समझना कठिन है कि राज्य ने किस प्रकार इन अभियुक्त व्यक्तियों को किसी रिमाण्ड आदेश के बिना जेल में निरुद्ध रखा था। हम आशा करते हैं और विश्वास करते हैं कि राज्य सरकार इस बात की जांच करेगी कि इस अनियमितता की इजाजत क्यों दी गई थी और यह देखेगी कि भविष्य में विधि के प्रशासकों द्वारा विधि का कोई ऐसा उल्लंघन किए जाने की अनुमति न दी जाए। रिमाण्ड के बिना निरोध का प्रतिषेध करने वाला उपबन्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपबन्ध है जो मजिस्ट्रेट को पुलिस अन्वेषण पर रोक-टोक लगाने के लिए समर्थ करता है और यह इसलिए भी आवश्यक है कि मजिस्ट्रेटों को इस अपेक्षा को प्रभावी करने का प्रयत्न करना चाहिए और जहां उसकी अवज्ञा की गई पाई जाती है वहां इसका भार पूर्ण रूप से पुलिस पर होता है।

7. हम अन्धे किए गए व्यक्तियों से जब उन्हें प्रथम बार न्यायिक मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था और तत्पश्चात् समय-समय पर रिमाण्ड के प्रयोजनार्थ पेश किया गया था, न्यायिक मजिस्ट्रेटों द्वारा इस बात की पूछताछ न करने पर और अपनी जिम्मेदारी का अहसास न करने पर असंतोष अभिव्यक्त करने के लिए मजबूर हैं कि किस प्रकार उनके नेत्रों को क्षतिग्रस्त किया गया था। यह सत्य है कि अधिकतर अन्धे किए गए व्यक्तियों ने रजिस्ट्रार के समक्ष अपने कथनों में कहा है कि उन्हें वस्तुतः किसी भी समय न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था किन्तु हम इस निमित्त अतिरिक्त जांच के बिना अन्धे किए गए अभियुक्तों के एकपक्षीय कथन को

स्वीकार नहीं कर सकते। उनके कथन सत्य हो सकते है या नहीं भी हो सकते हैं; यह एक ऐसा मामला है जिसकी जांच करने की आवश्यकता है। किन्तु एक बात स्पष्ट है कि लगभग सभी अन्धे किए गए बन्दियों के मामले में भारसाधक पुलिस अधिकारी द्वारा भेजी गई अंतिम रिपोर्ट में यह कथन किया गया था कि अभियुक्त को क्षतियां पहुंची थी और फिर भी न्यायिक मजिस्ट्रेटों ने इस बात को जानने की चेष्टा नहीं की थी कि किस प्रकार यह क्षतियां कारित की गई थी। इससे केवल दो अनुमान निकल सकते हैं; या तो अन्धे किए गए बन्दियों को न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था और न्यायिक मजिस्ट्रेटों ने इसके बिना ही रिमाण्ड आदेशों पर हस्ताक्षर कर दिए थे अथवा यह कि उन्होंने इस बात को जानने का प्रयत्न ही नहीं किया था यद्यपि उन्होंने यह पाया था कि उनके समक्ष आने वाले बन्दियों की आंखों में क्षतियां लगी थी। यह बात भी खेदजनक है कि केन्द्रीय जेल, भागलपुर का कोई निरीक्षण जिला अथवा सेशन न्यायाधीश द्वारा किसी भी समय वर्ष 1980 में नहीं किया गया था। हम यह निवेदन करेंगे कि उच्च न्यायालय इन मामलों पर पूर्ण रूप से विचार करे और इस बात को सुनिश्चित करे कि न्यायिक अधिकारियों की ओर से ऐसी उपेक्षाएं भविष्य में फिर से नहीं होंगी।

8. इससे पूर्व कि हम इसे समाप्त करें, एक और मामले के प्रति संकेत करना भी चाहेंगे और यह कुछ अधिक गम्भीर मामला है। अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि एक अन्धे किए गए बन्दी ने जिसका नाम उमेश यादव था, जिला और सेशन न्यायाधीश, भागलपुर को 30 जुलाई, 1980 को यह परिवाद करते हुए एक पिटीशन भेजा था कि उसे पुलिस के जिला अधीक्षक, श्री वी० के० शर्मा द्वारा अन्धा किया गया था और चूंकि उसके पास इस पुलिस अधिकारी को अभियोजित करने के लिए कोई धन नहीं था, इसलिए उसे सरकार के खर्चे पर विधिवेत्ता उपलब्ध होना चाहिए जिससे कि वह पुलिस के अत्याचारों को न्यायालय के समक्ष लाने और न्याय मांगने के समर्थ हो सके। 10 अन्य अन्धे बन्दियों ने भी इसी प्रकार के पिटीशन किए थे और ये समस्त पिटीशन जिला और सेशन न्यायाधीश को 30 जुलाई को भेज दिए गए थे। जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपने तारीख 15 अगस्त, 1980 वाले पत्र द्वारा भागलपुर केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक को सम्बोधित करते हुए यह कथन किया था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसके अधीन अन्धे किए गए बन्दियों को जिन्होंने उसे पिटीशन किया है, विधिक सहायता दी जा सके और यह कि उसने उनके पिटीशनों को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास आवश्यक कार्रवाई किए जाने के लिए भेजा था। मुख्य

न्यायिक मजिस्ट्रेट ने भी मामले में कुछ करने के लिए अपनी असमर्थता अभिव्यक्त की थी। यह प्रतीत होता है कि भागलपुर के केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक ने भी इन अन्धे किए गए व्यक्तियों के पिटीशन पटना कारागार के महानिरीक्षक को 30 जुलाई, 1980 को इस निवेदन के साथ भेजे थे कि इस मामले पर राज्य सरकार का ध्यान दिलाया जाना चाहिए। कारागार के महानिरीक्षक ने इन पिटीशनों को गृह विभाग को भेज दिया था। कारागार के महानिरीक्षक ने तीन अन्धे किये गये व्यक्तियों को 9 सितम्बर, 1980 को जब उसने बांका जेल का निरीक्षण किया था, यह भी सूचित किया था कि उन्हें पुलिस द्वारा अन्धा किया गया है और कारागार के महानिरीक्षक ने अपने निरीक्षण टिप्पण में यह मत अभिव्यक्त किया था कि मामले को सरकार के समक्ष रखना आवश्यक है जिससे कि पुलिस के अत्याचारों को रोका जा सके। इन तथ्यों से बहुत ही खराब हालत सामने आती है। पहले तो हम इस बात में विश्वास करना कठिन पाते हैं कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने जिस जिला और सैशन न्यायाधीश द्वारा इन अन्धे किये गये बन्दियों के पिटीशन भेजे गये थे, उन पिटीशनों में अन्तर्विष्ट परिवादों पर कार्रवाई क्यों नहीं की थी और या तो इन पिटीशनों से सामने आने वाले अपराध का संज्ञान किया जाता अथवा उच्चतर पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण किए जाने का आदेश दिया जाता। इन पिटीशनों से सामने आने वाली सूचना से बड़े गम्भीर अपराध प्रकट होते हैं जिनके संबंध में यह अभिकथन किया गया है कि यह पुलिस द्वारा किए गए हैं और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को इन पिटीशनों को उदासीनता से नजरअन्दाज नहीं कर देना चाहिये और मामले में कुछ करने में अपनी अयोग्यता अभिव्यक्त नहीं करनी चाहिये। किन्तु इसके अलावा एक बात निश्चित है कि 30 जुलाई, 1980 के पश्चात् कुछ दिन के भीतर गृह मंत्रालय को कारागारों के महानिरीक्षक से यह जानकारी मिली थी कि अन्धे किए गए बन्दियों के अनुसार जिन्होंने अपने पिटीशन भेजे थे, उन्हें पुलिस द्वारा अन्धा किया गया था और पुलिस के महानिरीक्षक के निरीक्षण टिप्पण से यह उपधारणा करना युक्तियुक्त प्रतीत होगा कि उसे मामले को सरकार के समक्ष लाना चाहिए था। कारागारों के महानिरीक्षक से हमें यह जानना चाहिए कि वह कौन-सा व्यक्ति था अथवा राज्य सरकार का वह कौन-सा विभाग था जिसके समक्ष में यह यह मामला लाया गया था और कारागारों के महानिरीक्षक द्वारा भेजे गए अन्धे बन्दियों के पिटीशनों के प्राप्त होने पर राज्य सरकार ने कौन-से कदम उठाए थे। साथ ही साथ कारागारों के महानिरीक्षक द्वारा मामले को उनके विचार के लिए लाए जाने पर क्या किया गया था, जैसा कि

उनके निरीक्षक टिप्पण में उसने अपना मत अभिव्यक्त किया है। हम चाहेंगे कि राज्य सरकार स्पष्ट रूप से और संक्षिप्त रूप से हमें यह सूचित करे कि उन्होंने 30 जुलाई, 1980 के पश्चात् दोषी व्यक्तियों को गिरफ्तार करवाने और ऐसे अत्याचारों को आगे होने से रोकने के लिए कौन-से कदम उठाए थे। हम यह सूचना इसलिए प्राप्त करना चाहते हैं क्योंकि हम अपना यह समाधान करना चाहते हैं कि अक्तूबर, 1980 में अन्धे बनाए जाने की जो घटना घटी थी, कारागारों के महानिरीक्षक से अन्धे बनाए गए बन्दियों के परिवाद के संबंध में सूचना के प्राप्त होने पर समुचित कार्यवाही करके राज्य सरकार द्वारा उसका निवारण किया जा सकता है या नहीं। हम राज्य सरकार को रिट पिटीशनों की अगली सुनवाई से पूर्व इस निमित्त पूर्ण और विस्तृत विशिष्टियां हमारे समक्ष पेश करने के लिए निदेश देते हैं।

9. रिट पिटीशनों पर अब 6 जनवरी, 1981 को फिर सुनवाई होगी।

(तारीख 14-1-1981 वाला आदेश)

न्यायाधिपति भगवती—

10. यह मामला दोबारा हमारे समक्ष आया है और इसमें मुख्य प्रश्न जिस पर बहस की जा चुकी है, यह है कि हमारे द्वारा पहले तारीख 19 दिसम्बर, 1980 को किए गए आदेश में जो कुछ निदेश दिए गए थे, उनका पालन बिहार सरकार ने कर दिया है या नहीं। इस समय हम इस बात की जांच करेंगे कि बिहार सरकार द्वारा इन निदेशों का पालन किस प्रकार और किस सीमा तक किया गया है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व हमें उस समस्या का निदान करना होगा जो नेत्रहीन सहायता संगठन, दिल्ली द्वारा चलाए जा रहे लाल-बहादुर शास्त्री मार्ग, नई दिल्ली स्थित आश्रम में अन्धे किए गए कैदियों को रखने में अनिच्छा प्रकट करने के कारण उत्पन्न हुई है। हमने 19 दिसम्बर, 1980 के अपने आदेश में यह सुझाव दिया था कि जिन अन्धे किए गए कैदियों को राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान, नई दिल्ली से छुट्टी दी गई है उन्हें नेत्रहीन सहायता संगठन, दिल्ली द्वारा चलाए जा रहे आश्रम में रखा जाए। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नेत्रहीन सहायता संगठन, दिल्ली ने अपने द्वारा संचालित आश्रम में उन्हें रखने के प्रति अनिच्छा प्रकट की है। पिटीशनरों की ओर से उनकी काउन्सेल श्रीमती हिंगोरानी ने हमें यह बताया है कि इसके परिणामस्वरूप ऐसे 15 अन्धे किए गए कैदियों को जिन्हें राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान से छुट्टी दी गई है, अस्थायी तौर पर चाइल्ड वर्थ होस्टल में रखा गया है, जब कि अभी 3 अन्य अन्धे किए गए कैदियों की चिकित्सा राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान में हो रही है। अब प्रश्न यह है कि इन 15 अन्धे किए गए कैदियों और 3 अन्य अन्धे किए गए कैदियों को

जिनके छोड़े जाने की सम्भावना है छोड़े जाने पर उनके रहने और खाने-पीने का खर्च किस प्रकार वहन किया जाएगा और क्राइस्ट चर्च होस्टल के खर्चों का संदाय कौन करेगा । हम नहीं समझते कि यह प्रश्न हमारे मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न कर सकता है क्योंकि 19 दिसम्बर, 1980 के अपने आदेश में ही हमने यह निदेश दे दिया है कि राज्य अग्रिम के रूप में या अन्यथा जैसी आवश्यकता हो, अन्धे किए गए कैदियों को नेत्रहीन सहायता संगठन, दिल्ली द्वारा चलाए जा रहे आश्रम में रखने से सम्बन्धित लागत प्रभार और खर्चों का संदाय करेगा और चूंकि अन्धे किए गए कैदियों को अब नेत्रहीन सहायता संगठन, दिल्ली द्वारा संचालित आश्रम के बजाय क्राइस्ट चर्च होस्टल में रखा जा रहा है इसलिए यह बहुत निष्पक्ष और न्यायसंगत होगा कि क्राइस्ट चर्च होस्टल में रखे गए अन्धे किए गए कैदियों के भरण-पोषण से सम्बन्धित युक्तियुक्त लागत, प्रभार और खर्चों का संदाय भी तब तक राज्य सरकार ही करती रहे जब तक उन्हें किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जाया जाता । इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि राज्य सरकार के सम्बन्धित अधिकारियों को क्राइस्ट चर्च होस्टल जाकर होस्टल में रखे गए अन्धे किए गए कैदियों के रहने और खाने-पीने से सम्बन्धित लागत, प्रभार और खर्चों का हिसाब कर ले । हमें यह भी बताया गया है कि लाजपत नगर, नई दिल्ली में भी कोई नेत्रहीन सहायता संगठन है जो इन अन्धे किए गए कैदियों को भर्ती करने और उनकी देखभाल करने के लिए तैयार है । हम यह समीचीन समझते हैं कि अन्धे किए गए कैदियों को क्राइस्ट चर्च होस्टल से लाजपत नगर, नई दिल्ली स्थित नेत्रहीन सहायता संगठन द्वारा चलाए जा रहे आश्रम को स्थानान्तरित कर दिया जाए जिससे कि अन्धे किए गए कैदियों को समुचित व्यावसायिक प्रशिक्षण भी मिल सके । ऐसा करने से अन्धे हो जाने के कारण इन कैदियों के समक्ष जो कठिनाइयां और शारीरिक विवशता की समस्या उत्पन्न हो गई है, उसमें कुछ सीमा तक उन्हें सहायता मिल सकेगी । इसलिए हम यह निदेश करना चाहेंगे कि अन्धे किए गए कैदियों को नेत्रहीन सहायता संगठन, लाजपत नगर, नई दिल्ली द्वारा संचालित आश्रम में ले जाया जाए और उस संस्था में उन्हें रख कर बिहार राज्य सरकार के खर्चे पर समुचित व्यावसायिक प्रशिक्षण दिलाया जाए । हम यह भी सुझाव देना चाहते हैं कि श्रीमती हिंगोरानी और बिहार राज्य दोनों को मिलकर इस बात का पता लगाना चाहिए कि क्या बिहार में ऐसी कोई संस्था है जो इन अन्धे किए गए कैदियों को रखने और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए तैयार है । यदि ऐसी किसी संस्था का पता चलता है तो हम यह निदेश देना चाहेंगे कि अन्धे किए गए कैदियों को वहां ले जाया जाए

और राज्य सरकार के खर्चे पर रखा जाए। इस आदेश के अनुसार नेत्रहीन संगठन, भागलपुर नगर द्वारा संचालित संस्था में या किसी ऐसी अन्य संस्था में जहां अन्धे किए गए कैदियों को ले जाया जाए, उनके अनुरक्षण से सम्बन्धित खर्च का भार तब तक राज्य सरकार पर होगा जब तक उनके विरुद्ध चल रहे मामलों के सम्बन्ध में विचारण के हेतु उनकी अपेक्षा नहीं की जाए या इस न्यायालय द्वारा आगे कोई अन्य आदेश न किया जाए। यदि किसी अन्य कारण से अन्धे किए गए कैदियों को वापस कारागार में जाना पड़ता है तो उस सम्बन्ध में हम यह निदेश देते हैं कि उन्हें कारागार में समुचित व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि जेल में भी वे अपने आपको उत्पादक क्रियाकलाप में लगा सकें और अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के खर्च के लिए कुछ धन कमा सकें और साथ ही जेल से छूटकर समाज के उपयोगी सदस्य बन सकें। बिहार राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री के० जी० भगत ने हमें यह बताया है कि हमारे द्वारा किए गए पूर्व आदेश में जिसमें अन्धे किए गए कैदियों के विचारण को स्थगित किया गया था, कुछ त्रुटि होने के कारण अन्धे किए गए कैदियों के विरुद्ध जिन अपराधों के आरोप हैं उनके अन्वेषण कार्य को पुलिस ने रोक दिया है और इसलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि हम अपने आदेश को इस प्रकार निर्वचित कर दें जिससे यह बात स्पष्ट हो जाए कि न्यायालय ने अन्वेषण के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं किया है। हम यह समझते हैं कि हमारे द्वारा किया गया आदेश पूर्णतः स्पष्ट है और इसके द्वारा केवल अन्धे किए गए कैदियों के विचारण को ही स्थगित किया गया है और उन अपराधों के संबंध में जो चाहे अन्धे किए गए कैदियों द्वारा या पुलिस द्वारा किए गए हों, के सम्बन्ध में पुलिस द्वारा अन्वेषण की कार्यवाही में कोई रोक नहीं लगाई गई है। वस्तुतः हमारा यह विचार है कि उन अपराधों का अन्वेषण जो अन्धे किए गए कैदियों द्वारा या पुलिस द्वारा किए गए हैं, तत्परता से किया जाना चाहिए और दोषी व्यक्तियों को अनावश्यक विलम्ब के बिना दण्डित किया जाना चाहिए। हम वस्तुतः यह भी सुझाव देना चाहते हैं कि अन्धे किए गए कैदियों की शारीरिक अक्षमता को ध्यान में रखते हुए ऐसे अपराधों के सम्बन्ध में जो अन्धे किए गए कैदियों द्वारा या पुलिस द्वारा किए जाने के लिए आक्षेपित हैं, अन्वेषण पूरा किया जाए और उनके विरुद्ध यथा-सम्भव शीघ्र आज की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर आरोप-पत्र फाइल किया जाना चाहिए। हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पुलिस को और किसी अन्य अन्वेषण प्राधिकारी को इस बात की छूट होगी कि वह अन्धे किए गए कैदियों की

परीक्षा कर सकेगा और उनके कथनों को ऐसे स्थान पर जहां उन्हें उस समय रखा गया है, अभिलिखित करेगा और यदि यह बहुत आवश्यक हो जाए कि उन्हें अन्वेषण के प्रयोजन के लिए भागलपुर जिले में किसी अन्य स्थान पर ले जाना हो तो उसके लिए राज्य सरकार इस न्यायालय में आवेदन करके ऐसा करने के लिए पिटीशनरों की अधिवक्ता श्रीमती हिंगोरानी को 24 घण्टे का नोटिस देकर प्राप्त कर सकती है। इससे पूर्व हमने अन्धे बनाए गए कैदियों के विचारण को स्थगित करते हुए आदेश केवल इसलिए किया था क्योंकि राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान में उपचार के लिए उन्हें दिल्ली लाए जाने के लिए निदेश दिया गया था और इससे एक कदम और आगे श्रीमती हिंगोरानी यह दलील पेश करना चाहती थी कि उनके द्वारा किए गए आक्षेपित अपराधों के लिए भी उनका विचारण न किया जाए। इस दलील पर हम दोनों पक्षों के विद्वान् अधिवक्ताओं की सुनवाई उस समय करेंगे जब हम इस दलील पर न्यायनिर्णयन करेंगे। अब हम यह विनिश्चय करना चाहेंगे कि क्या इस आदेश को जो हमने अन्धे किए गए कैदियों के सम्बन्ध में उन मामलों के सम्बन्ध में किया है जिनके विरुद्ध आरोपपत्र-फाइल किए गए हैं, वापिस लिया जाए या नहीं। किन्तु इसके साथ ही साथ अन्वेषण कार्यवाही जारी रहनी चाहिए और यथा-सम्भव आज की तारीख से तीन मास के भीतर पूरी कर ली जानी चाहिए।

11. हमने 8 जनवरी, 1981 के अपने आदेश द्वारा रजिस्ट्रार (न्यायिक) को यह निदेश दिया कि वे क्राइस्ट चर्च होस्टल और राजेन्द्र प्रसाद नेत्र संस्थान में जाकर अन्धे किए गए कैदियों से इस बात की जांच करें कि वे दिल्ली में ही रहना चाहते हैं या वापस जाना चाहते हैं और यदि वापस जाना चाहते हैं तो कहां जाना चाहते हैं। हमारे द्वारा दिए गए इस आदेश के अनुसरण में रजिस्ट्रार (न्यायिक) ने जांच की और उनकी रिपोर्ट से यह पता चलता है कि क्राइस्ट चर्च होस्टल में रह रहे 15 अन्धे किए गए कैदियों में से 14 दिल्ली में ही रहना चाहते हैं जबकि उनमें से एकमात्र लक्ष्मी महतो जो 1980 के रिट पिटीशन संख्या 5352 के पिटीशनरों में से एक था, वापस भागलपुर जिले में स्थित अपने गांव जाना चाहता है। जहां तक राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान में भर्ती किए गए अन्य दो अन्धे किए गए कैदियों का सम्बन्ध है, उनके वापस जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि शीघ्र ही राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान में उनकी शल्य क्रिया की जाएगी। रजिस्ट्रार (न्यायिक) की रिपोर्ट के अनुसार एक और भी अन्धा किया गया कैदी है जिसका नाम बलजीत सिंह है और अखिल भारतीय

आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान में टखनों की चोट के लिए उसका इलाज चल रहा है और आगे राजेन्द्र प्रसाद नेत्र संस्थान में उसके उपचार की आवश्यकता होगी। इसलिए वह भी वापस नहीं जा सकता। अब चूंकि क्राइस्ट चर्च होस्टल में रखे गए 15 अन्धे किऐ गए कैदियों में से 14 दिल्ली में ही रहना चाहते हैं इसलिए उन्हें पिछले पैरा में दिए गए निदेशों के अधीन रहते हुए दिल्ली में ही रहने की अनुमति दी जाती है और जहां तक 15वें अन्धे किए गए कैदी लक्खी महतो का प्रश्न है, उसे राज्य सरकार द्वारा आज की तारीख से एक सप्ताह के भीतर बिहार में अपने जन्मस्थान वापस जाने के लिए एक टिकट और अन्य सुविधाएं प्रदान की जाएंगी। राजेन्द्र प्रसाद नेत्र संस्थान में भर्ती किए गए दो अन्धे किए गए कैदियों और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में उपचाराधीन तीसरे अन्धे किए गए कैदी के उपचार के सम्बन्ध में जो निदेश हमने पहले दिए हैं उनका पालन राज्य द्वारा किया जाएगा।

12. ऐसा प्रतीत होता है कि क्राइस्ट चर्च होस्टल में इस समय रह रहे 15 अन्धे किए गए कैदियों में से 10 को राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक अन्धे किए गए कैदी को संदत्त किए जाने के लिए आदेशित 300 रुपये की रकम प्राप्त हो चुकी है। किन्तु शेष पांच को अभी वह रकम संदत्त नहीं की गई। इसलिए हम राज्य सरकार के सम्बद्ध अधिकारियों को यह निदेश देते हैं कि क्राइस्ट चर्च होस्टल में जाकर रेवरैण्ड विलसन या उनकी पत्नी अथवा रेवरैण्ड युसुफ सिंह जो क्राइस्ट चर्च होस्टल के भारसाधक हैं, वे शेष पांच अन्धे किए गए कैदियों की पहचान करवाकर उनमें से प्रत्येक को तीन सौ रुपये की रकम का संदाय करें। चूंकि अन्धे किए गए कैदियों के पास ठण्डक से बचने के लिए गर्म कपड़े नहीं हैं इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि उनके लिए उतने गर्म कपड़ों की राज्य सरकार के खर्च पर व्यवस्था की जाए जो सामान्यतः जाड़े के महीनों में कैदियों को जेलों में उपलब्ध कराए जाते हैं और दिल्ली स्थित राज्य सरकार के सम्बद्ध अधिकारी को इन निदेशों का पालन आज की तारीख से तीन दिन के भीतर कर देना चाहिए।

13. पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होते हुए श्रीमती हिंगोरानी ने यह निवेदन किया है कि चूंकि 18 अन्धे किए गए कैदी जिनमें से 15 क्राइस्ट चर्च होस्टल में, 2 राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान में और एक अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती हैं और सब के सब दिल्ली में हैं इसलिए राजेन्द्र प्रसाद नेत्र चिकित्सा संस्थान के डाक्टर मदन मोहन द्वारा उनकी यह राय जानने के लिए परीक्षा कराई जानी चाहिए कि उन्हें किस पद्धति से और किसी रीति से अन्धा किया गया और क्या चिकित्सीय रूप से ऐसा किया जा

सकता है ? हमारा यह विचार है कि श्रीमती हिंगोरानी द्वारा किया गया यह निवेदन युक्तियुक्त और न्यायोचित है और इससे न्यायालय को निश्चय ही इस प्रश्न के अवधारण के लिए सहायता मिलेगी कि क्या पुलिस द्वारा उन्हें अन्धा किए जाने से संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अन्धे किए गए कैदियों के मूल अधिकारों का उल्लंघन किया गया है । इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि जो 18 अन्धे किए गए कैदी दिल्ली में हैं, उनका परीक्षण राजेन्द्र प्रसाद नेत्र संस्थान के डाक्टर मदन मोहन द्वारा यह अवधारित करने के लिए किया जाएगा कि क्या ऐसा करना चिकित्सीय पद्धति से सम्भव है और डाक्टर मदन मोहन की राय में वह कौन-सी पद्धति या रीति थी जिसमें इन अन्धे किए गए कैदियों से उनकी आंखों की रोशनी छीन ली गई । हम डाक्टर मदन मोहन से यह अनुरोध करना चाहेंगे कि वे अपनी राय हमें 20 जनवरी, 1981 को या उससे पहले दे दें । इन अन्धे किए गए कैदियों को डाक्टर मदन मोहन के समक्ष आज की तारीख से दो दिन के भीतर प्रस्तुत किया जाएगा ।

14. इन निदेशों के साथ हम रिट पिटीशन की सुनवाई को 15 जनवरी, 1981 तक के लिए स्थगित करते हैं ।

तदनुसार आदेश दिया गया ।

सा०/दि०/मू०

AIR 1982 SC 1470 :
(1982) 3 SCC 131 :
1982 CRI.L.J. 1983

सन्तबीर

बनाम

बिहार राज्य

न्यायाधिपति पी. एन. भगवती और ए. एन. सेन

रिट याचिका (दाण्डिक) संख्या 1052, वर्ष 1982 निर्णीत/24.8.82

सन्तबीर .... याची

बनाम

बिहार राज्य .... प्रत्यर्थी

भारत का संविधान, अनुच्छेद 21, 22–बन्दी का आपराधिक पागल के रूप में 16 वर्ष से अधिक बिना किसी औचित्य के निरोध, यद्यपि वह पूर्णतः स्वस्थचित्त और उन्मोचित होने योग्य हो चुका था–राज्य सरकार के प्रशासन की तीव्र आलोचना-निदेश दिया गया कि याची को तत्काल जेल से छोड़ा जाय।

वर्तमान मामले में याची को 28 फरवरी, 1949 को आजीवन कारावास का दण्डादेश दिया गया था। चूंकि याची की मानसिक दशा स्थिर नहीं थी, 20 नवम्बर, 1951 को याची को अन्य जेल में आपराधिक पागल के रूप में परिरुद्ध करने के लिए स्थानान्तरण किया गया था। चिकित्सीय विवरण-पत्र और स्वास्थ्य रिपोर्ट प्रकट करती है कि 23 दिसम्बर, 1966 से याची पूर्णतः पुनः निरोग और रोग लक्षणों से मुक्त हो गया था और उन्मोचित होने योग्य था। वह स्वास्थ्य रिपोर्ट जेल अधीक्षक द्वारा राज्य सरकार को भेजी गयी थी और कहा गया था कि याची "अपने अभिभावक अथवा प्रतिभू की देखरेख में"

उन्मोचित होने योग्य है और इस बारे में आवश्यक आदेश पारित किये जाने चाहिए। राज्य सरकार ने याची को छोड़े जाने का निदेश देने के स्थान पर जेल अधीक्षक को याची को आपराधिक पागल के रूप में तीन वर्ष के लिए सुरक्षित अभिरक्षा में रखने का निदेश दिया था।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह राज्य सरकार के इस मामले से सम्बद्ध अधिकारियों की घोर निष्ठुरता और उपेक्षा का स्पष्टतः घोतक है। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि यह समझ में आने योग्य नहीं कि राज्य सरकार ने याची को जेल से छोड़ने से पहले प्रतिभू का आग्रह क्यों किया जबकि याची को पूर्णरूप से पुनः निरोग और उन्मोचित होने के लिये पूर्णतः स्वस्थ पाया गया था और वहाँ कानूनन कोई भी आवश्यकता या औचित्य उसको निरुद्ध रखने का नहीं था। आगे, वर्तमान मामले में चूँकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो कि याची का प्रतिभू बनने को तैयार हो, याची दस वर्ष की और आगे अवधि के लिए जेल में सड़ता रहा था। उच्चतम न्यायालय ने सम्प्रेक्षित की कि यह हमारी अन्तरात्मा को झकझोर देने वाली बात है कि एक पूर्णतः स्वस्थचित्त व्यक्ति को कारागार की दीवारों के बीच, विधि के किसी भी औचित्य के बिना लगभग 16 वर्ष के लिए बन्दी बनाकर रखा गया हो। एक व्यक्ति को 16 वर्ष से अधिक बिना किसी विधि की अनुज्ञा के जेल में निरुद्ध रखना समाज और प्रशासन के लिए भी शर्म की बात होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया कि याची को तत्काल जेल से छोड़ा जाय और स्वतंत्र कर दिया जाये। (पैरा 2, 3, 5)

निर्दिष्ट निर्णय कालानुक्रम पैरा

(1982) डब्ल्यू पी (सी आर एल) संख्या 73 वर्ष 1983, विनीत/11.5.82 (एस सी) 7

मिस वीना सेठी–बनाम–बिहार राज्य

न्यायाधिपति भगवती :- यह बिहार राज्य का फिर एक अन्य मामला है जहाँ हम पाते हैं कि एक बन्दी जो लगभग 16 वर्ष पहले स्वस्थचित्त हो गया था, को अभी तक जेल में परिरुद्ध कर रखा है और वह स्वतन्त्रता की स्वच्छ हवा में साँस नहीं ले पाया है। याची को 28 फरवरी, 1949 को सेशन न्यायाधीश गया ने धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास का दण्डादेश

दिया था और उसको केन्द्रीय जेल गया, अपने कारावास की अवधि काटने के लिये भेजा गया था। यह प्रतीत होता है कि याची की मानसिक दशा स्थिर नहीं थी और इसलिये बिहार सरकार के न्याय विभाग ने अधीक्षक, केन्द्रीय जेल गया को याची की मानसिक दशा पर निगरानी रखने और छः मास पश्चात् राज्य सरकार को रिपोर्ट भेजने का निदेश दिया था। हम नहीं जानते हैं कि क्या इस प्रकार की कोई रिपोर्ट याची की मानसिक दशा के बारे में अधीक्षक, केन्द्रीय जेल गया राज्य ने सरकार को भेजी थी परन्तु अभिलेख प्रकट करता है कि 20 नवम्बर, 1951 को आपराधिक पागल के रूप में परिरोध में रखने के लिए बिहार के महानिरीक्षक कारागार के आदेश के अधीन याची को केन्द्रीय जेल गया से हजारी बाग केन्द्रीय जेल स्थानान्तरित किया गया था। याची की मानसिक दशा के बारे में अर्धवार्षिक रिपोर्ट बिहार सरकार को समय-समय पर 10 सितम्बर, 1955 तक भेजी गई थी और यह रिपोर्ट प्रकट करती है कि याची उस समय तक पागल था। हम नहीं जानते कि क्या 10 सितम्बर, 1955 के पश्चात् भी कोई रिपोर्ट याची की मानसिक दशा के बारे में भेजी गई थी और न हमारे पास इस तारीख के पश्चात् उसकी मानसिक दशा के बारे में कोई सूचना है। परन्तु ग्यारह वर्ष बाद, याची के चिकित्सीय विवरण-पत्र से ज्ञात होता है कि वह 23 दिसम्बर, 1966 से अहानिकर और सामान्य व्यवहार करता पाया बताया गया था। चिकित्सीय विवरण-पत्र में यह प्रविष्टि किस तारीख को की गई थी यह प्रकट नहीं होता है। परन्तु सुस्पष्टतः यह प्रविष्टि 23 दिसम्बर, 1966 के पश्चात्‌वर्ती है। यह प्रकट होता है कि यह रिपोर्ट अधीक्षक, हजारी बाग केन्द्रीय जेल के द्वारा राज्य सरकार के विधि विभाग को संप्रेषित की गई थी और यद्यपि इस रिपोर्ट के द्वारा राज्य सरकार के विधि विभाग को सूचित किया गया था कि चिकित्सीय परीक्षण के परिणामस्वरूप याची को अहानिकर और सामान्य व्यवहार कर रहा पाया गया है, परन्तु विधि विभाग ने जेल से याची की निर्मुक्ति कराने के प्रयोजन से कोई कार्यवाही नहीं की थी।

2. उसके बाद 11 फरवरी, 1969 को याची को प्रथम सहायक अधीक्षक, रांची मानसिक आरोग्यशाला कांके द्वारा पुनः परीक्षित किया गया था और इस अधिकारी के द्वारा दी गई स्वास्थ्य रिपोर्ट दिखाती है

कि याची 23 दिसम्बर 1966 से पूर्णत: पुन: निरोग हो गया था और किसी भी रोग लक्षण से मुक्त था और उन्मोचित किये जाने योग्य था। यह स्वास्थ्य रिपोर्ट हजारीबाग, केन्द्रीय जेल के अधीक्षक द्वारा राज्य सरकार के विधि विभाग को भेजी गई थी और यह कहा गया था कि याची "अपने अभिभावक या प्रतिभू की देखरेख में" उन्मोचित होने योग्य है और इस बारे में आवश्यक आदेश पारित किये जाने चाहिए। अब इस सूचना को पाने के बाद राज्य सरकार के विधि विभाग को याची को तत्काल छोड़ देने का निदेश देना चाहिए था क्योंकि वह उन्मोचित होने योग्य प्रमाणित किया जा चुका था। परन्तु यह करने के स्थान पर राज्य सरकार ने अपने पत्र तारीखी 7 अप्रैल, 1969 द्वारा अधीक्षक, हजारी बाग केन्द्रीय जेल को निदेश दिया कि वह याची को आपराधिक पागल के रूप में तीन वर्ष के लिए सुरक्षित अभिरक्षा में रखे और विचार के लिए नियमित स्वास्थ्य रिपोर्ट भेजा करे। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि राज्य सरकार सम्भवत: कैसे, अधीक्षक, हजारी बाग केन्द्रीय जेल से याची को तीन वर्ष की अवधि के लिए अभिरक्षा में रखने के लिए कह सकते हैं जबकि याची को पहले ही पुन: निरोग और उन्मोचित होने योग्य घोषित किया जा चुका था। यह राज्य सरकार के इस मामले में सम्बद्ध अधिकारियों की घोर निष्ठुरता और उपेक्षा का स्पष्टत: द्योतक है।

3. इसके बाद राज्य सरकार के विधि विभाग ने अधीक्षक, हजारी बाग केन्द्रीय जेल को एक सन्देश तारीखी 15 सितम्बर, 1971 सम्बोधित किया है और कहा कि वह याची की मानसिक दशा के बारे में अपनी अद्यतन रिपोर्ट भेजे और राज्य सरकार को यह भी सूचित करे कि क्या कोई व्यक्ति "पागल की प्रतिभू लेने" को तैयार है अथवा नहीं, और यदि कोई व्यक्ति है जो ऐसा करने को तैयार है तो उससे लिखित प्रार्थना-पत्र प्राप्त करके राज्य सरकार को अवगाहित किया जाए। यह समझना पुन: सम्भव नहीं है कि क्यों राज्य सरकार ने याची को जेल से छोड़ने के पहले प्रतिभू के लिए आग्रह किया जबकि याची पूर्णत: पुन: निरोग और पूर्णत: उन्मोचित होने योग्य पाया गया था और वहाँ विधि में कोई भी आवश्यकता या औचित्य उसको निरुद्ध करने का नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने प्राप्त उपरोक्त सन्देश के अनुसरण में

अधीक्षक, हजारी बाग केन्द्रीय जेल ने याची के पिता को एक पत्र तारीख 11 मार्च, 1972 सम्बोधित कर उनसे कहा कि क्या वह याची का प्रतिभू बनने को तैयार है, परन्तु कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ और 22 अप्रैल, 1972 को अधीक्षक ने यह तथ्य राज्य सरकार को सूचित किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि याची दस वर्ष की और अवधि के लिए जेल में सड़ता रहा यद्यपि वह पूर्णतः पुनः निरोग हो गया था और जेल में उसके निरोध को बनाये रखने का कोई कारण अथवा औचित्य नहीं था। यह हमारी अन्तरात्मा को झकझोर देने वाली बात है कि एक पूर्णतः स्वस्थचित्त व्यक्ति को कारागार की दीवारों के बीच विधि के किसी भी औचित्य के बिना लगभग 16 वर्ष तक बन्दी बनाकर रखा गया हो। यदि यह एक मात्र मामला होता तो वह किसी सफाई को देकर सम्भवतः समझाया जा सकता था, यद्यपि मैं नहीं समझता कि कैसे कोई सफाई वैध हो सकती है जबकि उसमें एक व्यष्टि (individual) का विधि के किसी प्राधिकार के बिना लगभग 16 वर्ष का कारावास अन्तर्भावित हो। परन्तु हम रिट याचिका (दाण्डिक) संख्या 73/82 वीना सेठी-बनाम-बिहार राज्य में 11 मई, 1982 को इस न्यायालय के द्वारा दिए गऐ विनिश्चय से पाते हैं कि कई अन्य बन्दी जो कि बहुत वर्षों पहले स्वस्थचित्त हो गये थे, को भी बिहार राज्य के कारागार में वर्षों तक आपराधिक पागलों के रूप में निरुद्ध रखे गये थे और वे जेल में उस समय तक सड़ते रहे थे जब तक कि उन्हें इस न्यायालय द्वारा निर्मुक्त नहीं कर दिया गया था।

4. परन्तु याची की व्यथा यहीं समाप्त नहीं होती है। वह 24 जनवरी, 1982 को डाक्टर ए० के० प्रसाद, मानसिक आरोग्यशाला कनके (मनोरोग विशेषज्ञ) द्वारा परीक्षित किया गया और डाक्टर ए० के० प्रसाद के द्वारा दी गई चिकित्सीय राय निम्नलिखित है :–

"वह शान्त, मौन सुशील और दूसरों के प्रति आदरपूर्ण है। वह सुसंस्कृत (well oriented) है और सुसंगत और तारतम्यपूर्ण बात करता है। कोई विभ्रम या मतिभ्रम नहीं है। उसकी स्मरण शक्ति और विवेक-शक्ति सामान्य है। उसमें समझ विद्यमान है और वह इस स्थान से हटाये जाने के योग्य है।" अभिलेख प्रकट करता है कि इस चिकित्सीय राय के आधार पर याची को जेल से उन्मोचित करने के स्थान पर पुनः याची के

पिता को पत्र सम्बोधित करके सम्पर्क करने का प्रयास किया गया, परन्तु अभिलेख यह नहीं प्रकट करता है कि क्या वास्तव में ऐसा पत्र भेजा गया और ऐसे प्रयास का क्या परिणाम रहा था। तथापि तथ्य यह ही रहता है कि याची 8 मई 1982 तक जेल में बना रहा जबकि उसका पुनः डाक्टर ए० के० प्रसाद द्वारा चिकित्सीय परीक्षण कराया गया और इस बार भी चिकित्सीय राय वही थी अर्थात याची मानसिक रूप से स्वस्थ था और स्वास्थ्य रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि उसको जेल से हटाया जाना चाहिए। यह चिकित्सीय राय यद्यपि 8 मई, 1982 को दी गई थी परन्तु उसको राज्य सरकार को 30, जुलाई 1982 तक नहीं भेजा गया और यह प्रतीत होता है कि रिट याचिका हमारे द्वारा सुने जाने के समय राज्य सरकार का निर्णय प्रतीक्षित था।

5. हमारे द्वारा ऊपर वर्णित की गई कहानी पढ़ने में अत्यन्त शोचनीय और दुःखद है। क्या हम व्यष्टि की गरिमा के लिए समस्त सम्मान और मानवजीवन के मूल्य, जिसको हमारे संविधान में इतने भव्य रूप में प्रतिष्ठापित किया गया, को भूल गए हैं, क्या हम व्यक्ति को एक बार जेल भेजे जाने के बाद भूलने को तैयार हो जाते हैं और यह भी जाँच करने की चिन्ता नहीं करते हैं कि क्या वह जेल में विधि के अनुसार निरुद्ध चल रहा है या नहीं। एक व्यक्ति को 16 वर्ष से अधिक के लिये बिना किसी विधि की अनुज्ञा के जेल में निरुद्ध रखना समाज और प्रशासन के लिये भी शर्म की बात होनी चाहिए। अतएव हम निदेश देते हैं कि याची को तत्काल जेल से छोड़ा जाये और स्वतंत्र कर दिया जाये। याची को छोड़े जाने के समय राज्य सरकार उसके मूल स्थान तक की यात्रा और एक सप्ताह की अवधि के लिये भरण-पोषण पर खर्च करने के प्रयोजन से आवश्यक निधि उपलब्ध करायेगी।

6. हम बताना चाहेंगे कि याची हम से यह अनुतोष इसलिये पाने में समर्थ हो सका है क्योंकि निःशुल्क कानूनी सहायता समिति, हजारी बाग द्वारा उसका मामला हमारे सामने लाया गया था। परन्तु हम इस सम्भावना को नकार नहीं सकते हैं कि बिहार की जेलों में ऐसे कई और बन्दी हो सकते हैं जो कि यद्यपि बहुत पहले से स्वस्थचित्त हो गये हों मगर वह आपराधिक पागलों के रूप में निरुद्ध चल रहे हों। निःशुल्क कानूनी सहायता समिति; हजारीबाग निर्धनों को कानूनी सहायता के क्षेत्र

में हुड सेवायें प्रदान कर रही है मगर फिर भी वह उन सभी मामलों तक नहीं पहुँच सकती है जहां व्यक्तियों को आपराधिक पागलों के रूप में निरुद्ध रखा गया है यद्यपि वह लोग पूर्णतः स्वस्थचित्त हो गये हों और उन्मोचित होने योग्य हों। अतएव हम राज्य सरकार को निदेश देते हैं कि वह न्यायालय में एक विवरण दाखिल करे जिसमें बिहार राज्य के विभिन्न कारागारों में पागलों के रूप में निरुद्ध, चाहे दोषसिद्धि के पश्चात् अथवा अन्यथा प्रकार से, व्यक्तियों के नाम और विशिष्टियाँ दी गई हों। यह विवरण राज्य सरकार के द्वारा आज से छः सप्ताह के भीतर दाखिल किया जाएगा और उसकी एक प्रति याची की ओर से उपस्थित हो रहे विद्वान अधिवक्ता को दी जाएगी। हम राज्य सरकार को यह भी निदेश देंगे कि वह प्रत्येक वर्ष 31 अक्टूबर को उन विचाराधीन बन्दियों जो मजिस्ट्रेट के समक्ष सुपुर्दगी की कार्यवाही अथवा विचारण या सुपुर्दगी होने के बाद के मामलों में सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण प्रारम्भ हुए बिना, 18 मास से अधिक से जेल में है, की वार्षिक गणना किया करे। ऐसी गणना सूची राज्य सरकार के द्वारा पटना उच्च न्यायालय के निबंधक के पास प्रत्येक वर्ष 31 दिसम्बर या उसके पहले दाखिल की जाएगी। हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि वह ऐसी गणना सूची का राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक वर्ष 31 दिसम्बर या उसके पूर्व दाखिल करना सुनिश्चित करें और यदि यह दाखिल नहीं की गई हो तो उच्च न्यायालय इस बारे में आवश्यक कार्यवाही करेगा। उच्च न्यायालय ऐसी गणना सूची की छानबीन भी करेगा ताकि वह संतुष्ट हो सके कि ऐसा कोई विचाराधीन बन्दी तो नहीं है जो कि मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायालय के समक्ष बिना विचारण प्रारम्भ हुए 18 मास से अधिक से निरुद्ध है, और यदि ऐसे विचाराधीन बन्दी है तो उच्च न्यायालय ऐसे विचाराधीन बन्दियों के विचारण शीघ्र कराने के प्रयोजन से कदम उठाएगा।

—तदनुसार आदेशित

(1986) 2 उम० नि० प० 1221 :

(1986) 2 SCC. 401 :

AIR 1986 SC 991 :

सुख दास

बनाम

अरुणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र

(10 मार्च 1986)

(मुख्य न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती, न्यायमूर्ति डी० पी० मदान और जी० एल० ओझा)

संविधान, 1950–अनुच्छेद 21–दाण्डिक विचारणों में किसी गरीब अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सहायता दिये जाने का मूल अधिकार–किसी अभियुक्त द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन करने में असफल रहने पर उसे उसके निःशुल्क विधिक सहायता पाने के मूल अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता–सामाजिक न्याय की अपेक्षा के अनुसार मजिस्ट्रेट ऐसे प्रत्येक अभियुक्त को, जो दोषसिद्ध के आधार पर कारावास के लिए दायी है, निःशुल्क विधिक सहायता पाने के मूल अधिकार के बारे में सूचित करने और यह पूछने के लिए आबद्ध है कि क्या वह राज्य के खर्चे पर विधिक प्रतिनिधित्व करवाना चाहता है-अभियुक्त द्वारा जब तक इनकार न किया जाए, विधिक सहायता देने में असफलता से विचारण दूषित हो जाएगा।

अपीलार्थी और 5 अन्य अभियुक्त इस अभिकथन के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506 के अधीन इस अपराध के लिए अरुणाचल प्रदेश में जीरो स्थित दिबांग घाटी के अपर उप–आयुक्त के न्यायालय में आरोपित किए गए थे कि अपीलार्थी और अन्य 5 अभियुक्तों ने अनीनी के केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के सहायक इंजीनियर को अभियुक्त के स्थानान्तरण आदेश, जो उसके द्वारा पारित किए गए थे, रद्द करने के लिए उसे बाध्य करने की दृष्टि से धमकी दी थी। मामले का वारण्ट मामले के रूप में विचारण किया गया था और विचारण में अभियोजन पक्ष की ओर से 8 साक्षियों की परीक्षा की गई थी। अपीलार्थी का किसी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था क्योंकि स्वीकार्यतः वह अपनी गरीबी के कारण विधिक प्रतिनिधित्व कराने में असमर्थ था और परिणाम यह था कि वह अभियोजन पक्ष के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं कर सका था।

अपीलार्थी प्रतिरक्षा में 7 साक्षियों की परीक्षा करना चाहता था किन्तु उनमें से दो की परीक्षा नहीं की जा सकी क्योंकि वे बहुत दूर रह रहे थे, तथापि न्यायालय की राय में वे महत्वपूर्ण साक्षी नहीं थे। अपीलार्थी द्वारा बिना किसी विधिक सहायता के शेष 5 साक्षियों की परीक्षा की गई थी। परिणाम यह था कि विचारण की समाप्ति पर चार अभियुक्त दोषमुक्त कर दिए गए थे किन्तु अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त भारतीय दण्ड संहिता की धारा 506 के अधीन अपराध के लिए सिद्धदोष किया गया था और उन्हें दो वर्ष की कालावधि के लिए साधारण कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया गया था।

इस पर अपीलार्थी ने गोहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। इस अपील के समर्थन में कई दलीलें दी गई थीं। एक दलील यह है कि अपीलार्थी को उसकी प्रतिरक्षा के लिए निःशुल्क विधिक सहायता नहीं दी गई थी इसलिए विचारण दूषित हो गया था। अपीलार्थी द्वारा अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष यही एक ही दलील दी गई थी किन्तु उच्च न्यायालय का यह मत था कि यद्यपि निस्संदेह निःशुल्क विधिक सहायता दिया जाना अपीलार्थी का अधिकार था तो भी अपीलार्थी ने विधिक सहायता के लिए प्रार्थना करते हुए विद्वान अपर उप-आयुक्त को कोई प्रार्थना नहीं की थी और चूंकि उसके द्वारा विधिक सहायता के लिए कोई भी आवेदन नहीं किया गया था इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि विधिक सहायता देने में असफलता से विचारण दूषित हो गया। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि कर दी थी। किन्तु इस तथ्य को देखते हुए कि वह पहले से ही लगभग 8 मास की कालावधि के लिए जेल में है उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अपीलार्थी को दिया गया दण्डादेश उसके द्वारा पहले से भुगते गए दण्डादेश तक कम कर दिया जाता है तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। तद्नुसार, अपीलार्थी को तुरन्त मुक्त करने का आदेश दिया गया किन्तु उसके विरुद्ध पारित दोषसिद्धि का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था इसलिए उसने इस न्यायालय से विशेष इजाजत प्राप्त करके वर्तमान अपील की है। अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित—निःशुल्क सेवा का अधिकार स्पष्ट रूप से किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का एक आवश्यक लक्षण है और इसे अनुच्छेद 21 की प्रत्याभूति में विवक्षित होना अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त

व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो गरीबी, निर्धनता या सम्पर्क वर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील नियुक्त करने और विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है तथा राज्य ऐसे किसी अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करने के दायित्वाधीन है यदि मामले की परिस्थितियां और न्याय की आवश्यकता इस प्रकार की अपेक्षा करे और अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था के बारे में आपत्ति न करे। ऐसे किसी कैदी के लिए यह युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का आवश्यक लक्षण है जो न्यायालय की प्रक्रिया की मार्फत अपनी स्वतंत्रता चाहता है कि उसे विधिक सेवा उपलब्ध करवाई जाए। अब इसे सुस्थिर विधि के रूप में माना जा सकता है कि राज्य के खर्च पर निःशुल्क सहायता किसी अपराध, जिसमें उसके जीवन या वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए खतरा अन्तर्वलित हो, के अभियुक्त व्यक्ति का मूल अधिकार है और यह मूल अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा विहित युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया की अपेक्षा में विवक्षित है। यद्यपि इस बात को अवश्य ही मान्यता दी जानी चाहिए कि ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें आर्थिक अपराध या वेश्यावृत्ति या बालकों के दुरुपयोग को प्रतिषिद्ध करने वाली विधि के विरुद्ध अपराध और उनके जैसे समान अपराध अन्तर्वलित होने वाले मामले हो सकते हैं—जहां सामाजिक न्याय की यह अपेक्षा हो सकती है कि राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवा न दी जाए। इन परिस्थितियों में इस बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी राज्य के खर्च पर निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार था जब ऐसे अपराध का, जिसके साबित होने पर वह स्पष्ट रूप से दो वर्ष की अवधि के कारावास के लिए दायी होगा, दोषसिद्ध किए जाने के कारण उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता खतरे में पड़ गई। (पैरा 5)

मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश, जिसके समक्ष अभियुक्त हाजिर होता है, अभियुक्त को यह जानकारी देने की बाध्यता के अधीन होना चाहिए कि यदि वह गरीबी या निर्धनता के कारण वकील की सेवाएं लेने में असमर्थ है तो वह राज्य के खर्च पर निःशुल्क विधिक सेवा प्राप्त करने के लिए हकदार है। देश में मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश ऐसे प्रत्येक अभियुक्त को, जो उनके समक्ष हाजिर होते हैं और जिनका गरीबी या दरिद्रावस्था के कारण किसी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं होता है, सूचित करेंगे कि वह राज्य के खर्च पर निःशुल्क विधिक सेवाओं के लिए हकदार है जब तक कि वह राज्य द्वारा दी गई निःशुल्क विधिक सेवाओं का लाभ उठाने के लिए रजामन्द न हो। उच्चतम न्यायालय ने देश में प्रत्येक राज्य को यह साधारण निदेश भी दिया था कि

ऐसे अभियुक्त को, जो गरीबी, दरिद्रावस्था या सम्पर्क वर्जित परिस्थितियों के कारण किसी वकील को नियुक्त करने में असमर्थ हो, निःशुल्क विधिक सेवा देने के लिए उपबंध होना चाहिए। एकमात्र शर्त यह होनी चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित अपराध ऐसा होना चाहिए कि दोषसिद्धि पर उसका परिणाम कारावास का दण्डादेश होगा और वह ऐसी प्रकृति का होगा कि मामले की परिस्थितियों और सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं से यह अपेक्षित हो कि उसे निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में विद्वान् अपर उपायुक्त ने अपीलार्थी को यह जानकारी नहीं दी कि वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार था और न ही उन्होंने अपीलार्थी से यह बात पूछी कि क्या वह राज्य के खर्चे पर अपने लिए वकील नियुक्त करवाना चाहता है। परिणाम यह हुआ कि अपीलार्थी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व किए बिना रहा और अन्ततोगत्वा विचारण का परिणाम उसकी दोषसिद्धि में हुआ। स्पष्ट रूप से यह अनुच्छेद 21 के अधीन अपीलार्थी के मूल अधिकार का अतिक्रमण था और तद्नुसार विचारण को घातक सांविधानिक त्रुटि के कारण दूषित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दण्डादेश अवश्य ही अपास्त किए जाने चाहिए। (पैरा 6)

यह बात सही है कि अपीलार्थी दाण्डिक अपराध के लिए दोषसिद्ध किये जाने के कारण कोई जांच किये बिना सेवा से पदच्युत कर दिया गया था और चूंकि अपीलार्थी की दोषसिद्धि इस न्यायालय द्वारा अपास्त कर दी गई है इसलिए पदच्युति का आदेश भी अवश्य ही नामंजूर किया जाना चाहिए और अपीलार्थी को पिछली मजदूरी सहित सेवा में बहाल किया जाना चाहिए। किन्तु न्यायालय अपीलार्थी की दोषसिद्धि को अभिखण्डित करने का परिणाम यह होगा कि अपीलार्थी को राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सहायता देने के पश्चात् उसका विधि के अनुसार पुनः विचारण किया जाएगा और उसका यह अर्थ होगा कि अपीलार्थी को पुनः दोषसिद्धि और कारावास की जोखिम बनी रहेगी और इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि अन्ततोगत्वा आरोपित उसके विरुद्ध साबित हो सकता है और वह जेल जा सकता है और उसकी सेवा भी समाप्त हो सकती है। इसलिए न्यायालय महसूस करता है कि इससे न केवल न्याय का उद्देश्य पूरा होगा किन्तु अपीलार्थी के हित में भी यह होगा कि उसके विरुद्ध कोई नवीन विचारण न किया जाए और उसे पिछली मजदूरी के बिना सेवा में बहाल किया जाए। तद्नुसार, यह निदेश दिया गया कि अपीलार्थी को सेवा में बहाल किया

जाए किन्तु वह किसी भी प्रकार की पिछली मजदूरी का दावा करने के लिए हकदार नहीं होगा और उसके विरुद्ध कोई भी नवीन विचारण नहीं किया जाएगा। (पैरा 7)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1981]	[1981] 4 उम० नि० प० 956=1981 (2) एस० सी० आर० 408 : **खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य;**	6
[1980]	[1980] 2 उम० नि० प० 772=1979 (3) एस० सी० आर० 532 : **हुसैनआरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना;**	5
[1978]	1978 (3) एस० सी० आर० 544 : **एम० एच० होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य,**	5

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1985 की दाण्डिक अपील सं० 725

1979 के दाण्डिक पुनरीक्षण सं० 205 में गोहाटी उच्च न्यायालय के तारीख 9 अगस्त, 1984 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री विजय हंसारिया और एस० के० जैन

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री अब्दुल कादिर और जी० चन्द्रा तथा कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती ने दिया।

मुख्य न्यायमूर्ति भगवती—

विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में देश में दाण्डिक न्याय प्रशासन से संबंधित एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुआ है। प्रश्न यह है कि क्या अभियुक्त, जो अपनी गरीबी के कारण अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता को जोखिम में डालने वाले कारावास की संभावना को अंतर्वलित करने वाले

विचारण में स्वयं के लिए विधिक प्रतिनिधित्व करवाने में असमर्थ रहा है, राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सहायता पाने के लिए हकदार है और क्या उस पर निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन करना आवश्यक है अथवा उसका विचारण करने वाला मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश उसे यह सूचना देने के लिए आबद्ध है कि वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार है और उससे यह पूछने के लिए भी आबद्ध है कि क्या वह राज्य के खर्च पर अपने लिए वकील चाहता है, यदि उसे इस प्रकार सूचना नहीं दी जाती है और इसके परिणामस्वरूप वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन नहीं करता है और विचारण में किसी वकील द्वारा बिना प्रतिनिधित्व के रहता है और सिद्धदोष किया जाता है तो क्या इस प्रकार की दोषसिद्धि दूषित हो जाती है और अपास्त किये जाने योग्य है ? यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारी लगभग 50% जनसंख्या, जो गरीबी की रेखा से नीचे रह रही है और लगभग 70% अशिक्षित है तथा जनता का बहुत बड़ा वर्ग अभी भी यह नहीं जानता है कि यदि वे दाण्डिक विचारण में विधिक प्रतिनिधित्व कराने में असमर्थ हैं तो वे राज्य के खर्च पर निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने के लिए हकदार हैं।

2. इस अपील को करने के तथ्य महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि हमारे विचारार्थ उठाया गया प्रश्न पूर्णतः विधि का प्रश्न है। किन्तु इस पर भी तथ्यों को मोटे तौर पर संक्षेप में उल्लिखित किया जा सकता है चूंकि वे उस पिछली पृष्ठभूमि को बतलाते हैं जिनके विरुद्ध हमारे समक्ष विधि का प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ है।

3. अपीलार्थी और 5 अन्य अभियुक्त इस अभिकथन के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506 के अधीन इस अपराध के लिए अरुणाचल प्रदेश में अलोंगी स्थित सियांग घाटी के अपर उपआयुक्त के न्यायालय में आरोपित किए गए थे कि अपीलार्थी और अन्य 5 अभियुक्तों ने अलोंगी के केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के सहायक इंजीनियर, श्री एच० एल० कोहली को अभियुक्त के स्थानान्तरण आदेश, जो उसके द्वारा पारित किए गए थे, रद्द करने के लिए उसे बाध्य करने की दृष्टि से धमकी दी थी। मामले का वारण्ट मामले के रूप में विचारण किया गया था और विचारण में अभियोजन पक्ष की ओर से 8 साक्षियों की परीक्षा की गई थी। अपीलार्थी का किसी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था क्योंकि स्वीकार्यतः वह अपनी गरीबी के कारण विधिक प्रतिनिधित्व कराने में असमर्थ था और परिणाम यह था कि वह अभियोजन पक्ष के साक्षियों की

प्रतिपरीक्षा नहीं करा गया था। अपीलार्थी प्रतिरक्षा में 7 साक्षियों की परीक्षा करना चाहता था किन्तु उनमें से दो की परीक्षा नहीं की जा सकी क्योंकि वे बहुत दूर रह रहे थे, तथापि न्यायालय की राय में वे महत्वपूर्ण साक्षी नहीं थे। अपीलार्थी द्वारा बिना किसी विधिक सहायता के शेष 5 साक्षियों की परीक्षा की गई थी। परिणाम यह था कि विचारण की समाप्ति पर चार अभियुक्त दोषमुक्त कर दिये गए थे किन्तु अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त भारतीय दण्ड संहिता की धारा 506 के अधीन अपराध के लिए सिद्धदोष किया गया था और उन्हें दो वर्ष की कालावधि के लिए साधारण कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया गया था।

4. इस पर अपीलार्थी ने गोहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। इस अपील के समर्थन में कई दलीलें दी गई थीं किन्तु उन्हें विनिर्दिष्ट करना आवश्यक नहीं है क्योंकि एक दलील ऐसी है जो हमारी राय में मामले की जड़ तक जाती है और उसका अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दण्डादेश को अविधिमान्य करने का प्रभाव रखती है। वह दलील यह है कि अपीलार्थी को उसकी प्रतिरक्षा के लिए निःशुल्क विधिक सहायता नहीं दी गई थी इसलिए विचारण दूषित हो गया था। अपीलार्थी द्वारा अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष यही एक ही दलील दी गई थी किन्तु उच्च न्यायालय का यह मत था कि यद्यपि निःसंदेह निःशुल्क विधिक सहायता दिया जाना अपीलार्थी का अधिकार था तो भी अपीलार्थी ने विधिक सहायता के लिए प्रार्थना करते हुए विद्वान् अवर उप-आयुक्त को कोई प्रार्थना नहीं की थी और चूंकि उसके द्वारा विधिक सहायता के लिए कोई भी आवेदन नहीं किया गया था इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि विधिक सहायता देने में असफलता से विचारण दूषित हो गया। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि कर दी थी। किन्तु इस तथ्य को देखते हुए कि वह पहले से ही लगभग 8 मास की कालावधि के लिए जेल में है उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अपीलार्थी को दिया गया दण्डादेश उसके द्वारा पहले से ही भुगते गए दण्डादेश तक कम कर दिया जाता है तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। तद्नुसार, अपीलार्थी को तुरन्त मुक्त करने का आदेश दिया गया किन्तु चूंकि उसके विरुद्ध पारित दोषसिद्धि का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था इसलिए उसने इस न्यायालय से विशेष इजाजत प्राप्त करके वर्तमान अपील की है।

5. **हुसैनआरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना**[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के परिणामस्वरूप अब यह बात सुस्थिर है कि निःशुल्क विधिक सेवा का अधिकार स्पष्ट रूप से किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का एक आवश्यक संघटक है और उसे अनुच्छेद 21 की प्रत्याभूति में विवक्षित होना अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति का सांविधानिक अधिकार है जो गरीबी, निर्धनता या सम्पर्कवर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील नियुक्त करने और विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है तथा राज्य ऐसे किसी अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करने के दायित्वाधीन है यदि मामले की परिस्थितियां और न्याय की आवश्यकता इस प्रकार की अपेक्षा करे और अभियुक्त व्यक्ति ऐसे वकील की व्यवस्था के बारे में आपत्ति न करे। इस न्यायालय ने यह बतलाया है कि ऐसे किसी कैदी के लिए यह युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया का आवश्यक संघटक है जो न्यायालय की प्रक्रिया की मार्फत अपनी स्वतंत्रता चाहता है कि उसे विधिक सेवा उपलब्ध करवाई जाए। यह मत **एम० एच० होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य**[2] के पूर्ववर्ती मामले में भी इस न्यायालय की न्यायपीठ द्वारा अपनाया गया था। इसलिए अब इसे सुस्थिर विधि के रूप में माना जा सकता है कि राज्य के खर्च पर निःशुल्क सहायता किसी अपराध, जिसमें उसके जीवन या वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए खतरा अन्तर्वलित हो, के अभियुक्त व्यक्ति का मूल अधिकार है और यह मूल अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा विहित युक्तियुक्त, उचित और न्यायसंगत प्रक्रिया की अपेक्षा में विवक्षित है। यद्यपि इस बात को अवश्य ही मान्यता दी जानी चाहिए कि ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें आर्थिक अपराध या वेश्यावृत्ति या बालकों के दुरुपयोग को प्रतिषिद्ध करने वाली विधि के विरुद्ध अपराध और उसके जैसे समान अपराध अन्तर्वलित होने वाले मामले हो सकते हैं जहां सामाजिक न्याय की यह अपेक्षा हो सकती है कि राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवा न दी जाए। इन परिस्थितियों में इस बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी राज्य के खर्च पर निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार था जब ऐसे अपराध का, जिसके साबित होने पर वह स्पष्ट रूप से दो वर्ष की अवधि के कारावास के लिए दायी होता, दोषसिद्ध किए जाने के कारण उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता खतरे में पड़ गई।

[1] [1980] 2 उम० नि० प० 772 = 1979 (3) एस० सी० आर० 532.

[2] 1978 (3) एस० सी० सी० 544.

6. किन्तु प्रश्न यह है कि क्या अभियुक्त को यह मूल अधिकार केवल इस आधार पर इन्कार किया जा सकता है यदि वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन नहीं करता है। क्या अभियुक्त द्वारा इस मूल अधिकार का प्रयोग निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन करने की शर्त के अध्यधीन है ताकि यदि वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए आवेदन नहीं करता तो विचारण न्यायालय उसे पर्याप्त विधिक प्रतिनिधित्व उपलभ्य करवाये बिना वैध रूप से आगे कार्यवाही कर सकता है? अब यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लगभग 70% लोग अशिक्षित हैं और इनसे भी अधिक प्रतिशत के लोग विधि द्वारा उन्हें प्रदत्त अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। शिक्षित व्यक्ति भी यह नहीं जानते कि विधि के अधीन उनके अधिकार और हक क्या हैं। विधिक जागरूकता का ही यह अभाव है जो उन अधिकारों और फायदों की प्रवंचना, शोषण और वंचित किये जाने के लिए उत्तरदायी है जिससे इस देश का गरीब व्यक्ति पीड़ित है। उनकी विधिक आवश्यकताएं सदैव ही संकटमूलक होती हैं क्योंकि उनकी अनभिज्ञता उन्हें विधिक कठिनाइयों का पूर्वानुमान लगाने और समय पर परामर्श और सलाह के लिए वकील के पास जाने से निवारित करती है और उनकी गरीबी विधिक समस्याओं और कठिनाइयों पर प्रभाव डालती है जब वे सामने आती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी अनभिज्ञता और अशिक्षित होने के कारण वे स्वावलम्बी नहीं हो सकते और स्वयं की भी सहायता नहीं कर सकते। विधि उनकी संरक्षक नहीं रह जाती है क्योंकि उन्हें यह नहीं मालूम होता कि वे विधि के संरक्षण के लिए हकदार हैं और वे अपने शोषण को समाप्त करने के लिए और अपने अधिकारों की जीत के लिए विधिक सेवा कार्यक्रमों का लाभ उठा सकते हैं। परिणाम यह है कि उनके साथ गरीबी पूर्ण असहायता के लिए एक शर्त बन जाती है। यह दयनीय स्थिति, जिसमें गरीब स्वयं को पाता है, गरीब लोगों के बीच विधिक जागरूकता पैदा करके कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है। इसीलिए देश में विधिक सहायता आन्दोलन के कार्यक्रम की मुख्य मदों में से एक मद विधिक शिक्षा को अग्रसर करने के रूप में सदैव मान्यता प्राप्त है। इन परिस्थितियों में विधिक सहायता एक उपहास होगी यदि उसे गरीब, अनभिज्ञ और अशिक्षित अभियुक्त पर निःशुल्क विधिक सेवा की मांग करने के लिए छोड़ दिया जाता है। विधिक सहायता केवल एक कागजी वचन होगा और उससे उसका प्रयोजन विफल हो जाएगा। यही कारण है जिससे खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य[1] के

[1] [1981] 4 उम० नि० प० 956=1981 (2) एस० सी० आर० 408.

मामले में हमने यह निर्णय दिया है कि मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश, जिसके समक्ष अभियुक्त हाजिर होता है, अभियुक्त को यह जानकारी देने की बाध्यता के अधीन होना चाहिए कि यदि वह गरीबी या निर्धनता के कारण वकील की सेवाएं लेने में असमर्थ है तो वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सेवा प्राप्त करने के लिए हकदार है। हम खेद प्रकट करते हैं कि उस मामले में जहां अभियुक्त अंध कैदी थे वहां न्यायिक मजिस्ट्रेट अपनी बाध्यता का निर्वहन करने में असफल रहा था और स्वयं ने केवल यह मत व्यक्त करके दलील दी कि अंध कैदियों द्वारा किसी प्रकार के विधिक प्रतिनिधित्व की कोई मांग नहीं की गई थी और इसलिए उसकी व्यवस्था नहीं की गई थी। तदनुसार हमने यह निदेश दिया कि "देश में मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश ऐसे प्रत्येक अभियुक्त को, जो उनके समक्ष हाजिर होते हैं और जिनका गरीबी या दरिद्रावस्था के कारण किसी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं होता है, सूचित करेंगे कि वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सेवाओं के लिए हकदार है जब तक कि वह राज्य द्वारा दी गई निःशुल्क विधिक सेवाओं का लाभ उठाने के लिए रजामन्द न हो। हमने देश में प्रत्येक राज्य को यह साधारण निदेश भी दिया था कि "ऐसे अभियुक्त को, जो गरीबी, दरिद्रावस्था या सम्पर्क वर्जित परिस्थितियों के कारण किसी वकील को नियुक्त करने में असमर्थ हो, निःशुल्क विधिक सेवा देने के लिए उपबंध होना चाहिए। एकमात्र शर्त यह होनी चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित अपराध ऐसा होना चाहिए कि दोषसिद्धि पर उसका परिणाम कारावास का दण्डादेश होगा और वह ऐसी प्रकृति का होगा कि मामले की परिस्थितियों और सामाजिक न्याय की आवश्यकताओं से यह अपेक्षित हो कि उसे निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। यह संभव हो सकता है कि चूंकि विचारण **खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य**[1] के मामले में इस न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा से पूर्व विद्वान् अपर उप-आयुक्त के समक्ष हुआ था, इसलिए विद्वान् अपर उपायुक्त ने अपीलार्थी को यह सूचित नहीं किया कि यदि वह अपने वित्तीय स्रोतों की कमी के कारण वकील नियुक्त करने की स्थिति में नहीं है तो वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार था और न ही उससे यह पूछा गया कि क्या वह निःशुल्क विधिक सहायता चाहेगा। किन्तु यह आश्चर्यकारी बात है कि **खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य**[1] के मामले में तारीख 19 दिसम्बर, 1980 को, जब उस मामले में विनिश्चय किया गया था, विधि की इस घोषणा के बावजूद उच्च न्यायालय ने यह मत

[1] [1981] 4 उम० नि० प० 956=1981 (2) एस० सी० आर० 408.

अपनाने पर बल दिया था कि चूंकि अपीलार्थी ने निःशुल्क विधिक सहायता के लिए कोई आवेदन नहीं किया था इसलिए राज्य के खर्चे पर उसे कोई भी विधिक प्रतिनिधित्व न देने में कोई भी असंवैधानिकता अंतर्वलित नहीं थी। यह बात स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में विद्वान् अपर उपायुक्त ने अपीलार्थी को यह जानकारी नहीं दी कि वह निःशुल्क विधिक सहायता के लिए हकदार था और न ही उन्होंने अपीलार्थी से यह बात पूछी कि क्या वह राज्य के खर्चे पर अपने लिए वकील नियुक्त करवाना चाहता है। परिणाम यह था कि अपीलार्थी वकील द्वारा प्रतिनिधित्व किए बिना रहा और अन्ततोगत्वा विचारण का परिणाम उसकी दोषसिद्धि में हुआ। स्पष्ट रूप से यह अनुच्छेद 21 के अधीन अपीलार्थी के मूल अधिकार का अतिक्रमण था और तद्नुसार विचारण को घातक सांविधानिक त्रुटि के कारण दूषित अभि-निर्धारित किया जाना चाहिए और अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलिखित दोष-सिद्धि और दण्डादेश अवश्य ही अपास्त किये जाने चाहिएं।

7. अपीलार्थी ने यह दलील दी कि यदि उसके विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दण्डादेश अपास्त किया जाता है तो विद्वान् अपर उपायुक्त द्वारा उसकी दोषसिद्धि के आधार पर अपीलार्थी को सेवा से पदच्युत करने वाला आदेश भी अवश्य ही अभिखण्डित किया जाना चाहिए और उसे पिछली मजदूरी सहित सेवा में बहाल किया जाना चाहिए। अब यह बात सही है कि अपीलार्थी दाण्डिक अपराध के लिए दोषसिद्ध किए जाने के कारण कोई जांच किए बिना सेवा से पदच्युत कर दिया गया था और चूंकि अपीलार्थी की दोषसिद्धि हमारे द्वारा अपास्त कर दी गई है इसलिए पदच्युति का आदेश भी अवश्य ही नामंजूर किया जाना चाहिए और अपीलार्थी को पिछली मजदूरी सहित सेवा में पुनर्नियुक्त किया जाना चाहिए किन्तु हमारे द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि को अभिखण्डित करने का परिणाम यह होगा कि अपीलार्थी को राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सहायता देने के पश्चात् उसका विधि के अनुसार पुनः विचारण किया जाएगा और उसका यह अर्थ होगा कि अपीलार्थी को पुनः दोषसिद्धि और कारावास की जोखिम बनी रहेगी और इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अन्ततोगत्वा आरोपित अपराध उसके विरुद्ध साबित हो सकता है और वह जेल जा सकता है और उसकी सेवा भी समाप्त हो सकती है। इसलिए हम यह महसूस करते हैं कि इससे न केवल न्याय का उद्देश्य पूरा होगा किन्तु अपीलार्थी के हित में भी यह होगा कि उसके विरुद्ध कोई नवीन विचारण न किया जाए और उसे पिछली मजदूरी के बिना सेवा में बहाल किया जाए। तद्नुसार, हम यह

निदेश देते हैं कि अपीलार्थी को सेवा में बहाल किया जाए किन्तु किसी भी प्रकार की पिछली मजदूरी का दावा करने के लिए हकदार नहीं होगा और इसके विरुद्ध कोई भी नवीन विचारण नहीं किया जाए। अपील का इन शब्दों में निपटारा किया जाता है।

अपील का निपटारा किया गया।

जैन/चन्द

(1987) 1 उम० नि० प० 690 :
(1986) 3 SCC 596 :
AIR 1986 SC 1773 :
[1987] 1 उम० नि० प० 690

शीला बरसे और एक अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

5 अगस्त, 1986

मुख्य न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती और न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39 (च) [सबालित बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) की धारा 1 और 5]—लोक हितार्थ मुकदमे–16 वर्ष से कम आयु के बालकों का जेलों में निरुद्ध किया जाना—समाज-सेवक द्वारा उन्हें मुक्त किए जाने की ईप्सा की जानी—यद्यपि अनेक राज्यों में 1960 जैसे फायदाप्रद विधान पारित कर दिए गये हैं, तथापि उन्हें प्रवृत्त नहीं किया गया है—अत: उच्चतम न्यायालय ने ऐसे फायदाप्रद कानूनों को तुरंत प्रवृत्त किए जाने तथा उनके सम्बन्ध में प्रशासनिक कार्यवाई किए जाने का निदेश इसलिए दिया क्योंकि बालक राष्ट्रीय सम्पत्ति होते हैं और उनके व्यक्तित्व का विकास सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य है।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस याचिका में यह अनुतोष चाहा गया है कि 16 वर्ष से कम आयु के जो बालक विभिन्न राज्यों की जेलों में बंद हैं, उन्हें छोड़ा जाय, उनके बारे में तथा किशोर न्यायालयों, बालगृहों, आदि के विषय में पूरी जानकारी प्रस्तुत की जाए तथा जिला न्यायाधीश जेलों और उप-जेलों का उस दृष्टि से निरीक्षण करें और राज्य विधिक सहायता बोर्ड बाल अपराधियों को यथा-समय कानूनी सहायता दिये जाने की व्यवस्था करें। भारत संघ तथा सभी राज्य और संघ राज्य-क्षेत्र इसमें प्रत्यर्थी हैं। न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किए जाने पर उनमें से कुछ ने शपथपत्र दाखिल किए जिनसे प्रकट हुआ कि 16 वर्ष से कम आयु के बहुत से बालक जेलों में बन्द हैं। अत: इस न्यायालय ने देश के

सभी जिला न्यायाधीशों को निदेश दिया कि वे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से जेलों और उप-जेलों का इस दृष्टि से दौरा कराऐं कि 16 वर्ष से कम आयु के कितने बालक कहां, क्यों और कब से किन परिस्थितियों में बन्द हैं, वे न्यायालय के समक्ष पेश किए गये हैं या नहीं और उन्हें क्या विधिक सहायता प्रदान की गई है ? यह निदेश दिया गया कि संबंधित जिला न्यायाधीश अपनी रिपोर्टें रजिस्ट्रार के माध्यम से दो मास के भीतर भेजें। किन्तु बहुत से जिला न्यायाधीशों ने रिपोर्टें नहीं भेजीं और रजिस्ट्रारों ने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, अतः जिला न्यायाधीशों को फिर यह निदेश दिया गया कि वे 21-8-1986 तक रजिस्ट्रार के माध्यम से अपनी रिपोर्टें भेज दें। याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—किसी भी सभ्य समाज की यह मूलभूत अपेक्षा है तथा बालकों से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों में इसकी व्यवस्था भी की गई है कि बालक जेलों में परिरुद्ध न रखे जाएं क्योंकि जेल में बन्दी करण का प्रभाव अमानवीय होता है तथा बालक के संवर्धन और विकास के लिए हानिकारक होता है। किन्तु ऐसी दशा में भी जो तथ्य न्यायालय के समक्ष पेश किए गए हैं जिनमें गृह मन्त्रालय और समाज कल्याण विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण भी सम्मिलित हैं, उनसे यह दर्शित होता है कि 16 वर्ष से कम आयु के बालक एक बहुत बड़ी संख्या में देश के विभिन्न भागों की जेलों में परिरुद्ध हैं। (पैरा 2)

याची ने यह मामला न्यायालय के समक्ष लाकर, वास्तव में समाज सेवा की है। उसका आशय देश के विभिन्न भागों का दौरा करने का है ताकि वह मामले से सुसंगत अतिरिक्त सूचना एकत्र कर सके तथा प्रत्यर्थी राज्यों द्वारा फाइल किय गये प्रतिशपथ-पत्रों में दिये गये तथ्यों के विवरण के सही होने का सत्यापन कर सके। न्यायालय की राय में याची को ऐसी सूचना मिलनी ही चाहिए तथा उसे कारागारों, बालक सुधार-गृहों, प्रेक्षण-गृहों, बोर्स्टल विद्यालयों तथा अपचारी अथवा त्यक्त बालकों के आवासन से सम्बद्ध अन्य सभी संस्थाओं का दौरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह कोई प्रतिकूल मुकदमें बाजी नहीं है तथा याची को किसी विरोधी पक्षकार के रूप में देखने की आवश्यकता नहीं है। उसे वस्तुतः स्वेच्छया वह कार्य करना है जो राज्य सरकार को करना चाहिये

था। न्यायालय का निर्देश है कि प्रत्यर्थी संख्या 1, संघ सरकार, फिलहाल इस न्यायालय की रजिस्ट्री में दो सप्ताह के भीतर 10,000 रुपये की रकम का निक्षेप करेगी ताकि याची अपने खर्चों की पूर्ति के लिए उसका आहरण कर सके। (पैरा 8)

यह विधान सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति के लिए है तथा यह फायदाप्रद कानून है। राज्य विधानमण्डलों ने यह समाधान हो जाने के पश्चात् ही विधि बनाई है कि यह समाज, विशेष रूप से बालकों के हित में आवश्यक है। उक्त कानून को प्रवृत्त न करने का कोई न्यायोचित्य नहीं है। उदाहरणार्थ, उड़ीसा को ही लें, यद्यपि वहां 1982 का अधिनियम है और चार वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उसे प्रवृत्त नहीं किया गया है साधारणतः यह विनिश्चित करना राज्य सरकार का काम है कि कोई विशेष कानून कब प्रवृत्त किया जाय, किन्तु वर्तमान व्यवस्था में हमारी राय में यह उचित है कि प्रत्येक राज्य किसी विलम्ब के बिना यह सुनिश्चित करे कि उक्त अधिनियम प्रवृत्त किया जाय तथा उसका न्यायकरण उसमें अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार किया जाय। ऐसे राज्य जहां उक्त अधिनियम विद्यमान है, किन्तु जहां वे प्रभावी नहीं बनाये गये हैं, 31 अगस्त, 1986 तक कोई उचित शपथपत्र फाइल करके यह बतायें कि अधिनियम वहां क्यों नहीं लागू किया गया है यदि तब तक उक्त अधिनियम वहां प्रभावी न हुआ हो। (पैरा 4)

दांडिक मूल अधिकारिता : 1985 की रिट याचिका (दांडिक) सं० 1451

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका।

याची की ओर से	याची स्वयं
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री एम० बी० भस्मे, हरबंस लाल, ए० एम० भस्मे, बद्री दास शर्मा, वी० बी० सुब्बा राव, आर० कुमार, डी० ऐन० मुखर्जी, आर० मुखर्जी, तापस राय, दिलीप सिन्हा और जे० आर० दास

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० पी० एन० भगवती ने दिया।

मु० न्या० भगवती–संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस आवेदन में देश के विभिन्न राज्यों की जेलों में निरुद्ध 16 वर्ष से कम आयु के

बालकों के मुक्त किये जाने, जेलों में निरुद्ध बालकों के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना पेश किये जाने, किशोर न्यायालयों, सुधार-गृहों और विद्यालयों की विद्यमानता के बारे में सूचना दिये जाने और यह निदेश दिये जाने कि जिला न्यायाधीश यह सुनिश्चित करने के लिये कि अभिरक्षाधीन बालकों की उचित देखभाल की जाती है, अपनी अधिकारिता के भीतर आने वाली जेलों अथवा उप-जेलों का दौरा करें तथा राज्य विधिक सहायता बोर्ड को भी यह निदेश दिये जाने की प्रार्थना की गई है कि वे यह सुनिश्चित करने के लिये ड्यूटी काउंसेल की नियुक्ति करें कि जिन बालकों के विरुद्ध दांडिक मामले चलाये जाते हैं अथवा जो उनमें अन्तर्वलित होते हैं, उनको आवश्यकता पड़ने पर विधिक संरक्षण उपलब्ध हो सके। भारत संघ तथा सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र प्रत्यर्थियों के रूप में शामिल किये गये हैं।

2. 24 सितम्बर, 1985 को सभी प्रत्यर्थियों को सूचना भेजी गयी। उक्त सूचना के उत्तर में कुछ प्रत्यर्थी राज्यों ने प्रतिशपथपत्र फाइल किये। 31 मार्च, 1986 को मामला 15 अप्रैल, 1986 तक के लिए इस उद्देश्य से स्थगित कर दिया गया जिससे कि वे प्रत्यर्थी भी अपने प्रतिशपथपत्र फाइल कर सकें जिन्होंने अभी तक फाइल नहीं किये थे। 15 अप्रैल 1986 को इस न्यायालय ने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले काउन्सेल की सुनवाई करने के पश्चात यह मताभिव्यक्ति की–

"..........किसी भी सभ्य समाज की यह मूलभूत अपेक्षा है तथा बालकों से संबंधित विभिन्न कानूनों में इसकी व्यवस्था भी की गई है कि बालक जेलों में परिरुद्ध न रखे जावें, क्योंकि जेल में बन्दी करण का प्रभाव अमानवीय होता है तथा बालक के संवर्धन और विकास के लिये हानिकारक होता है। किन्तु ऐसी दशा में भी जो तथ्य हमारे समक्ष पेश किये गये हैं, जिसमें गृह मंत्रालय और समाज कल्याण विभाग द्वारा किये गये सर्वेक्षण भी सम्मिलित हैं, उनसे यह दर्शित होता है कि 16 वर्ष से कम आयु के बालक बहुत बड़ी संख्या में देश के विभिन्न भागों की जेलों में परिरुद्ध हैं।"

इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि देश के जिला न्यायाधीश अपनी अधिकारिता के भीतर आने वाले जिलों की जेलों और उप-जेलों का दौरा करने के लिये मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को नामनिर्दिष्ट करें जिससे कि यह अभिनिश्चित किया जा सके कि 16 वर्ष से कम आयु के कितने बालक जेलों में परिरुद्ध हैं, उन पर

जिन अपराधों के संबंध में आरोप लगाये गये हैं, उनमें से कितने–प्रश्नगत जेल में लाये जाने से पहले–उसी जेल अथवा उससे पहले किसी अन्य जेल में–निरुद्ध हैं, वे बाल न्यायालय के समक्ष पेश किये गये हैं अथवा नहीं और यदि हां, तो कब और कितनी बार तथा उन्हें कोई विधिक सहायता दी गई है अथवा नहीं। न्यायालय ने यह निदेश भी दिया कि प्रत्येक जिला न्यायाधीश इस निदेश को उच्चतम प्राथमिकता देगा तथा जिले की प्रत्येक जेल का अधीक्षक इस सम्बन्ध में जिला न्यायाधीश अथवा मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट को पूर्ण सहायता देगा, जिसे उस जेल का, जिसका वह दौरा कर रहा हो, रजिस्टरों का निरीक्षण करने तथा किन्हीं ऐसी अन्य दस्तावेजों का भी निरीक्षण करने का हक होगा जिनका वह निरीक्षण करना चाहे तथा वह आवश्यकता पड़ने पर बालकों का साक्षात्कार भी करेगा, जिससे कि सन्देह की किसी दशा में उसे सही सूचना प्राप्त हो सके। जिला न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा न्यायिक मजिस्ट्रेट, यथास्थिति, आज से 10 सप्ताह के भीतर इस न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। रिपोर्ट में इस बात का भी कथन किया जायेगा कि उसके जिले में बालकों के लिये कोई बाल सुधार गृह, प्रतिप्रेषण गृह अथवा प्रेक्षण गृह विद्यमान है अथवा नहीं और ऐसा कोई सुधार गृह आदि होने की दशा में, वह यह अभिनिश्चित करने के लिये उसका निरीक्षण करेगा कि उसमें बालक किन दशाओं में रखे जाते हैं और यह कि उनमें शैक्षिक अथवा व्यवसायिक प्रशिक्षण की सुविधायें विद्यमान हैं अथवा नहीं। प्रत्येक जिला न्यायाधीश ऐसी रिपोर्ट संबंधित उच्च न्यायालय में रजिस्ट्रार के माध्यम से इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करेगा। प्रत्येक राज्य सरकार यह कथन करते हुये शपथपत्र भी फाइल करेगी कि उसके पास कितने बाल सुधार गृह, प्रतिप्रेषण गृह, और प्रेक्षण गृह हैं तथा ऐसे बाल सुधार-गृहों, प्रतिप्रेषण-गृहों अथवा प्रेक्षण-गृहों में कितने अन्तःवासी रखे जाते हैं। हम प्रत्येक राज्य के राजकीय विधिक सहायता और सलाह बोर्ड को भी अथवा संबंधित राज्य में विद्यमान किसी अन्य विधिक सहायता संगठन को यह निदेश देंगे कि वह जेलों में परिरुद्ध 16 वर्ष से कम आयु के बालकों को विधिक सहायता देने के प्रयोजनार्थ सप्ताह में एक बार संबंधित राज्य की प्रत्येक जेल में दो वकीलों को भेजे। उक्त रिट याचिका 17 जुलाई, 1986 तक

के लिए स्थगित कर दी गई।

3. 24 अप्रैल, 1986 को न्यायालय ने फिर से निम्नलिखित आदेश दिया–

> "हमने उक्त रिट याचिका सुनवाई और अन्तिम निपटारे के लिऐ 17 जुलाई, 1986 तक के लिये स्थगित कर दी है, किन्तु हम यह महसूस करते है कि उस पर उस समय जब खण्ड न्यायपीठ अवकाश के दौरान बैठेगा, सुनवाई करनी वांछनीय होगी। हम यह निदेश देते कि मामला अन्तिम निपटारे के लिऐ इस न्यायालय की खण्ड पीठ के समक्ष 24 जून, 1986 को पेश किया जाय। हमने जिला न्यायाधीशों को 15 अप्रैल, 1986 के अपने आदेश के अनुसार अपनी रिपोर्टें भेजने के लिए दो महीने का समय दिया है। इस बारे में नये सिरे से सूचना जिला न्यायाधीशों को उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों के माध्यम से भेज दी जाये। हम यहाँ इस बात की पुनरावृत्ति करना चाहेंगे कि जैसे ही वे रिपोर्टें प्राप्त हों, उनकी प्रतियां अवकाश के दौरान ही अधिवक्ताओं को दे दी जायें......"

उसके पश्चात उक्त रिट याचिका 12 जुलाई, 1986 को लम्बे अवकाश के दौरान सुनवाई हेतु सूचीबद्ध कर ली गई। न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि अनेक जिला न्यायाधीशों से पहले निदेश के उत्तर में रिपोर्टें प्राप्त हो गई थीं, तो भी अनेक न्यायाधीशों ने अभी तक अपनी रिपोर्टें नहीं भेजी है। इस संबंध में न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की–

> "यह बात कुछ चौंका देने वाली है कि यद्यपि हमने जिला न्यायाधीशों/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों को काफी समय पहले निदेश देते हुये यह निदेश दिया था कि वे न केवल जिला जेलों, बल्कि अपने जिलों के उप-जेलों के भी निरीक्षण की अपनी रिपोर्टें 10 जून, 1986 (24-6-86) को अथवा उससे पहले भेज दें, तो भी अनेक जिलों के संबंध में और विशेष रूप से जिलों के उप-कारागारों के संबंध में अभी तक रिपोर्टें प्राप्त नहीं हुई है। यह निदेश देने का हमारा प्रस्ताव है कि रिट याचिका की अगली सुनवाई के समय तक ये रिपोर्टें शीघ्रातिशीघ्र प्रस्तुत कर दी जायें। उच्च न्यायालय से हमारी यह प्रार्थना करने में भी बहुत उत्सुकता है कि वे इन रिपोर्टों के प्रस्तुतीकरण का

मानीटरन करें और इसलिये हमने मामले में हाजिर होने वाले काउन्सेल से अनुरोध किया है कि वह इस सम्बन्ध में रचनात्मक सुझाव दे।"

15 अप्रैल, 1986 के आदेश में उल्लिखित समय के पश्चात् 6 सप्ताह और बीत जाने के बाद भी आज किये गये विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि अनेक जिला न्यायाधीशों ने उक्त निदेश का अनुपालन नहीं किया है। इस न्यायालय का यह आशय था कि जिला न्यायाधीशों की रिपोर्टें संबंधित उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के माध्यम से इस न्यायालय की रजिस्ट्री को भेजी जातीं। इसका स्पष्ट रूप से यह अभिप्राय था कि उक्त निदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का कर्तव्य उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों का था। हमें यह देखकर चिन्ता और आश्चर्य दोनों ही हुये हैं कि शीर्षस्थ न्यायालय द्वारा दिये गये निदेश का जिला न्यायाधीशों ने, जो विधिक पद्धति के सोपानतन्त्र में प्रभावी परिकरण हैं, उचित रूप से अनुपालन नहीं किया है। न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर रिपोर्टों को प्रस्तुत करने में हुई असफलता के कारण उक्त रिट याचिका की सुनवाई एक से अधिक बार स्थगित करनी पड़ी है। हमें यह देख कर भी अचम्भा हुआ है कि उच्च न्यायालय इस संबंध में अलग-थलग और अन्यमनस्क बने रहे हैं और उन्होंने यह सुनिश्चित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है कि जिला न्यायाधीश इस न्यायालय के आदेश में उल्लिखित समय के भीतर रिपोर्टें प्रस्तुत करते। हम निदेश देते हैं कि ऐसा प्रत्येक व्यतिक्रमी जिला न्यायाधीश जिसने अब तक रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है, अवश्य उक्त निदेश का अनुपालन करेगा और उच्च न्यायालय के माध्यम से 31 अगस्त, 1986 तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगा तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय का रजिस्ट्रार यह सुनिश्चित करेगा कि जो निदेश अब दिया जा रहा है, उसका अनुपालन किया जावे।

4. संविधान के अनुच्छेद 39 (च) में यह उपबंधित है कि राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जायें और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जावे। नागालैण्ड राज्य को छोड़कर प्रत्येक राज्य के पास एक बालक अधिनियम है। वस्तुस्थिति यह है कि कुछ अधिनियम, 1976 के संशोधन द्वारा

अनुच्छेद 39 में उपर्युक्त खण्ड के समावेश के पहले से ही अस्तित्वशील है। यद्यपि उक्त अधिनियम कानून में सम्मलित है, तो भी कुछ राज्यों में उक्त अधिनियम अभी तक प्रवृत्त नहीं किया गया है। यह विधान सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति के लिये है तथा यह फायदाप्रद कानून है। राज्य विधानमण्डलों ने यह समाधान हो जाने के पश्चात् ही विधि बनाई है कि वह समाज, विशेष रूप से बालकों के हित में आवश्यक है। उक्त कानून को प्रवृत्त न करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है। उदाहरणार्थ, उड़ीसा को ही लें, यद्यपि वहाँ 1982 का अधिनियम है और चार वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उसे प्रवृत्त नहीं किया गया है। साधारणतः यह विनिश्चित करना राज्य सरकार का काम है कि कोई विशेष कानून कब प्रवृत्त किया जाये, किन्तु वर्तमान व्यवस्था में हमारी राय में यह उचित है कि प्रत्येक राज्य किसी विलम्ब के बिना यह सुनिश्चित करे कि उक्त अधिनियम प्रवृत्त किया जाये तथा उसका न्यायकरण उसमें अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाये। ऐसे राज्य जहाँ उक्त अधिनियम विद्यमान है, किन्तु जहाँ वह प्रभावी नहीं बनाया गया है, 31 अगस्त, 1986 तक कोई उचित शपथपत्र फाइल करके यह बताएं कि अधिनियम वहाँ क्यों नहीं लागू किया गया है, यदि तब तक उक्त अधिनियम वहाँ प्रभावी न हुआ हो।

5. विभिन्न राज्यों में प्रचलित जेल मैन्युअलों में परिदर्शकों की एक नामनिर्दिष्ट समिति है तथा जिला और सेशन न्यायाधीश निरपवाद रूप से परिदर्शकों में से होता है। परिदर्शकों को रखने का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि जहाँ तक जेलों में निरुद्ध सिद्धदोष और विचाराधीन बन्दियों का संबंध है, मैन्युअल के उपबंधों का कठोरता से अनुपालन किया जाये। जेल में रहने के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता में कटौती होती है। अतः यह आवश्यक है कि मैन्युअल में उपबंधित आवश्यक रक्षोपायों का कठोरता से अनुपालन किया जाये तथा बन्दियों को उक्त नियम पुस्तक में अन्तर्विष्ट उपबंधों का पूरा फायदा मिले। हम निदेश देते हैं कि प्रत्येक जिला और सेशन न्यायाधीश दो महीने में कम-से-कम एक बार जिला जेल का दौरा करे तथा अपने दौरे के दौरान वह सिद्धदोष और विचाराधीन दोनों प्रकार के बालक बन्दियों के बारे में विशेष सावधानी बरते और जब कभी भी उसे ऐसा लगे कि जेल में निरुद्ध बालकों के

सम्बन्ध में कोई व्यतिक्रम किया गया है, वह उसकी ओर प्रशासन तथा उसके उच्च न्यायालय का भी ध्यान आकर्षित करे। हमें आशा और विश्वास है कि जब भी उच्च न्यायालयों में ऐसी रिपोर्टें प्राप्त होंगी, उन पर विचार करके प्रभावी कार्यवाई की जायेगी। यहाँ यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उच्च न्यायालय पर यह बाध्यता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उसकी अधिकारिता के अन्तर्गत न्यायिक अभिरक्षा में के सभी व्यक्तियों को इस बात का आश्वासन दिया जाये कि उन्हें जीवन की स्वीकार्य परिस्थितियाँ उपलब्ध कराई जायेंगी।

6. इस न्यायालय ने राज्य विधिक सहायता बोर्डों को यह निदेश दिया था कि वे विचाराधीन बालकों के सम्बन्ध में वकीलों की सेवाओं की सुविधा प्रदान करें। किसी भी बोर्ड से अब तक इस सम्बन्ध में कोई रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई है कि उन्होंने इस दिशा में क्या कार्यवाई की है। राज्य बोर्ड भी अब अपेक्षित सूचना 31 अगस्त, 1986 तक प्रस्तुत करेंगे।

7. इस न्यायालय ने पहले भी कतिपय अन्य निदेश दिये हैं। ऐसे सभी निदेशों का अनुपालन किया जायेगा तथा इस न्यायालय को भी विवरणियाँ 31 अगस्त, 1986 तक प्रस्तुत की जायेंगी। हमें आशा और विश्वास है कि अब इन निदेशों का अनुपालन कठोरता से किया जायेगा तथा इस उद्देश्य के लिये अब आगे कोई और निदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उक्त रिट याचिका निदेशों के लिये 8 सितम्बर, 1986 को पेश की जायेगी।

8. हमें यहाँ यह अवश्य ही अभिलिखित करना पड़ेगा कि याची ने यह मामला न्यायालय के समक्ष लाकर, वास्तव में समाज सेवा की है। उसने हमारे समक्ष यह कथन किया है कि उसका आशय देश के विभिन्न भागों का दौरा करने का है, जिससे कि वह मामले से सुसंगत अतिरिक्त सूचना एकत्र कर सके तथा प्रत्यर्थी राज्यों द्वारा फाइल किये गये प्रतिशपथपत्रों में दिये गये तथ्यों के विवरण के सही होने का सत्यापन कर सके। हमारी राय में याची को ऐसी सूचना मिलनी ही चाहिए तथा उसे जेलों, बालक सुधार-गृहों, प्रतिप्रेषण-गृहों, प्रेक्षण-गृहों, बोर्स्टल विद्यालयों तथा अपचारी अथवा त्यक्त बालकों के आवासन से सम्बद्ध अन्य सभी संस्थाओं का दौरा करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए। हम यहाँ यह बताना चाहेंगे कि यह प्रतिपक्षी का मुकदमा नहीं है तथा याची

को किसी विरोधी पक्षकार के रूप में देखने की आवश्यकता नहीं है। उसने वस्तुतः स्वेच्छया वह कार्य किया है जो राज्य सरकार को करना चाहिए था। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक राज्य उसे उसके दौरे के दौरान अपेक्षित हर प्रकार की सहायता प्रदान करेगा। हम निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी सं० 1–संघ सरकार–फिलहाल इस न्यायालय की रजिस्ट्री में दो सप्ताह के भीतर 10 हजार रुपये की रकम का निक्षेप करे जिससे कि याची अपने खर्चे की पूर्ति के लिए उसे निकाल सके।

9. हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि याची, जैसा कि ऊपर बताया गया है, विभिन्न राज्यों की बाल संस्थाओं का दौरा करने के पश्चात् जो भी सूचना एकत्र करेगी, वह इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी और उसका उपयोग इस मामले में किया जायेगा तथा वह किसी अन्य रूप में प्रकाशन के लिए आशयित नहीं है।

याचिका मंजूर की गई।

अ०/धी०

(1987) 1 उम० नि० प० 431 :
(1986) 3 SCC 632 :
AIR 1986 SC 1773 :
शीला बरसे और अन्य
बनाम
भारत संघ और अन्य
13 अगस्त, 1986

मुख्य न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती और न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र

संविधान, 1950—अनुच्छेद 39 (च) और 21 [सपठित बालक अधिनियम, 1960 की धारा 5]—तेजी से विचारण का अधिकार–बालकों को जेल में बन्द न रखकर सुधार-गृह आदि में रखना चाहिए-उनके अपराध की सूचना मिलने पर अन्वेषण 3 मास के भीतर और विचारण आरोप-पत्र प्राप्त होने से 6 मास के भीतर पूरा होना चाहिए—अन्यथा उनके विरुद्ध मामला समाप्त समझा जायगा।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में फाइल की गई इस रिट याचिका में बालकों के निरोध विषयक मुद्दे उठे हैं। उच्चतम न्यायालय ने 12 जुलाई, 1986 और 5 अगस्त, 1986 के अपने आदेशों में बालकों के जेल में निरोध के संबंध में अनेक निदेश दिए थे। उन आदेशों के बावजूद बालकों के निरोध के विषय में कोई विशेष सुधार दिखाई नहीं पड़े। अतः उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तुत मामले में इस विषय में पुनः निदेश दिये हैं। रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—राज्य सरकारों को आवश्यक प्रतिप्रेषण-गृह और संप्रेक्षण-गृह स्थापित करने चाहिए जहां अभियुक्त बालकों को अन्वेषण और

विचारण के दौरान रखा जा सके। बालकों को किसी भी कारण जेल में न रखा जाए और यदि राज्य सरकार के पास उनके प्रति प्रेक्षण-गृहों या सम्प्रेक्षण-गृहों में काफी जगह नहीं है तो बालकों को जेल की बुराइयों में रखने के बजाय जमानत पर छोड़ देना चाहिए। (पैरा 1)

बहुत से राज्यों में किशोर अपराधी न्यायालय काम नहीं कर रहे हैं और जहां किशोर अपराधी न्यायालय हैं वहां भी वे सामान्य दण्ड न्यायालयों के पद चिन्हों पर चल रहे हैं। केवल उनके नाम में अन्तर है। जो मजिस्ट्रेट सामान्य दण्ड न्यायालय में बैठता है वही किशोर अपराधी न्यायालय में बैठता है और बालकों के खिलाफ मुकदमों का विचारण यंत्रवत् करता है। यह अत्यन्त आवश्यक है और हम अपनी पूरी ईमानदारी और सच्चाई से राज्य सरकारों पर इस बात का जोर देना चाहते हैं कि वे किशोर अपराधी न्यायालयों की स्थापना करें, प्रत्येक जिले में एक-एक, और मजिस्ट्रेटों का एक विशेष काडर हो जो बालकों के मामलों पर कार्रवाई करने के लिए ठीक ढंग से प्रशिक्षित हो। यदि किशोर अपराधी न्यायालय में उनके लिए पर्याप्त काम नहीं है तो वे दूसरे दाण्डिक काम भी कर सकते हैं किन्तु वे किशोर अपराधियों के मामलों के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के लिए उचित और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होने चाहिए क्योंकि इन मामलों के लिए एक भिन्न प्रकार की प्रक्रिया तथा गुणात्मक दृष्टि से एक भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण चाहिए। (पैरा 2)

जहां ऐसे अपराध के लिए जो अधिक से अधिक 7 वर्ष के कारावास से दण्डनीय हो 16 वर्ष से कम आयु के बालकों के खिलाफ परिवाद फाइल किया जाए या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल की जाए वहां अन्वेषण परिवाद फाइल करने या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर पूरा हो जाए और यदि अन्वेषण इतने समय के भीतर पूरा न हो तो उस बालक के खिलाफ मामला समाप्त समझा जाए। यदि तीन मास के भीतर, अधिक से अधिक 7 वर्ष के कारावास से दण्डनीय अपराध के मामले में बालक के खिलाफ आरोप-पत्र फाइल किया जाए तो मामले का विचारण और निपटारा अधिक से अधिक 6 मास की अवधि के भीतर किया जाए और इस अवधि के अंतर्गत वह

समय भी शामिल होना चाहिए जो पुरोवर्ती कार्यवाहियों में लगा हो। तेजी से विचारण का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में विवक्षित एक मूल अधिकार है। यदि अभियुक्त का विचारण तेजी से नहीं किया जाता है और उसका मामला मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायालय के समक्ष बहुत लम्बे अरसे तक लम्बित रहता है तो स्पष्ट है कि तेजी से विचारण के उसके मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है जब तक कि विचारण किसी वरिष्ठ न्यायालय के अन्तरिम आदेश के फलस्वरूप न रुके या अभियुक्त मामले के विचारण में विलम्ब के लिए स्वयं न जिम्मेदार हो। तेजी से विचारण के मूल अधिकार के उल्लंघन का परिणाम यह होगा कि स्वयं अभियोजन ही इस आधार पर अभिखंडित कर दिया जायगा कि वह मूल अधिकार के उल्लंघन में है। जहां तक 7 वर्ष से अनधिक के कारावास से दण्डनीय अपराध के अभियुक्त बालक का संबंध है, परिवाद फाइल करने या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट करने की तारीख से तीन मास की अवधि को अन्वेषण के लिए अनुज्ञेय अधिकतम समय माना जायेगा और आरोप-पत्र फाइल करने से 6 मास की अवधि को वह युक्तियुक्त अवधि मानी जायेगी जिसके भीतर बालक का विचारण पूरा हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो उस बालक का अभियोजन अभिखंडित कर दिया जायेगा। भावी मामलों के संबंध में अधिकथित इस सिद्धांत या नियम को प्रभावी रूप देने के लिए प्रत्येक राज्य सरकार को निदेश दिया गया। किन्तु जहां तक 7 वर्ष से अनधिक के कारावास से दण्डनीय अपराधों से संबंधित इस समय लम्बित मामलों का संबंध है प्रत्येक राज्य सरकार को यह निदेश दिया गया कि आज से तीन मास के भीतर अन्वेषण पूरा किया जाये यदि अन्वेषण पूरा करने के बाद आरोप-पत्र फाइल नहीं किया गया है और यदि आरोप-पत्र फाइल किया जा चुका है तो विचारण आज से 6 मास की अवधि के भीतर पूरा किया जाए और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अभियोजन अभिखंडित कर दिया जायेगा। (पैरा 3)

प्रत्येक राज्य का अपना बालक अधिनियम होने के बजाय, जिसमें दूसरे राज्य के बालक अधिनियमों से भिन्न प्रक्रिया और अन्तर्वस्तु हो, वांछनीय यह होगा कि केन्द्रीय सरकार इस विषय पर संसदीय विधान बनाए जिससे कि देश के सम्पूर्ण क्षेत्र में बालकों से संबंधित विभिन्न

उपबंधों में पूरी एकरूपता आ सके। जो बालक अधिनियम संसद् द्वारा अधिनियमित किया जाए उसमें 16 वर्ष से कम आयु के बालकों के खिलाफ अपराधों के अन्वेषण और विचारण के लिए ही उपबंध न हों बल्कि उन बालकों के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक सुधार को सुनिश्चित करने के आज्ञापक उपबंध भी अन्तर्विष्ट हों जो या तो अपराधों से अभियुक्त है या परित्यक्त है या अनाथ है या खोए हुए है। (पैरा 4)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1979] [1979] 3 एस० सी० आर० 169 :

हुसैनआरा खातुन और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य. 3

आरम्भिक (दाण्डिक) अधिकारिता : 1985 की रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 1451

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका।

याचियों की ओर से	स्वयं याची
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री हरबंस लाल, तापस रे, डी० के० सिन्हा, जे० आर० दास, गिरीश चन्द्र, कुमारी सुभाषिणी, प्रमोद स्वरूप, डी० भण्डारी, सी० वी० एस० राव, वी० डी० शर्मा, डी० एन० मुखर्जी, आर० मुखर्जी, ए० वी० रंगम, टी० वी० रत्नम, एस० डी० भास्मे, ए० एस० भास्मे और ए० एम० खांनविलकर

आदेश

हमने 12 जुलाई, 1986 को एक आदेश दिया था जिसमें तन और मन से विक्षिप्त बालकों के एवं परित्यक्त या अनाथ बालकों के संबंध में जो सुरक्षित अभिरक्षा के लिए देश की विभिन्न जेलों में रखे गए हैं, विभिन्न निदेश दिए थे। हमने दूरदर्शन महानिदेशक तथा आकाशवाणी के महानिदेशक को भी यह निदेश दिया था कि इन बालकों के सुधार के काम में गैर-शासकीय सामाजिक सेवा संगठनों के सहयोग के लिए प्रसारण किया जाए। हमें यह देखकर अत्यंत दुःख और कष्ट हुआ कि ये बालक उचित देखरेख, समुचित इलाज और विभिन्न कौशलों में प्रशिक्षण देने

के बजाय जिनसे वे स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो जाएंगे, जेल में रखे जाते हैं कुछ वर्ष पहले हमने बालकों के कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाई थी जिसमें प्रस्तावना के रूप में यह घोषणा की गई थी–

> "राष्ट्र के बालक बहुत ही महत्वपूर्ण सम्पत्ति हैं। उनका लालन-पालन हमारी जिम्मेदारी है। मानव विकास संसाधनों की हमारी राष्ट्रीय योजनाओं में बालकों के कार्यक्रम को प्रमुखता दी जानी चाहिए जिससे कि हमारे बालक बड़े होकर बलिष्ठ नागरिक बन सकें, शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकें, मानसिक दृष्टि से चुस्त और नैतिक दृष्टि से दृढ़ रह सकें और समाज द्वारा अपेक्षित कौशल और लक्ष्यों से परिपूर्ण हों। बढ़ती आयु के दौरान सभी बच्चों के विकास के लिए समान अवसर देना हमारा उद्देश्य होना चाहिए क्योंकि इससे असमता घटाने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने का हमारा महान् उद्देश्य पूरा होगा।"

यदि बालक राष्ट्र की सम्पत्ति है तो राज्य का यह कर्तव्य है कि वह उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को सुनिश्चित करने की दृष्टि से उस बालक की देखरेख करे। इसीलिए बालकों से संबंधित सभी कानूनों में यह उपबंध किया गया है कि बालक जेल में नहीं रखा जाएगा। इन कानूनी उपबंधों के अलावा भी यह प्रारम्भिक बात है कि जेल एक ऐसा स्थान है जहां बालक को नहीं रखा जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि जेल के वातावरण से बालक का विकास रुक जाएगा, वहां उस पर बुरी बातों का प्रभाव पड़ेगा, उसकी आत्मा दूषित हो जाएगी और वह समाज से दूर चला जाएगा। खेद की बात है कि कानूनी उपबंधों तथा समाज विज्ञानियों के बराबर कहने के बावजूद देश की विभिन्न जेलों में आज भी असंख्य बालक हैं जैसा कि 15 अप्रैल, 1986 के हमारे आदेश के अनुसरण में जिला न्यायाधीशों द्वारा किए गए सर्वेक्षणों की रिपोर्ट से विदित होता है। जहां बालकों पर अपराधों का अभियोग लगाया जाए वहां भी उन्हें जेल में नहीं रखा जाना चाहिए। राज्यों की यह दलील इसका कोई उत्तर नहीं है कि उनके पास पर्याप्त संख्या में प्रतिप्रेषण गृह या संप्रेक्षण गृह या अन्य स्थान नहीं है जहां बालकों को रखा जा सके और इसीलिए उन्हें जेलों में रखा जाता है। राज्य का यह कहना भी इसका कोई उत्तर नहीं है कि जेल के जिस वार्ड में बच्चों को

रखा जाता है वह उस वार्ड से अलग होता है जिसमें अन्य कैदी रखे जाते हैं क्योंकि जेल का अत्यन्त हानिकारक प्रभाव बच्चों के मन पर पड़ता है जिससे वे समाज से हटते जाते हैं और एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ जिसके कारण वे जेल में रखे जाते हैं, घृणा जैसी वितृष्णा पनपने लगती है। अतः हम एक बार फिर इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि राज्य सरकारों को आवश्यक प्रतिप्रेषण-गृह और संप्रेक्षण-गृह स्थापित करने चाहिए जहां अपराध से अभियुक्त बालकों को अन्वेषण और विचारण के दौरान रखा जा सके। बालकों को किसी भी कारण जेल में न रखा जाए और यदि राज्य सरकार के पास उनके प्रतिप्रेषण-गृहों या सम्प्रेक्षण-गृहों में काफी जगह नहीं है तो बालकों को जेल की बुराइयों में रखने के बजाय जमानत पर छोड़ देना चाहिए।

2. यदि पुलिस द्वारा अन्वेषण और मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण तत्परतापूर्वक किया जाए तो अपराध से अभियुक्त बालकों के निरोध की समस्या का हल और भी आसान हो जाएगा। जिला न्यायाधीशों द्वारा किए गए सर्वेक्षण की रिपोर्टों से पता चलता है कि कुछ स्थानों में बालक बहुत लम्बे अरसे से जेल में हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि बालकों द्वारा किए गए अभिकथित अपराधों के बारे में अन्वेषण तेजी से क्यों नहीं पूरा किया जाता और साथ ही आरोप-पत्र फाइल किए जाने के बाद विचारण युक्तियुक्त समय के भीतर क्यों नहीं हो सकता। वस्तुतः बालकों का विचारण किशोर अपराधी न्यायालयों में किया जाना चाहिए, न कि नियमित दण्ड न्यायालयों में। बालकों से संबंधित विभिन्न कानूनों में विशेष उपबंध बनाए गए हैं जिनके द्वारा बालकों के हित और कल्याण को सुरक्षित रखने के आशय से विहित की गई विशेष प्रक्रिया के अनुसार किशोर अपराधी न्यायालयों द्वारा विचारण का उपबंध किया गया है। किन्तु हम देखते हैं कि बहुत से राज्यों में किशोर अपराधी न्यायालय काम नहीं कर रहे हैं और जहां किशोर अपराधी न्यायालय हैं वहां भी वे सामान्य दण्ड न्यायालयों के पदचिह्नों पर चल रहे हैं, केवल उनके नाम में अंतर है। जो मजिस्ट्रेट सामान्य दण्ड न्यायालय में बैठता है वही किशोर अपराधी न्यायालय में बैठता है और बालकों के खिलाफ मुकदमों का विचारण यंत्रवत् करता है। यह अत्यंत आवश्यक है और हम अपनी पूरी ईमानदारी और सच्चाई से राज्य सरकारों पर इस बात

का जोर देना चाहते हैं कि वे किशोर अपराधी न्यायालयों की स्थापना करें, प्रत्येक जिले में एक-एक और मजिस्ट्रेटों का एक विशेष काडर हो जो बालकों के मामलों पर कार्रवाई करने के लिए ठीक ढंग से प्रशिक्षित हो। यदि किशोर अपराधी न्यायालय में उनके लिए पर्याप्त काम नहीं है तो वे दूसरे दाण्डिक काम भी कर सकते हैं किन्तु वे किशोर अपराधियों के मामलों के संबंध में कार्रवाई करने के लिए उचित और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होने चाहिए क्योंकि इन मामलों के लिए एक भिन्न प्रकार की प्रक्रिया तथा गुणात्मक दृष्टि से एक भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण चाहिए।

3. हम यह भी निदेश देंगे कि जहां ऐसे अपराध के लिए जो अधिक से अधिक 7 वर्ष के कारावास से दण्डनीय हो, 16 वर्ष से कम आयु के बालकों के खिलाफ परिवाद फाइल किया जाए या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल की जाए, वहां अन्वेषण परिवाद फाइल करने या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर पूरा हो जाए और यदि अन्वेषण इतने समय के भीतर पूरा न हो तो उस बालक के खिलाफ मामला समाप्त समझा जाए। यदि तीन मास के भीतर, अधिक से अधिक 7 वर्ष के कारावास से दण्डनीय अपराध के मामले में बालक के खिलाफ आरोप-पत्र फाइल किया जाए तो मामले का विचारण और निपटारा अधिक से अधिक और 6 मास की अवधि के भीतर किया जाए और इस अवधि के अंतर्गत वह समय भी शामिल होना चाहिए जो सुपुर्दगी कार्यवाहियों में लगा हो। हुसैनआरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य[1] वाले मामले में हम यह पहले ही अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि तेजी से विचारण का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में विवक्षित एक मूल अधिकार है। यदि अभियुक्त का विचारण तेजी से नहीं किया जाता है और उसका मामला मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायालय के समक्ष बहुत लम्बे अरसे तक लम्बित रहता है तो स्पष्ट है कि तेजी से विचारण के उसके मूल अधिकार का उल्लंघन होता है जब तक कि विचारण किसी वरिष्ठ न्यायालय के अन्तरिम आदेश के फलस्वरूप न रुके या अभियुक्त मामले के विचारण में विलम्ब के लिए स्वयं न जिम्मेदार हो। तेजी से विचारण के मूल अधिकार के उल्लंघन का परिणाम यह

1. (1979) 3 एस० सी० आर० 169.

होगा कि स्वयं अभियोजन ही इस आधार पर अभिखंडित कर दिया जाएगा कि वह मूल अधिकार के उल्लंघन में है। जिन प्रमुख कारणों से मजिस्ट्रेट और अपर सेशन न्यायाधीशों के न्यायालयों में दाण्डिक मामलों के विचारण में विलंब होता है उनमें से एक है न्यायाधीशों की संख्या में भारी कमी और मजिस्ट्रेट तथा अपर सेशन न्यायाधीशों के लिए काम की असंतोष-जनक अवस्थाएं। मजिस्ट्रेटों और अपर सेशन न्यायाधीशों के ऐसे न्यायालय में जिनमें काम का बोझ इतना अधिक है कि उसे निपटाना संभव नहीं है जब तक कि मजिस्ट्रेटों और अपर सेशन न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि न की जाय। ऐसे भी उदाहरण हैं जहां मजिस्ट्रेटों और अपर सेशन न्यायाधीशों की नियुक्तियां वर्षों तक लटकी रहती हैं और न्यायालयों को उसी पुरानी संख्या के साथ काम करना पड़ता है। इससे दाण्डिक मामलों के तेजी से विचारण पर प्रभाव पड़ता है। मजिस्ट्रेटों और अपर सेशन न्यायाधीशों को प्रायः समुचित कर्मचारी और अन्य सुविधाएं प्रदान नहीं की जातीं जिनसे वे मामलों का तेजी से निपटारा कर सकें। अतः हमारा यह दृढ़ मत है कि प्रत्येक राज्य सरकार को समुचित न्यायालयों की स्थापना करने, न्यायाधीशों की अपेक्षित संख्या नियुक्त करने और उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक उपाय करने चाहिए। न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए एक संस्था या अकादमी की स्थापना भी आवश्यक है जिससे कि उनकी दक्षता में वृद्धि हो सके और वे अपने-अपने न्यायालयों में आने वाले मामलों को विनियमित और नियंत्रित कर सकें। मजिस्ट्रेटों और अपर सेशन न्यायाधीशों के न्यायालयों में दाण्डिक मामलों के बकाया काम की समस्या बहुत बेकाबू होती जा रही है और यह अत्यन्त आवश्यक है जिस पर प्रत्येक राज्य सरकार को तुरन्त ध्यान देना चाहिए। किन्तु यहां हमारा संबंध अभियुक्त के तेजी के विचारण के प्रश्न से नहीं है जो 16 वर्ष की आयु से कम का बालक नहीं है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर किसी अन्य मामले में भी विचार किया जा सकता है। जहां इस न्यायालय से इस बारे में विचार करने की अपेक्षा की जाए कि किसी विचारण के लिए कितना समय युक्तियुक्त होगा जिसके बाद वह न्यायालय तेजी से विचारण के अधिकार का उल्लंघन मानेगा। जहां तक 7 वर्ष से अनधिक के कारावास से दण्डनीय अपराध के अभियुक्त बालक का संबंध है, इस

परिवाद फाइल करने या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट करने की तारीख से तीन मास की अवधि को अन्वेषण के लिए अनुज्ञेय अधिकतम समय मानेंगे और आरोप-पत्र फाइल करने से 6 मास की अवधि को युक्तियुक्त अवधि के रूप में मानेंगे जिसके भीतर बालक का विचारण पूरा हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो उस बालक का अभियोजन अभिखण्डित कर दिया जाएगा। हम भावी मामलों के संबंध में अधिकथित इस सिद्धान्त या नियम को प्रभावी रूप देने के लिए प्रत्येक राज्य सरकार को निदेश देंगे। किन्तु जहां तक 7 वर्ष से अनधिक के कारावास से दण्डनीय अपराधों से संबंधित इस समय लम्बित मामलों का सम्बन्ध है हम प्रत्येक राज्य सरकार को यह निदेश देंगे कि आज से तीन मास के भीतर अन्वेषण पूरा किया जाए, यदि अन्वेषण पूरा करने के बाद आरोप-पत्र फाइल नहीं किया गया है और यदि आरोप-पत्र किया जा चुका है तो विचारण आज से 6 मास की अवधि के भीतर पूरा किया जाए और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अभियोजन अभिखण्डित कर दिया जाएगा।

4. हमने 5 अगस्त, 1986 के अपने एक आदेश द्वारा राज्य सरकारों से यह कहा था कि विभिन्न राज्यों में अधिनियमित बालक अधिनियमों के उपबंधों को प्रवृत्त किया जाए और उनका तेजी से कार्यान्वयन किया जाए। किन्तु हम यह सुझाव देंगे कि प्रत्येक राज्य का अपना बालक अधिनियम होने के बजाय, जिसमें दूसरे राज्य के बालक अधिनियमों से भिन्न प्रक्रिया और अन्तर्वस्तु हो, वांछनीय यह होगा कि केन्द्रीय सरकार इस विषय पर संसदीय विधान बनाए जिससे कि देश के सम्पूर्ण क्षेत्र में बालकों से संबंधित विभिन्न उपबंधों में पूरी एकरूपता आ सके। जो बालक अधिनियम संसद् द्वारा अधिनियमित किया जाए उसमें 16 वर्ष से कम आयु के बालकों के खिलाफ अपराधों के अन्वेषण और विचारण के लिए ही उपबंध न हों बल्कि उन बालकों के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक सुधार को सुनिश्चित करने के आज्ञापक उपबंध भी अन्तर्विष्ट हों जो या तो अपराधों के अभियुक्त हैं या परित्यक्त हैं या अनाथ हैं या खोए हैं। इसके अतिरिक्त इस विषय पर विधान बनाना ही काफी नहीं होगा बल्कि यह भी सुनिश्चित करना अधिक नहीं तो उतना ही महत्वपूर्ण है कि ऐसा विधान पूरी ईमानदारी से क्रियान्वित किया जाए और ऐसे विधान के लिए मौखिक सहानुभूति पर्याप्त नहीं होगी तथा

कार्यान्वयन न करने का औचित्य इस आधार पर न दिया जाए कि राज्य के पास धन का अभाव है । बालकों पर खर्च करने से राज्य सबसे बड़ा यह फायदा प्राप्त कर सकता है कि एक ऐसा शक्तिशाली मानव संसाधन निर्मित हो जाएगा जो राष्ट्र की प्रगति में अपना योगदान करने के लिए तत्पर रहेगा ।

5. हम 12 जुलाई, 1986 और 5 अगस्त, 1986 के अपने आदेशों द्वारा पहले ही विभिन्न निदेश दे चुके हैं । इसी बीच अनेक जिला न्यायाधीशों द्वारा किए गए सर्वेक्षण की रिपोर्टें भी मिली हैं । हम रिट याचिका की अगली सुनवाई पर इन मामलों पर विचार करेंगे जो 1.9.86 को होगी ।

तद्नुसार आदेश किया गया ।

(1987) 1 उम० नि० प० 244:
(1986) 4 SCC 481:
AIR 1987 SC 149:

रघुबीर सिंह और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

और

सिमरनजीत सिंह मान

बनाम

बिहार राज्य

19 सितम्बर, 1986

न्यायमूर्ति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और एम० एम० दत्त

संविधान, 1950–अनुच्छेद 21–तेज गति से अन्वेषण और विचारण का अधिकार–अभियुक्तों के खिलाफ राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आरोप–अत्यंत नाजुक और राजनीतिक प्रकृति की जटिल समस्याओं के मामले में अन्वेषण–अभियुक्त अपने अधिकारों का प्राख्यान करने में समर्थ फिर भी इससे पहले विलम्ब के लिए आपत्ति न की जानी–मामले के तथ्यों में विचारण में विलम्ब अयुक्तियुक्त और अऋजु नहीं है–अतः अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं हुआ है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 1)–धारा 167(2) परन्तुक (क), धारा 309 (2), 437 (5), 439 (2), 331, 442 (1) और 444–उक्त धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर–जमानत समय बीतने, बाद में प्रतिभू के मुक्त किये जाने, आरोप पत्र फाइल किये जाने अथवा धारा 309 (2) के अधीन अभिरक्षा में भेजे जाने से निर्वापित नहीं होती–वह तब तक प्रभावी रहती है जब तक कि धारा 437 (5) और 439 (2) के अधीन वह रद्द न कर दी जाए।

संविधान, 1950–अनुच्छेद 136 (सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 441, धारा 442)–उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप–प्रस्तुत मामले में जमानत मंजूर करने वाले आदेश विखण्डन न करने में असफल रहने पर अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

संविधान, 1950–अनुच्छेद 32 (सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 211 और 216)–दाण्डिक याचिका–आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य था या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए उच्चतम न्यायालय अपने आपको विचारण न्यायालय में नहीं बदल सकता ।

संविधान, 1950–अनुच्छेद 14–विधि के समक्ष समता–मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना–प्रस्तुत मामले का विचारण प्रश्नगत न्यायालय को सुरक्षा के हित में एवं अभियुक्त की सुविधा के लिए सौंपा गया था–इससे विधिसम्मत शासन का और विधि के समक्ष समता के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता ।

29/30 नवम्बर, 1984 की रात को ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा पुलिस गश्ती दल ने जोगबानी चौकी के नजदीक एक जीप को भारत-नेपाल सीमा की तरफ तेज गति से जाते हुए देखा । जीप रोकी गई । जीप में पांच लोग थे । उनमें से एक सिमरनजीत सिंह मान था, जिसे भारतीय पुलिस सेवा से पदच्युत कर दिया गया था । 28 अगस्त, 1984 को उसके खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निवारक निरोध आदेश किया गया था । पुलिस गश्ती दल के पूछताछ करने पर पहले तो उन्होंने अपने नाम और पहचान बताने से इंकार कर दिया । इस गश्ती दल के मन में संदेह उत्पन्न हुआ । उनमें से एक अधिकारी ने सिमरनजीत सिंह मान को पहचान लिया । जीप में सवार पांच लोगों की और उनके सामान की तलाशी ली गई । उनमें से एक के पास 62,722.00 रुपये की राशि मिली । अभिकथन किया गया कि उसने पुलिस दल को बहुत बड़ी रकम रिश्वत के रूप में इस शर्त के साथ देने के लिये कहा था कि वे उसे भारत-नेपाल सीमा पार करने देंगे । तलाशी के परिणामस्वरूप उनके दस्तावेजों और अन्य वस्तुओं का अभिग्रहण किया गया । सिमरनजीत सिंह मान के पास 2 जून, 1984 के पत्र की एक

प्रतिलिपि मिली जो सिमरनजीत सिंह मान ने मुख्य सचिव, पंजाब को भेजा था। सिमरनजीत सिंह मान के 18 जून, 1984 के त्यागपत्र की एक प्रतिलिपि मिली, सिमरनजीत सिंह मान का परिचय,जरनैल सिंह भिंडरा वाला के दो फोटो, सिमरनजीत सिंह मान का बीरबल नाथ के नाम भेजा गया एक पत्र, अरुण कुमार अग्रवाल नामक एक व्यक्ति को भेजा गया पत्र, जिसमें संदेशवाहक को यथासंभव सहायता करने के लिये कहा था और एक गुमनाम पत्र मिला, जिसके द्वारा सिमरनजीत सिंह मान को यह चेतावनी दी गई थी कि उसे खत्म करने के प्रयास की संभावना है और उसे देश छोड़ने की सलाह दी गई थी। सिमरनजीत सिंह मान ने अभिग्रहण ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। कामीकर सिंह के पास से 62,722.00 रुपये मूल्य के नोट अभिगृहीत किये गये। जयपाल सिंह के सूटकेस में से "सिख एण्ड फारेन अफेयर्स" नामक एक अंग्रेजी की पुस्तक अभिगृहीत की गई और भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका और नेपाल का संयुक्त सड़क मानचित्र अभिगृहीत किया गया। अन्य चीजें जो अभिगृहीत की गई थीं, वे थी नरेन्द्र सिंह भुल्लर द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक, जिसमें सरकार विरोधी और सिख पृथकतावादी प्रचार का उल्लेख बताया गया है, एक नोट-बुक जिसमें विश्व के प्रमुख भूमिगत संगठनों के बारे में सामग्री अंतर्विष्ट थी, जो मान के हस्तलेख में बताई गई थी, एक रजिस्टर, जिसमें यह बताया गया कि मान अमृतसर का इतिहास लिखता था, जिसमें ब्लू स्टार अभियान के फलस्वरूप भारतीय सेना को शत्रु के रूप में वर्णित किया गया बताया गया था। आतंकवादी सिख राष्ट्रवादी वर्णित किये गये बताये गए और मातृभूमि के रक्षक बताये गए तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी, तत्कालीन प्रधानमंत्री का अपमानजनक उल्लेख किया गया था। इसके बाद भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 124-क, 123, 153-क, 505 और 120-ख तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (iii) के अधीन अपराधों के लिये जोगबानी पुलिस थाने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई। अन्वेषण शुरू किया गया। 11 दिसम्बर, 1985 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क, 505 और 120-ख के अधीन अपराधों के लिये पांच अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किया

गया। आरोप-पत्र फाइल करने से पहले 4 दिसम्बर, 1984 को सिमरनजीत सिंह मान पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरोध आदेश तामील किया गया और उसे भागलपुर जेल भेज दिया गया। अन्य चार अभियुक्त भी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन भागलपुर में निरुद्ध किये गये। 1 मार्च, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान को छोड़कर अन्य चार अभियुक्तों ने दाण्डिक मामले में जमानत के लिये न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया से आवेदन किया, जिसके बारे में उस समय अन्वेषण चल रहा था, और उन्होंने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के परन्तुक (क) के अधीन रिहा करने की मांग की। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उन्हें जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया किन्तु यह शर्त लगाई कि प्रतिभू अररिया कस्बे के निवासी हों। चार अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रतिभुओं को पूर्णिया से या नकद में स्वीकार करने की मजिस्ट्रेट से प्रार्थना करते हुए एक अर्जी फाइल की। वह अर्जी अस्वीकार कर दी गई। अन्ततोगत्वा, चार अभियुक्तों को अररिया से प्रतिभू मिल गये। किन्तु फिर भी उन्हें रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध थे। सिमरनजीत सिंह मान को भी 28 अक्टूबर, 1985 को उसके आवेदन पर धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन छोड़े जाने का निदेश दिया गया। उस पर भी वही शर्त अधिरोपित की गई कि प्रतिभू अररिया के ही हों। उसने 29 अक्टूबर, 1985 को आवश्यक प्रतिभू दे दिये। किन्तु उसे रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध था। उसी समय गौरीशंकर झा ने, जो पांचों अभियुक्तों का प्रतिभू था, एक अर्जी फाइल की और उसने न्यायालय में स्वयं हाजिर होकर यह प्रार्थना की कि उसे प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाये, क्योंकि वह अभियुक्त व्यक्तियों का प्रतिभू रहना नहीं चाहता है। 5 दिसम्बर, 1985 को विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश देकर उस प्रतिभू को मुक्त कर दिया और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 444 (2) के अधीन गिरफ्तारी के प्रवर्तिक वारण्ट जारी कर दिये। इसी प्रक्रम पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 9 दिसम्बर, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान के खिलाफ किया गया निरोध आदेश अभिखण्डित कर दिया। न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के न्यायालय में 14 दिसम्बर, 1985 को प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क और 120-ख के अधीन 18 दिसम्बर, 1985 को मामले का संज्ञान किया। उसी दिन उन्होंने यह भी आदेश किया कि सिमरनजीत सिंह मान को सुरक्षा के हित में भागलपुर में केन्द्रीय कारागार में रखा जाए। 19 दिसम्बर, 1985 को अन्वेषण अधिकारी ने एक अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। 20 दिसम्बर, 1985 को अभियुक्त रघुबीर सिंह, कामीकर सिंह और चरणसिंह की ओर से नए जमानत बंध-पत्र फाइल किये गये। किन्तु जमानत बंध-पत्र नामंजूर कर दिये गए। मजिस्ट्रेट ने उन्हें 13 जनवरी, 1986 तक के लिये फिर अभिरक्षा में भेज दिया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से पहले फाइल की गई एक अर्जी की सुनवाई आरम्भ की। उसमें यह अनुरोध किया गया था कि कृत्यानन्द मिश्र को प्रतिभू के रूप में स्वीकार कर लिया जाए क्योंकि उसे पहले भी एक बार प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया था। प्रार्थना की गई कि तारीख 20, दिसम्बर, 1985 का आदेश वापस ले लिया जाए। यह अर्जी इस आधार पर नामंजूर कर दी गई कि पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। बाद में उसी दिन दो प्रतिभुओं, मीर मजीद और कृत्यानन्द मिश्र, ने यह प्रार्थना करते हुए अर्जी फाइल की कि उन्हें प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाए क्योंकि वे अभियुक्त व्यक्तियों के लिये प्रतिभू नहीं रहना चाहते। 7 जनवरी, 1986 को पूर्णिया के सेशन न्यायाधीश ने यह मामला श्री आर० बी० राय, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया की फाइल से श्री यू० एन० यादव, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के न्यायालय में भेज दिया। 10 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने एक आदेश देकर 11 जनवरी, 1986 पुलिस कागजों और आवश्यक आदेशों की प्रतियों के लिये नियत की। 11 जनवरी, 1986 को पांच अभियुक्त व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। राज्य की ओर से एक अर्जी फाइल की गई कि अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस कागजात दिये जाने के बाद मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाए और तत्पश्चात अभियुक्त व्यक्तियों की जमानत रद्द करके उन्हें अभिरक्षा में भेज दिया जाए। दूसरी अर्जी पूर्णिया के विशेष

न्यायाधीश के पास मामला भेजने के लिये अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से फाइल की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने भी मामले को स्थगित करने के लिये अर्जी फाइल की थी। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों से अनुरोध किया कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन दिये गये दस्तावेज ले लें किन्तु अभियुक्त व्यक्तियों ने यह कहकर उन्हें लेने से इन्कार कर दिया कि पहले उनकी अर्जी का निपटारा किया जाए जिससे कि यदि आवश्यक हो तो वे पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय में जा सकें। लोक अभियोजक ने अभियुक्तों की अर्जी का इस आधार पर विरोध किया कि अभियुक्त व्यक्ति सुपुर्दगी कार्यवाहियों के निपटारे में विलम्ब करने की कोशिश कर रहे हैं। अभियुक्त व्यक्तियों के अधिवक्ता यह निवेदन करते हुए प्रतीत होते हैं कि मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में किया जाए। अतः मामला उनके पास भेज दिया जाए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह न्यायालय मामले का संज्ञान पहले ही कर चुका है और संज्ञान करने वाला आदेश वापस नहीं लिया जा सकता। यह प्रश्न कि क्या मामला विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में भेजा जाना चाहिये, उस प्रक्रम पर विचारणीय नहीं होता जब इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा हो कि क्या मामला प्रथमदृष्ट्या बनता है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने उसके बाद अभियुक्त व्यक्तियों को दस्तावेज की प्रतिलिपियां देने की तारीख 18 जनवरी, 1986 नियत की। 16 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने नकद जमा की स्वीकृति के लिए या अनुकल्पिक तौर पर अरहिया कस्बे के बाहर के प्रतिभुओं की स्वीकृति के लिए सिमरनजीतसिंह के भिन्न व्यक्तियों द्वारा दिए गए आवेदन नामंजूर कर दिए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि उसे अपने पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने की शक्ति नहीं है। इसके बाद उन्होंने जमानत के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया किन्तु वह आवेदन भी नामंजूर कर दिया गया। मजिस्ट्रेट ने मामले का अभिलेख विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) उत्तरी बिहार, पटना को भेजते हुए निदेश दिया कि अभियुक्तों को विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जाए। सिमरनजीत सिंह मान ने नकद प्रतिभूति की प्रस्थापना की और जमानत की मांग की। न्यायाधीश ने यह आवेदन इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उच्च न्यायालय चार अन्य अभियुक्तों के आवेदन पहले ही

नामंजूर कर चुका है। सिमरनजीत सिंह मान ने विशेष न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ सीधे ही उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की। चार अन्य अभियुक्तों ने पटना उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ, जिसके द्वारा मुख्य जमानत आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे, विशेष इजाजत अर्जी फाइल की, विशेष न्यायाधीश के समक्ष चालू कार्यवाहियों को अभिखण्डित करने के लिए रिट याचिका फाइल की। अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, आरोप-पत्र और साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां देने के लिए प्रार्थना करते हुए विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक अर्जी फाइल की। अभियुक्तों को सभी आवश्यक कागज दे दिए गए। पुलिस ने आगे अन्वेषण हाथ में लिया और एक अनुपूरक आरोप-पत्र पेश किया था। राज्य सरकार ने एक अधिसूचना निकालकर, भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के मामलों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया। विशेष न्यायाधीश ने वे आवेदन स्वीकार कर लिए। विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि अररिया के मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द नहीं किया था। इन अपराधों के बारे में विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि अभिलेख विधि के अनुसार आगे कार्यवाही करने के लिए पूर्णिया के जिला और सेशन न्यायाधीश के पास वापस भेजा जाए। अभियुक्त व्यक्तियों ने दो रिट याचिकाएं फाइल की। अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से विशेष इजाज़त अर्जियां भी फाइल की गई। विशेष इजाज़त अर्जियां खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित–ऐसा विलम्ब जो इस मामले के अन्वेषण में हुआ है, अकारण नहीं था और यह मामले की प्रकृति के फलस्वरूप था और देश में व्याप्त सामान्य स्थिति के फलस्वरूप था। वर्तमान रिट याचिकाओं को फाइल करने तक अभियुक्तों ने विलम्ब के बारे में कोई गम्भीर आपत्ति नहीं की थी। आरोप-पत्र फाइल किए जाने के बाद कम-से-कम दो मौकों पर अभियोजन अभिकरण ने बहुत तत्परतापूर्वक मामले का निपटारा करने की चिंता व्यक्त की है। लोक अभियोजक ने एक दूसरी अर्जी फाइल करके पुनः प्रार्थना की कि मामले का तेजी से निपटारा करने के लिए

जल्दी ही तारीख नियत की जाए। मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि अन्वेषण में और मामले के विचारण में इतना अधिक विलम्ब हुआ है कि तेज विचारण के अभियुक्त के अधिकार के अतिलंघन के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया जाए। (पैरा 13)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के नए परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि अन्वेषण अभिकरण 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं कर पाता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार है। अन्वेषण अभिकरण के व्यतिक्रम के कारण धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को कानूनी तौर पर संहिता के अध्याय 33 प्रयोजनों के लिए इस अध्याय के अधीन रिहा किया समझा जायेगा। ऐसी कोई काल-सीमा नहीं है, जिसके भीतर जमानत पर छोड़ने के आदेश के बाद उसे निष्पादित किया जाए। प्रायः जमानत पर रिहा करने के आदेश के तुरन्त बाद बंधपत्र देना अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। ऐसा प्रायः अभियुक्त व्यक्तियों की गरीबी के कारण होता है प्रायः ऐसा भी होता है कि विभिन्न कारणों से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पेश किए गए प्रतिभू न्यायालय को स्वीकार्य न हों और ऐसी हालत में न्यायालय में नए प्रतिभू पेश करने पड़ें। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा एकदम जमानत न दे पाने के कारण उन्हें जमानत पर छोड़ने के आदेश तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि धारा 437 (5) या धारा 439 (2) के अधीन आदेश न किया जाए। ये दोनों उपबंध उस मजिस्ट्रेट को जिसने अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत पर छोड़ा है या सेशन न्यायालय को या उच्च न्यायालय को जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने का निदेश देने में और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द करने में समर्थ बनाते हैं। चूंकि धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर छोड़ना अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ना समझा जाता है, इसलिए धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन छोड़ने का आदेश धारा 437 (5) और 439 (2) के उपबंधों के भी अधीन है और इनमें से किसी भी उपबंध के अधीन आदेश करके उसे निर्बाधित किया जा सकता है। ऐसा हो सकता है कि जिस व्यक्ति को प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया है, वह बाद में प्रतिभू बना रहना चाहे।

ऐसा आवेदन किए जाने पर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि वह यह निदेश देते हुए गिरफ्तारी का वारन्ट जारी करे कि ऐसे छोड़े गए व्यक्ति को उसके समक्ष लाया जाए। ऐसे व्यक्ति के हाजिर होने पर या उसके स्वयं अभ्यर्पण पर मजिस्ट्रेट उस बंधपत्र को या तो पूरी तरह या वहां तक जहां तक वह प्रतिभू से संबंधित प्रभावोन्मुक्त किए जाने का निदेश दे और ऐसे व्यक्ति से दूसरा पर्याप्त प्रतिभू खोजने के लिए कहे और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह उसे जेल के सुपुर्द कर सकेगा। अभियुक्त व्यक्ति एक नया स्वीकार्य प्रतिभू पेश करके जमानत पर छोड़े जाने के आदेश का फायदा उठा सकता है। धारा 309 (2) "यदि अभियुक्त व्यक्ति अभिरक्षा में है तो उसे प्रतिप्रेषित करने में" न्यायालय को समर्थ बनाती है। यह न्यायालय को उस समय अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने में समर्थ नहीं करती, जब वह जमानत पर है। यह धारा न्यायालय को जमानत रद्द करने में समर्थ नहीं बनाती। ऐसा धारा 437 (5) और 439 (2) के अधीन ही किया जा सकता है। जब किसी अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर की जाती है, चाहे धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन या अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन तो जिस एकमात्र ढंग से जमानत रद्द की जा सकती है, वह है धारा 437 (5) या धारा 439 (2) के अधीन कार्यवाही करना। (पैरा 20)

धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन दिया गया जमानत पर छोड़ने का आदेश समय बीतने पर, आरोप-पत्र फाइल करने से, धारा 309 (2) के अधीन अभिरक्षा में भेजने से विफल नहीं होता। फिर भी, जमानत पर छोड़ने का आदेश धारा 437 (5) या धारा 439 (2) के अधीन रद्द किया जा सकता है। आमतौर पर जमानत को रद्द करने के आधार मोटे तौर पर ये हैं; न्याय के प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप का प्रयास, अथवा न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास अथवा उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग। न्याय के सम्यक् अनुक्रम में साक्षियों को परेशान करके या कूट साक्ष्य प्रेरित करके, अन्वेषण में हस्तक्षेप करके, साक्ष्य आदि का मार्जन करके या उसे गायब करके हस्तक्षेप किया जा सकता है। न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास, देश को छोड़कर या भूमिगत होकर या अन्यथा अपने आपको प्रतिभुओं की पहुंच से बाहर करके किया जा सकता है। जहां 60 दिन के

भीतर अन्वेषण पूरा करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर की गई है, वहां आरोप-पत्र फाइल करके दोष को दूर करने के बाद अभियोजन-पक्ष इस आधार पर जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है। अंतिम वर्णित स्थिति में वस्तुत: बहुत दृढ़ आधार होने चाहिए। (पैरा 22)

सम्पूर्ण परिस्थितियों को, जमानत का आरम्भिक आदेश किए जाने के बाद बहुत लम्बा समय बीतना, परिणामस्वरूप परिस्थितियों और स्थिति में परिवर्तन, तथा इन निदेशों को, जो न्यायालय ने मामले का तेजी से विचारण करने के लिए अब दिए हैं, ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रक्रम पर इन मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके न्यायोचित कार्यवाही होगी। (पैरा 23)

इस बात पर विचार करने के लिए कि क्या आरोप विरचित करना न्यायायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य है या नहीं, उच्चतम न्यायालय अपने आपको मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में नहीं बदल सकता। (पैरा 14)

विशेष न्यायाधीश का न्यायालय दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन पूर्णिया खण्ड के लिए बनाया गया था। क्योंकि यह सोचा गया था कि अभियुक्तों के लिए और सुरक्षा के हित में यह सुविधा-जनक होगा कि मामले का विचारण भागलपुर में ही किया जाए, जहां अभियुक्त कारागार में थे, न कि मामले का विचारण पटना में किया जाए, जहां पर अभियुक्तों को हर सुनवाई पर भागलपुर से ले जाना पड़ता। अभियुक्तों को सुरक्षा के हित में भागलपुर की कारागार में रखा गया था। दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाने में और उस न्यायालय में पीठासीन होने के लिए किसी न्यायाधीश के पदाभिधान में कोई दुर्भावना दिखाई नहीं पड़ती। (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1985] [1985] (II) ऑल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स 585 :
बैंक बनाम डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोसिक्यूशन, जमायिका; 9,13

[1982] ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 1167 :
कादा पहाड़िया (II) बनाम बिहार राज्य ; 9

[1981] ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 939 :
कादा पहाड़िया (I) बनाम बिहार राज्य ; 9

[1981] [1981] 3 एस० सी० सी० 610 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम चम्पा लाल पंजाजी शाह ; 9

[1979] [1979[5 एस० सी० आर० 169 :
हुसैनआरा खातून (I) बनाम बिहार राज्य ; 9

[1978] [1978] 4 उम० नि० प० 219 = (1977) 4 एस० सी० सी० 410 :
बसीर बनाम हरियाणा राज्य ; 21

[1975] [1975] 3 उम० नि० प० 1284 = ए०आई०आर०1975 एस० सी० 1465 :
मटबर परिदा बनाम उड़ीसा राज्य ; 21

(1958) ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 376 :
तलब हाजी हुसैन बनाम मोंडकर ; 21

407 यू० एस० 514 :
बारकर बनाम विंगो ; 9, 13

37 लॉ एडीशन, सेकंड 56 :
स्ट्रंक बनाम संयुक्त राज्य अमरीका; 9

आरम्भिक/दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1986 की रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 136 (इसके साथ ही 1986 की विशेष इजाजत अर्जी (दाण्डिक) सं० 55, 630 तथा 1986 की रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 137 भी सुनी गई ।)

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिकाएं ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री राम जेठमलानी, कुमारी रानी जेठमलानी सर्व श्री के० एन० मधुसूदन और अशोक शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्व श्री ए० एन० मुल्ला, डा० गोवर्धन और वासुदेव प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया ।

न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी–29/30 नवम्बर, 1984 की रात को ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा पुलिस गश्ती दल ने जोगबानी चौकी के नजदीक एक जीप को भारत-नेपाल सीमा की तरफ तेज गति से जाते हुए देखा । जीप रोकी गई । जीप में पांच लोग थे । उनमें से एक सिमरनजीत सिंह मान था, जिसे भारतीय पुलिस सेवा से पदच्युत कर दिया गया था । 28 अगस्त, 1984 को उसके खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निवारक निरोध आदेश किया गया था । उस संबंध में उसकी तलाश थी । किन्तु वह भूमिगत हो गया था । पुलिस गश्ती दल के पूछताछ करने पर पहले तो उन्होंने अपने नाम और पहचान बताने से इंकार कर दिया । इस गश्ती दल के मन में संदेह उत्पन्न हुआ । उनमें से एक अधिकारी ने सिमरनजीत सिंह मान को पहचान लिया । जीप में सवार पांच लोगों की और उनके सामान की तलाशी ली गई । उनमें से एक के पास 62,722.00 रुपए की राशि मिली । अभिकथन किया गया कि उसने पुलिस दल को बहुत बड़ी रकम रिश्वत के रूप में इस शर्त के साथ देने के लिए कहा था कि वे उसे भारत-नेपाल सीमा पार करने दें । तलाशी के परिणामस्वरूप उनके दस्तावेजों और अन्य वस्तुओं का अधिग्रहण किया गया । सिमरनजीत सिंह मान के पास 2 जून, 1984 के पत्र की एक प्रतिलिपि मिली जो सिमरनजीत सिंह मान ने मुख्य सचिव, पंजाब को भेजा था । सिमरनजीत सिंह मान के 18 जून, 1984 के त्यागपत्र/की एक प्रतिलिपि मिली, सिमरनजीत सिंह मान का पासपत्र, जरनैल सिंह भिंडरावाला के दो फोटो, सिमरनजीत सिंह मान का बीरबल नाथ के नाम भेजा गया एक पत्र, अरुण कुमार अग्रवाल नामक एक व्यक्ति को भेजा गया पत्र, जिसमें संदेशवाहक की यथासंभव सहायता करने के लिए कहा था और एक गुमनाम पत्र मिला, जिसके द्वारा सिमरनजीत सिंह मान को यह चेतावनी दी गई थी कि उसे खत्म करने के प्रयास की संभावना है और उसे देश छोड़ने की सलाह दी गई थी । सिमरनजीत सिंह

मान ने अभिग्रहण ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। कामीकर सिंह के पास से 62,722.00 रुपये मूल्य के नोट अभिगृहीत किए गए। कहा जाता है कि पुलिस अधिकारियों को 25,000.00 रुपये रिश्वत के रूप में देने के लिए कहा गया था। जगपाल सिंह के सूटकेस में से "सिख एण्ड फारेन अफेयर्स" नामक एक अंग्रेजी की पुस्तक अभिगृहीत की गई और भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका और नेपाल का एक संयुक्त सड़क मानचित्र अभिगृहीत किया गया। अन्य चीजें जो अभिगृहीत की गई थीं, वे थीं नरेन्द्र सिंह भुल्लर द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक, जिसमें सरकार विरोधी और सिख पृथकतावादी प्रचार का उल्लेख बताया गया है, एक नोट-बुक जिसमें विश्व के प्रमुख भूमिगत संगठनों के बारे में सामग्री अंतर्विष्ट थी, जो मान के हस्तलेख में बताई गई थी, एक रजिस्टर, जिसमें यह बताया गया कि मान अमृतसर का इतिहास लिखता था, जिसमें ब्लू स्टार अभियान के फलस्वरूप भारतीय सेना को शत्रु के रूप में वर्णित किया गया बताया गया था। आतंकवादी सिख राष्ट्रवादी वर्णित किए गए बताए गए और मातृभूमि के रक्षक बताए गए तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी, तत्कालीन प्रधानमंत्री का अपमानजनक उल्लेख किया गया था। चौकी पर सिमरनजीत सिंह मान का एक फोटो था और यह सत्यापित किया गया कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में सिमरनजीत सिंह मान होने का संदेह था, वास्तव में सिमरनजीत सिंह मान है। अन्य व्यक्तियों ने अपने नाम कामीकर सिंह, चरण सिंह, जगपाल सिंह और रघुवीर सिंह बताए। कामीकर सिंह वह व्यक्ति था, जिसने रिश्वत देने के लिए कहा था। इसके बाद भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क 124-क 123, 153-क, 505 और 120-ख तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (iii) के अधीन अपराधों के लिए जोगबानी पुलिस थाने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई। अन्वेषण शुरू किया गया। 11 दिसम्बर, 1986 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123-क, 124-क, 153-क, 165-क, 505 और 120-ख के अधीन अपराधों के लिए पांच अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया।

2. आरोप-पत्र फाइल करने से पहले 4 दिसम्बर, 1984 को सिमरनजीत सिंह मान पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरोध

आदेश तामील किया गया और उसे भागलपुर जेल भेज दिया गया। अन्य चार अभियुक्त भी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन भागलपुर में निरुद्ध किए गए। 1 मार्च, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान को छोड़कर अन्य चार अभियुक्तों ने दांडिक मामले में जमानत के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया से आवेदन किया, जिनके बारे में उस समय अन्वेषण चल रहा था, और उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के परन्तुक (क) के अधीन रिहा करने की मांग की। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उन्हें जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया किन्तु यह शर्त लगाई कि प्रतिभू अररिया कस्बे के निवासी हों। चार अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रतिभुओं को पूर्णिया से या नकद में स्वीकार करने की मजिस्ट्रेट से प्रार्थना करते हुए एक अर्जी फाइल की। वह अर्जी अस्वीकार कर दी गई। अन्ततोगत्वा चार अभियुक्तों को अररिया से प्रतिभू मिल गए किन्तु फिर भी उन्हें रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध थे। सिमरनजीत सिंह मान को भी 28 अक्तूबर, 1985 को उसके आवेदन पर धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन छोड़े जाने का निदेश दिया गया। उस पर भी वही शर्त अधिरोपित की गई कि प्रतिभू अररिया के ही हों। उसने 29 अक्तूबर, 1985 को आवश्यक प्रतिभू दे दिए। किन्तु उसे रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध था। उसी समय गौरी शंकर झा ने जो पांचों अभियुक्तों का प्रतिभू था, एक अर्जी फाइल की और उसने न्यायालय में स्वयं हाजिर होकर यह प्रार्थना की कि उसे प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाए, क्योंकि वह अभियुक्त व्यक्तियों का प्रतिभू रहना नहीं चाहता है। 5 दिसम्बर, 1985 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने आदेश देकर उस प्रतिभू को मुक्त कर दिया और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 444 (2) के अधीन गिरफ्तारी के प्रभावित वारण्ट जारी कर दिए। इसी प्रक्रम पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 9 दिसम्बर, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान के खिलाफ किया गया निरोध आदेश अभिखंडित कर दिया। न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, अररिया के न्यायालय में 14 दिसम्बर, 1985 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी।

3. विद्वान् मजिस्ट्रेट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क और 120-ख के अधीन 18 दिसम्बर,

1985 को मामले का संज्ञान किया। उसी दिन उन्होंने यह भी आदेश किया कि सिमरनजीत सिंह मान को सुरक्षा के हित में भागलपुर में केन्द्रीय कारागार में रखा जाए। 19 दिसम्बर, 1985 को अन्वेषण अधिकारी ने एक अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। 20 दिसम्बर, 1985 को अभियुक्त रघुबीर सिंह, कामीकर सिंह और चरनसिंह की ओर से नए जमानत-बंधपत्र फाइल किए गए। किन्तु जमानत बंधपत्र नामंजूर कर दिए गए, क्योंकि कृष्णानन्द मिश्र प्रतिभू न तो अभियुक्त व्यक्तियों के नाम बता सका और न ही उनके पिता के। 2 जनवरी, 1986 को सभी अभियुक्त अभिरक्षा में से मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए गए। मजिस्ट्रेट ने उन्हें 13 जनवरी, 1986 तक के लिए फिर अभिरक्षा में भेज दिया। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से पहले फाइल की गई एक अर्जी की सुनवाई आरम्भ की। उसमें यह अनुरोध किया गया था कि कृष्णानन्द मिश्र को प्रतिभू के रूप में स्वीकार कर लिया जाए क्योंकि उसे पहले भी एक बार प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया था। प्रार्थना की गई कि तारीख 20 दिसम्बर, 1985 का आदेश वापस ले लिया जाए। यह अर्जी इस आधार पर नामंजूर कर दी गई कि पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। बाद में उसी दिन दो प्रतिभुओं, मीर नसीम और कृष्णानन्द मिश्र ने यह प्रार्थना करते हुए अर्जी फाइल की कि उन्हें प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाए क्योंकि वे अभियुक्त व्यक्तियों के लिए प्रतिभूत्व नहीं रहना चाहते। 7 जनवरी, 1986 को पूर्णिया के सेशन न्यायाधीश ने यह मामला श्री आर० बी० राय, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया की फाइल से श्री यू० एन० यादव, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के न्यायालय में भेज दिया। 10 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने एक आदेश देकर 11 जनवरी, 1986 पुलिस कागजों और आवश्यक आदेशों की प्रतियों के लिए नियत की। 11 जनवरी, 1986 को पांच अभियुक्त व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। राज्य की ओर से एक अर्जी फाइल की गई कि अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस कागजात दिए जाने के बाद मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाए और तत्पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों की जमानत रद्द करके उन्हें अभिरक्षा में भेज दिया जाए। दूसरी अर्जी पूर्णिया

के विशेष न्यायाधीश के पास मामला भेजने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से फाइल की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने भी मामले को स्थगित करने के लिए अर्जी फाइल की थी। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों से अनुरोध किया कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन दिए गए दस्तावेज ले लें किन्तु अभियुक्त व्यक्तियों ने यह कहकर उन्हें लेने से इंकार कर दिया कि पहले उनकी अर्जी का निपटारा किया जाए जिससे कि यदि आवश्यक हो तो वे पुनरीक्षण में उच्चतर न्यायालय में जा सकें। लोक अभियोजक ने अभियुक्तों की अर्जी का इस आधार पर विरोध किया कि अभियुक्त व्यक्ति सुदीर्घ कार्यवाहियों के निपटारे में विलम्ब करने की कोशिश कर रहे हैं। अभियुक्त व्यक्तियों के अधिवक्ता यह निवेदन करते हुए प्रतीत होते हैं कि मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में किया जाए। अतः मामला उनके पास भेज दिया जाए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह न्यायालय मामले का संज्ञान पहले ही कर चुका है और संज्ञान करने वाला आदेश वापस नहीं लिया जा सकता। यह प्रश्न कि क्या मामला विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में भेजा जाना चाहिए। उस प्रक्रम पर विचारणीय नहीं होता जब इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा हो कि क्या मामला प्रथमदृष्टया बनता है। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उसके बाद अभियुक्त व्यक्तियों को दस्तावेज की प्रतिलिपियां देने की तारीख 18 जनवरी, 1986 नियत की।

4. 16 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने नकद जमा की स्वीकृति के लिए या आनुकल्पिक तौर पर अररिया कस्बे के बाहर के प्रतिभुओं की स्वीकृति के लिए सिमरनजीत सिंह से भिन्न व्यक्तियों द्वारा दिए गए आवेदन नामंजूर कर दिए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि उसे अपने पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने की शक्ति नहीं है। इसके बाद उन्होंने जमानत के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया किन्तु वह आवेदन भी नामंजूर कर दिया गया। 18 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मामले का अभिलेख विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) उत्तरी बिहार, पटना को भेजते हुए यह निदेश दिया कि अभियुक्तों को 31 जनवरी, 1986 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जाए। 31 जनवरी, 1986 को सिमरनजीत सिंह मान ने नकद प्रतिभूति की

स्थापना की और जमानत की मांग की। किन्तु विद्वान् न्यायाधीश ने 7 फरवरी, 1986 को वह आवेदन इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उच्च न्यायालय चार अन्य अभियुक्तों के आवेदन पहले ही नामंजूर कर चुका है। सिमरनजीत सिंह मान ने विशेष न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ सीधे ही इस न्यायालय में 1986 की रिट याचिका सं० 137 भी फाइल की। चार अन्य अभियुक्तों ने पटना उच्च न्यायालय के खिलाफ, जिसके द्वारा मुख्य जमानत आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे, 1986 की विशेष इजाजत अर्जी सं० 630 फाइल की, विशेष न्यायाधीश के समक्ष वाली कार्यवाहियों को अभिखण्डित करने के लिए 1986 की रिट याचिका सं० 136 फाइल की। जब 6 मार्च, 1986 को इन याचिकाओं के ग्रहण के लिए सुनवाई की गई तो श्री मुल्ला ने राज्य सरकार की ओर से सूचना ली और अब वे मामले अंतिम निपटारे के लिए हमारे समक्ष हैं।

5. तारीख 17 फरवरी, 1986 को अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, आरोप-पत्र और साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां देने के लिये प्रार्थना करते हुये विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक अर्जी फाइल की। 7 अप्रैल, 1986 को अभियुक्तों को सभी आवश्यक कागज दे दिये गये। 15 अप्रैल, 1986 को पुलिस ने आगे अन्वेषण हाथ में लिया और 26 अप्रैल, 1986 को एक अनुपूरक आरोप-पत्र पेश किया गया। 14 मई, 1986 को राज्य सरकार ने दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन एक अधिसूचना निकाली, जिसके द्वारा श्री बी० पी० वर्मा को भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के मामलों का विचारण करने के लिये विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया। 20 मई, 1986 को विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) पटना ने भागलपुर के विशेष न्यायाधीश के पास अभिलेख भेज दिए और यह निदेश दिया कि वे कागज 5 जून, 1986 को भागलपुर के विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किए जायें। तत्पश्चात् यह मामला आरोप विरचित किये जाने और अधिकारिता के प्रश्न पर बहस के लिए 8 अगस्त, 1986 तक के लिए अंतिम रूप से स्थगित कर दिया गया। इस प्रक्रम पर मामले ने एक बहुत अजीब मोड़ लिया। राज्य सरकार की ओर से विशेष लोक अभियोजक ने एक अर्जी में यह निवेदन किया कि कश्मीर सिंह के खिलाफ धारा 165-क के अधीन और चार शेष अभियुक्तों के खिलाफ धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क के

अधीन आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है, सिमरनजीत सिंह के खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124-क, 153-क, 153-ख और 505 के अधीन तथा शेष चारों अभियुक्तों के खिलाफ धारा 120-ख के साथ पठित धारा 121-क, 124-क, 153-क, 153-ख और 505 के अधीन आरोप विरचित करने को न्यायोचित ठहराने के लिए भी साक्ष्य है, कि धारा 165 और धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क के अधीन अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में धारा 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के रूप में नहीं किए गए थे और इस लिये यह आवश्यक है कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराधों का विचारण धारा 124-क के अधीन वाले अपराधों से पृथक् किया जाए। लगभग इसी आशय की एक दूसरी अर्जी अभियुक्तों की ओर से फाइल की गई थी। उसमें यह दलील दी गई थी कि संयुक्त विचारण अनुज्ञेय नहीं है। विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने ये आवेदन स्वीकार कर लिए और यह अभिनिर्धारित किया कि अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में नहीं किए गए थे, अतः धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराधों का विचारण अन्य अपराधों से पृथक् किया जाना चाहिये। इसके बाद विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि अररिया के मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द नहीं किया था। इन अपराधों के बारे में विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि अभिलेख विधि के अनुसार आगे कार्यवाही करने के लिये पूर्णिया के जिला सेशन न्यायाधीश के पास वापस भेजा जाए।

6. यह अभिकथन करते हुए कि विशेष लोक अभियोजक को विशेष न्यायाधीश के समक्ष यह निवेदन करते हुये कोई अर्जी फाइल करने का अनुदेश कभी नहीं दिया गया था कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराध और धारा 121-क, धारा 124-क आदि के अधीन वाले शेष अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में नहीं किए गए थे, अतः उनका विचारण पृथक् किया जाना चाहिये, बिहार राज्य ने पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल करके विशेष न्यायाधीश के समक्ष आगे कार्यवाहियां रोकने का आदेश ले लिया।

धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराध तथा धारा 121-क, धारा 124-क के अधीन वाले अपराधों में सम्पर्क का प्रश्न और धारा 121-क, धारा 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों का विचारण करने की विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता का प्रश्न हमारे समक्ष उठाये गये थे। किन्तु हम उन प्रश्नों पर कोई राय व्यक्त करना नहीं चाहते, क्योंकि इन प्रश्नों पर उच्च न्यायालय अपने समक्ष वाली पुनरीक्षण अर्जी में विचार करेगा।

7 अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई दो रिट याचिकाओं में श्री राम जेठमलानी ने एक प्रबल और सुदृढ़ अभिवाक् पेश किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मुवक्किलों का मूल अधिकार बिहार राज्य की चालों से भंग हुआ है और बिहार राज्य का उद्देश्य केवल यह था कि किसी न किसी तरह याचियों को कारागार में रखा जाए। उन्होंने निवेदन किया कि रिश्वत का मामला उस घटना पर आश्रित था जो 29/30 नवम्बर, 1984 की रात को हुई थी और यह कि उस मामले के उस भाग के बारे में अन्वेषण कुछ ही दिनों में पूरा हो गया था। युद्ध छेड़ने आदि के अपराध मुख्यत: उन प्रश्नों पर आधारित हैं जो सिमरनजीत सिंह मान के द्वारा भारत के राष्ट्रपति और अन्य व्यक्तियों को लिखे गए बताए गए हैं तथा इन अपराधों के बारे में अन्वेषण में संभवत: अधिक समय नहीं लग सकता क्योंकि आवश्यक केवल यह था कि पत्रों के प्राप्ति-कर्ताओं की परीक्षा की जाती, फिर भी आरोप-पत्र दिसम्बर, 1985 में ही फाइल किया गया और उसके बाद भी अभियोजन पक्ष की ओर से मामले का विचारण रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की चालें चली गई। श्री जेठमलानी के अनुसार अभियोजनपक्ष इस बात से पूरी तरह परिचित था कि अभिकथनों में कोई दम नहीं है, इसलिए वह तब तक मामले को लम्बा खींचने की कोशिश भर कर रहा है जब तक संभव हो सके, ताकि अभियुक्तों को परेशान किया जा सके और उन्हें कारागार में रखा जा सके। उन्होंने निवेदन किया कि युद्ध छेड़ने आदि के अपराधों को सिद्ध करने के लिए कोई भी सामग्री नहीं है, अत: इसी आधार पर कार्यवाहियां अभिखण्डित कर दी जानी चाहिये। उन्होंने तर्क दिया था कि यदि युद्ध छेड़ने आदि के अपराध सिमरनजीत सिंह मान के द्वारा भारत के राष्ट्रपति और मुख्य सचिव को लिखे गए पत्रों में आधारित थे तो अभियोजन क्यों

ही चलाया जा सकता था क्योंकि ही वे पत्र प्राप्त हुए थे। अब अभियोजन चलाने और उन्हें रिश्वत के अपराध से जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है जबकि वे पत्र दैनिक समाचार पत्रों में बहुत पहले प्रकाशित किए जा चुके थे। यह भी निवेदन किया गया कि पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के समक्ष चाली कार्यवाहियां भी इस कारण से अधिकारितारहित है कि वे धारा 121-क, धारा-124-क आदि के अधीन वाले अपराधों का विचारण करने के लिए आवश्यक नहीं है और इस कारण से भी उन्होंने कार्यपालक शासन के निवेदन पर ही मामले को लिया था, जिसे पटना के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय से पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में मामला अन्तरित करने का कोई प्राधिकार नहीं था। श्री जेठमलानी ने निवेदन किया कि यदि कार्यपालक शासन को अपनी मर्जी के न्यायाधीशों द्वारा मामलों को विनिश्चित करने की इजाजत दे दी गई तो विधिसम्मत शासन का सिद्धान्त ही विफल हो जाएगा।

8. विशेष इजाजत अर्जियों में श्री जेठमलानी ने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय और विशेष न्यायाधीश ने अभियुक्त व्यक्तियों को नये प्रतिभू या नकद प्रतिभूति देने की इजाजत न देकर गलती की। उन्होंने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय और विशेष न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की कि मजिस्ट्रेट का आदेश, जिसके द्वारा उन्हें धारा 167(2) के अधीन जमानत पर रिहा करने का निदेश दिया गया था, विशेष रूप से मामले का संज्ञान लिए जाने के बाद कालान्तर में समाप्त हो गया था।

अब सांविधानिक स्थिति सुस्थिर है कि तेज गति से विचारणाधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार के आयामों में से एक है। देखिए **हुसैनआरा खातून (I) बनाम बिहार राज्य**[1] (न्या० भगवती और न्या० कोशल के अनुसार) **कादरा पहाड़िया (I) बनाम बिहार राज्य**[2] (न्या० भगवती और न्या० सेन के अनुसार), **कादरा पहाड़िया (II) बनाम बिहार राज्य**[3] (न्या० भगवती और

---

[1] [1979] 5 एस० सी० आर० 169.

[2] ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 939.

[3] ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 1167.

न्या० एराडी के अनुसार), और **महाराष्ट्र राज्य बनाम चम्पा लाल पंजाजी शाह**[4] (न्या० चिन्नप्पा रेड्डी, न्या० सेन और न्या० बहरूल इस्लाम के अनुसार) विदेशी अधिकारिताओं में भी जहाँ युक्ति-युक्त समय के भीतर ऋजु विचारण का अधिकार एक सांविधानिक दृष्टि से संरक्षित अधिकार है, वहाँ उस अधिकार का उल्लंघन समुचित मामलों में दोषसिद्धि को अभिखण्डित करने के लिए या आगे कार्यवाहियां रोकने के लिये पर्याप्त माना गया है। **स्ट्रंक बनाम संयुक्त राज्य अमरीका**[5] और **बारकर बनाम विंगो**[6] इन दो मामलों का विनिश्चय संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट ने किया था और **बैल बनाम डायरेक्टर आफ पब्लिक प्रोसिक्यूशन, जमायिका**[7]—जमायिका का मामला, जिसका विनिश्चय प्रिवी कौंसिल ने किया था। यहाँ अनेक विचारणीय प्रश्न उठे हैं। क्या विलम्ब हुआ था ? कितना विलम्ब हुआ था—क्या विलम्ब मामले की प्रकृति, विधिक सेवाओं की उपलभ्यता और अन्य सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विलम्ब अपरिहार्य है ? क्या विलम्ब अयुक्तियुक्त था ? क्या विलम्ब का कोई अंश अभियोजन अभिकरण की स्वेच्छया से या उपेक्षा से किया गया था ? क्या विलम्ब का कोई अंश प्रतिरक्षा पक्ष की चालों से हुआ था ? क्या विलम्ब अभियोजन और प्रतिरक्षा अभिकरणों के नियंत्रण के बाहर के कारणों से हुआ था ? क्या अभियुक्तों के पास तेजी से विचारण के अपने अधिकार का प्राख्यान करने की योग्यता और अवसर था ? क्या अपनी प्रतिरक्षा में अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी ? अपनी प्रतिरक्षा के संचालन में प्रतिकूल प्रभाव की किसी संभावना के बावजूद क्या इतना लम्बा विलम्ब अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिये पर्याप्त था। इनमें से कुछ बातों पर **बारकर बनाम विंगो**[6] में विचार किया गया है। और भी अनेक प्रश्न उठ सकते हैं, जिनका हम फिलहाल तुरन्त अनुमान नहीं लगा सकते। यह प्रश्न कि क्या तेज विचारण का अधिकार जो अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अंग है, भंग हुआ है, अंततोगत्वा दाण्डिक न्याय के प्रशासन में ऋजुता का प्रश्न है, तो भी निष्पक्षतापूर्वक कार्यवाही करना नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का सार

[4] (1981) 3 एस० सी० सी० 610.
[5] 37 ला एडीशन, सेकेंड 56.
[6] 407 यू० एस० 514.
[7] 1985 (II) आल इंगलैंड ला रिपोर्ट्स 585.

है। एच० के० 1967 (1) ऑल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स 226 के निर्देश में और एक निष्पक्ष तथा युक्तियुक्त प्रक्रिया वह है, जो अनुच्छेद 21 में विधिद्वारा स्थापित प्रक्रिया पद में अनुध्यात है (मेनका गांधी)।

10 यहां हमारे सामने क्या है? पांच व्यक्तियों को प्रकटतः सीमा पार करने के प्रयास में भारत-नेपाल सीमा की तरफ एक जीप में जाते हुए देखा गया। सीमा रक्षी दल ने सोचा कि वे संदिग्ध व्यक्ति हैं। अपने नाम और अपने मां-बाप के नाम के बारे में पूछे गए प्रश्नों के जो उन्होंने उत्तर दिए, वे समाधानप्रद नहीं थे। उनमें से एक पुलिस अधिकारी के रूप में पहचाना गया, जिसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया था और जिसकी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निरोधादेश के सम्बन्ध में तलाशी थी। समकालीन इतिहास के प्रकाश में और अभियुक्तों के पास मिली दस्तावेजों के प्रकाश में, जिनमें से एक का उल्लेख हम अभी करेंगे, पुलिस दल को आशंका थी कि वे सीमा पार करके युद्ध छेड़ने आदि के अपराध करने के षडयन्त्र करने के अनुक्रम में नेपाल जा रहे हैं। सम्भव है उनकी आशंका सीमा पार करने के लिये उनकी रिश्वत देने से और भी मजबूत हो गई हो। वह पुलिस अधिकारी जिसे उन्होंने पकड़ा था, यद्यपि प्रत्यक्षतः पंजाबी था, पहले महाराष्ट्र राज्य में नौकरी करता था जबकि दूसरे कलकत्ता के थे। देश के विभिन्न भागों के अलग-अलग व्यक्ति, जिनका इसके सिवाय आपस में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था कि वे एक ही समुदाय के प्रतीत होते थे, देश की सीमा पार करने का एक साथ प्रयास कर रहे थे, इससे पुलिस को प्रकटतः देश में व्याप्त राजनीति की स्थिति के संदर्भ में सन्देह हो गया कि वे उस समुदाय के व्यक्तियों के एक समूह के हैं जो सरकार के खिलाफ अभियान चला रहे हैं। आप इसे चाहे आन्दोलन कह सकते हैं या युद्ध छेड़ना कह सकते हैं या आशंका जो उनके पास मिले पत्रों से और भी मजबूत हो गई होगी। हो सकता है कि इन परिस्थितियों के कारण आशंका से अधिक कुछ नहीं हो सकता था बल्कि पुलिस द्वारा अन्वेषण को न्यायोचित ठहराने के लिए वह आशंका पर्याप्त थी।

11. हम यहां विषयान्तर करना चाहेंगे और जेठमलानी के निवेदन पर विचार करना चाहेंगे कि राष्ट्रपति को सम्बोधित पत्र यह दर्शाता है कि सिमरनजीत सिंह मान उन लोगों के पुनर्वास में अपने आपको समर्पित

कराना चाहता था, जिन्हें सैनिक कार्यवाई के दौरान नुकसान हुआ था और वह पत्र सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का षड्यन्त्र का कभी भी साक्ष्य नहीं हो सकता। यह सही है कि उस लम्बे पत्र में यह वाक्य है "भविष्य में मैं उन लोगों के पुनर्वास के लिए अपने आपको समर्पित कर दूंगा जिन्हें सैनिक कार्यवाई के दौरान नुकसान हुआ है।" हमारे लिए यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इस पत्र में आग भड़काने के लिए पर्याप्त सामग्री है। हम पत्र में किए गए अन्य कथनों का उल्लेख करना नहीं चाहते। सम्भव है कि संवेदनशील लोगों के मन और कानों पर इन बेबाक कथनों का बहुत खतरनाक प्रभाव पड़े। एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होने के नाते और एक उच्च अधिकारी होने के नाते सिमरनजीत सिंह मान का अपनी पदच्युति के बाद कुछ लोगों की नजरों में एक हीरो और शहीद के रूप में उभरकर आना स्वाभाविक था। उसके कथनों पर उन्होंने उपदेशात्मक सच्चाई के रूप में और देववाणी के रूप में माना जिसके अनुसार उन्हें कर्म करना चाहिए। यदि वह पत्र राष्ट्रपति को सम्बोधित रहता और प्रकाशित न होता तो इससे कोई भी हानि न होती। किन्तु हालांकि वह पत्र राष्ट्रपति को सम्बोधित था, फिर भी वह एक खुला पत्र कहा जाता है जो व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए था। यह ठीक है कि वह सम्पूर्ण पत्र दैनिक समाचार-पत्र में प्रकाशित किया जा चुका था और उसकी एक प्रति उस समय अभियुक्तों के पास थी, जब उन्हें रोका गया था और उनकी तलाशी ली गई थी। हम यह नहीं जानते कि क्या उनमें से कोई अभियुक्त प्रचार-प्रसार के लिए जिम्मेदार है और क्या वह षड्यन्त्र के अनुसरण में था। संभव है कि सिमरनजीत सिंह मान का तात्पर्य कोई हानि पहुँचाना न हो और पत्र की अंतर्वस्तु एक कड़वाहट के प्रबल उद्गारों के सिवाय कुछ न हो और एक कट्टरपंथी की भाषा में दुखी किन्तु सच्चा था। इसके विपरीत, यह संभव है कि पत्र का उद्देश्य आस्था का दस्तावेज तैयार करना था और उसका इसी रूप में इस्तेमाल किया गया था। ये सब बातें विचारण के समय साक्ष्य में आनी चाहिए।

12. अब हम पुनः उसी बात पर आते हैं जो पहले कह रहे थे। यदि पुलिस अधिकारियों के पास किसी षड्यंत्र की आशंका के लिए कोई औचित्य था तो पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र, कलकत्ता और देश के अन्य भागों में षड्यंत्र के बारे में अन्वेषण की आवश्यकता को जन्म देने के लिए

देश में अन्यत्र षड्यंत्र के प्रभावों की आशंका करना भी उसके लिए न्यायोचित होता। यदि अन्वेषण अभिकरण को युद्ध छेड़ने के षड्यंत्र की आशंका थी तो जहां कहीं भी उसे साक्ष्य मिले, उसकी तुलना करना उसका प्रथम कर्तव्य था और उसे पत्रों को पढ़ाकर और पत्रों के प्राप्तिकर्ताओं की परीक्षा करके ही संतुष्ट नहीं होना था। यह कहना भी सही नहीं है कि युद्ध छेड़ने का पक्षकथन पूरी तरह भारत के राष्ट्रपति को संबोधित पत्रों पर आधारित है। अतः अन्वेषण अभिकरण के लिए इतना ही आवश्यक था कि वह पत्रों की प्राप्तिकर्ताओं की परीक्षा करता। वे पत्र केवल साक्ष्य की मदें हैं न कि सम्पूर्ण साक्ष्य।

13. बिहार राज्य की ओर से फाइल किए गए शपथ-पत्रों में से और अपने समक्ष पेश किए गए अभिलेखों से हमारा निष्कर्ष है कि अन्वेषण अभिकरण ने कोसबानी (पूर्णिया) में ही जांच नहीं की थी बल्कि दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और पंजाब, महाराष्ट्र तथा नेपाल में भी की थी। तथ्यों का परिशीलन और उन्हें एक साथ जोड़ना तथा उस समय एक क्रमबद्ध कार्यवाही करने की योजना जब सारे तथ्य ज्ञात हों, एक चीज है और यह करना बिलकुल दूसरी चीज है जब तथ्यों का पता लगाया जाए या उन्हें ढूंढ निकाला जाए, विशेष रूप से संदिग्ध षड्यंत्रों के मामलों में जबकि संवेदनशील और राजनीतिक प्रकृति की जटिलताओं और अड़चनों से होकर गुजरना पड़ता है, जिनमें अन्वेषण अभिकरण को बड़े परिश्रम से और सीमाओं के अंदर कदम उठाने होते हैं, अतः अन्वेषण अभिकरण पर धीमी प्रगति का दोषारोपण नहीं किया जा सकता जो उन्होंने इस प्रकार के मामले का अन्वेषण करने में की है। यह सही है कि बहुत लम्बे अरसे तक अन्वेषण बिलकुल निष्क्रिय प्रतीत होता है, किन्तु इस निष्क्रियता में हमें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता। हमें यह ध्यान रखना होगा कि इस मामले का ही अन्वेषण अन्वेषण अभिकरण का काम नहीं था, अन्य मामले और काम भी रहे होंगे। हमारे देश में पुलिस अपराधों के बारे में छानबीन करने की ही प्रभारी नहीं है, अपितु विधि और व्यवस्था का प्रभार भी उनके पास है। हमें देश के विभिन्न भागों में व्याप्त असाधारण विधि और व्यवस्था की स्थिति को ध्यान में रखना होगा, जिसके कारण पुलिस पर बहुत बड़ा अतिरिक्त बोझा आ गया है। हमारा समाधान हो गया है कि ऐसा विलम्ब जो इस मामले के अन्वेषण में हुआ है, अकारण नहीं था और यह कि यह

मामले की प्रकृति के फलस्वरूप था और देश में व्याप्त सामान्य स्थिति के फलस्वरूप था। हम सरसरी तौर पर यह भी कहना चाहेंगे कि प्रस्तुत मामले के अभियुक्त उन व्यक्तियों के प्रवर्ग में नहीं आते जो स्वयं अपनी देखरेख करने में दक्ष नहीं हैं। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो जब कभी और जहां कहीं आवश्यक हो, अपने अधिकारों पर ज़ोर दे सकते हैं और जिन्होंने वस्तुतः आवश्यकता पड़ने पर अपने अधिकारों का प्राख्यान किया है। जैसाकि समय-समय पर मजिस्ट्रेट और विशेष न्यायाधीश के समक्ष फाइल की गई अनेक अर्जियों से प्रकट है। हम यह कहना नहीं चाहते कि अभियुक्तों को अपने अधिकारों पर ज़ोर देने की उनकी योग्यता के कारण दण्डित किया जाए और विलम्ब के खिलाफ उनकी आवाज़ दबा दी जाए किन्तु जैसा कि बारकर बनाम विंगो[1] में न्या० पोवैल तथा बैल बनाम डी० पी० पी० ऑफ जमायिका[2] में लार्ड टैम्पलमैन ने उल्लेख किया था, कोई व्यक्ति अपने अधिकार से वंचित हुआ है या नहीं, यह अवधारण करने के लिए जिन बातों पर विचार किया जाना चाहिए, उनमें से एक अपने अधिकारों का प्राख्यान करने का अभियुक्त का उत्तरदायित्व है। कहा गया था—

> "क्या और कैसे कोई प्रतिवादी अपने अधिकारों का प्राख्यान करता है, इसका घनिष्ठ सम्बन्ध उन अन्य बातों से है, जिनका हमने उल्लेख किया है। उसके प्रयास की प्रबलता विलम्ब की लम्बाई से प्रभावित होगी। कुछ सीमा तक विलम्ब के कारण से और अधिकांशतः वैयक्तिक विद्वेष के कारण जो हमेशा आसानी से नहीं पहचाना जाता है, जो वह अनुभव करता है। प्रतिवादी जितना अधिक अपने अधिकार से वंचित होगा, उतना ही प्रतिवाद करना अधिक संभाव्य है।"

हमारा निष्कर्ष है कि वर्तमान रिट याचिकाओं को फाइल करने तक अभियुक्तों ने विलम्ब के बारे में कोई गम्भीर आपत्ति नहीं की थी। हम यह देखते हैं कि आरोप-पत्र फाइल किए जाने के बाद कम से कम दो मौकों पर अभियोजन अभिकरण ने बहुत तत्परतापूर्वक मामले का निपटारा करने की चिन्ता व्यक्त की है। विद्वान् विशेष न्यायाधीश के आदेश-पत्र

[1] 407 यू० एस० 514,

[2] 1985 (II) आल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स

से हमें यह दिखाई पड़ता है कि 19 दिसम्बर, 1985 को लोक अभियोजक ने उनके समक्ष अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की थी क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। आदेश-पत्र से हमें पता चलता है कि 9 जनवरी, 1986 को लोक अभियोजक ने एक दूसरी अर्जी फाइल करके पुनः प्रार्थना की कि मामले का तेजी से निपटारा करने के लिए जल्दी ही तारीख नियत की जाए। मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम यह नहीं समझते कि अन्वेषण में और मामले के विचारण में इतना अधिक विलम्ब हुआ है कि तेज विचारण के अभियुक्त के अधिकार के अतिलंघन के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखण्डित कर दिया जाए। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का एक अंग है। हम समझते हैं कि प्रस्तुत मामले में हमारा यही निदेश अपेक्षित है कि विचारण जल्दी आरम्भ किया जाए और रोजाना हो।

14. श्री जेठमलानी ने बड़े परिश्रम पूर्वक दलील दी कि धारा 165-क के अलावा आरोप-पत्र में वर्णित किसी भी अपराध के लिए आरोप विरचित करने के लिए आवश्यक कोई भी सामग्री नहीं थी। इस प्रश्न पर हम कोई राय जाहिर नहीं करना चाहते। यह ऐसा विषय नहीं है, जिसका विवेचन संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई याचिका में किया जाए। हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि यह न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए कि क्या आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य है या नहीं, यह न्यायालय अपने आपको मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में नहीं बदल सकता।

15. दो अन्य प्रश्न, एक धारा 121, 121-क आदि के अधीन अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने की विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता के संबंध में है और दूसरा यह है कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क और 165-ग के अधीन वाले अपराधों और धारा 121 और धारा 121-क आदि के अधीन वाले अपराधों में क्या संबंध है, वे ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर पटना उच्च न्यायालय को विनिश्चय करना है। अतः हम इन प्रश्नों को उच्च न्यायालय के विनिश्चय के लिए छोड़ते हैं।

16. हमारे समक्ष एक दूसरा प्रश्न उठाया गया था और वह यह था कि कार्यपालक सरकार ने वर्तमान मामले का विचारण करने के लिए पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश को चुना था। निवेदन किया गया कि यदि अभियोजन को मामले का विचारण करने के लिए उसकी मर्जी का न्यायाधीश दे दिया जाए तो इससे विधिसम्मत शासन के सिद्धांत और विधि के समक्ष समता के सिद्धांत का हनन होता है, इतना कुछ भयंकर नहीं हुआ जितना श्री जेठमलानी ने बताया है। वास्तव में हुआ यह कि विशेष न्यायाधीश का न्यायालय दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन पूर्णिया खण्ड के लिए बनाया गया था और श्री विदेश्वरी प्रसाद वर्मा, अपर जिला न्यायाधीश, पश्चिम चम्पारण, जिन्हें भागलपुर के अपर जिला न्यायाधीश के रूप में स्थानान्तरण के आदेश थे, विशेष न्यायाधीश के रूप में पदाभिहित किया गया था। यह जोगबानी पुलिस स्टेशन सं० 110/54 वाला मामला कोष्ठकों में अंकित किया गया था क्योंकि यह प्रकटतः ऐसा मामला था, जिसका विचारण दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन पूर्णिया में होना था। पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाया गया था क्योंकि यह सोचा गया था कि अभियुक्तों के लिए और सुरक्षा के हित में यह सुविधाजनक होगा कि मामले का विचारण भागलपुर में ही किया जाए, जहां अभियुक्त कारागार में थे, न कि मामले का विचारण पटना में किया जाए जहां पर अभियुक्तों को हर सुनवाई पर भागलपुर से ले जाना पड़ता। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, अभियुक्तों को सुरक्षा के हित में भागलपुर की कारागार में रखा गया था। हमें दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाने में और उस न्यायालय में पीठासीन होने के लिए किसी न्यायाधीश के पदाभिधान में कोई दुर्भावना दिखाई नहीं पड़ती।

17. श्री जेठमलानी ने इस बात पर जोर दिया कि सिमरनजीत सिंह मान के अलावा अन्य अभियुक्तों के मामले में ऐसी कोई बात नहीं है, जो उन्हें धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों से जोड़ती हो। उन्होंने कहा कि उन्होंने उनमें से एक भी पत्र नहीं लिखा था जो तलाशी के दौरान मिले थे। हम केवल यही राय प्रकट करना चाहते हैं कि अकेले विद्रोहात्मक सामग्री का लेखन किसी भी अपराध का सार नहीं होता। राजद्रोहात्मक सामग्री का वितरण या परिचालन भी मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों के अनुसार पर्याप्त हो सकता है। षड्यंत्र के मामले में मूक के रूप में काम लेना भी कभी-कभी काफी होता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि कोई व्यक्ति आदि से अंत तक किसी षड्यंत्र में भागीदार हो। षड्यंत्रकारी षड्यंत्र के अनुक्रम में प्रक्रम से प्रक्रम पर आकर गायब भी हो सकते हैं। हम विद्वान् काउन्सेल के निवेदन के बारे में और अधिक नहीं कहना चाहते। क्या आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख पर इस समय उपलब्ध साक्ष्य विचारण न्यायालय का विषय है, हमारा नहीं, हम इस पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं।

18. बाद में जो घटनाएं घटी हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए हम यह समझते हैं कि हम जो समुचित निदेश दे सकते हैं, वह यह है कि पटना उच्च न्यायालय उसके समक्ष की दाण्डिक पुनरीक्षण अर्जी का निपटारा तीन या चार सप्ताह के भीतर जितना जल्दी हो सके, कर दे। जबकि पुनरीक्षण अर्जी का परिणाम चाहे कुछ भी हो उच्च न्यायालय को विशेष न्यायाधीश या अन्य न्यायाधीश को, जिसे मामले का विचारण करना हो अथवा किसी भी मामले का तत्परतापूर्वक विचारण करने के लिए निदेश देना चाहिए और मामले या मामलों का विचारण करने के लिए तथा रोजाना विचारण की कार्यवाही करने के लिए एक निकट तारीख नियत करनी चाहिए।

19. इसके बाद हम अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई दो अर्जियों पर आते हैं। हम यह पुनः कहना चाहेंगे कि पांच अभियुक्तों को 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा न करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167 (2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया गया था। स्मरण रहे कि पुरानी दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 167 (2) के परन्तुक का समविषयक कोई उपबंध नहीं था। यह परन्तुक 1973 की नई संहिता में पहली बार शामिल किया गया था। परन्तुक को पुरःस्थापित करने का कारण उद्देश्यों और कारणों के कथन में इस प्रकार बताया गया था—

"इस समय धारा 167 मजिस्ट्रेट को अभियोजनाधीन किसी अभियुक्त का हवालाती और निरोध कुल मिलाकर 15 दिन से अनधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत करने के लिए मजिस्ट्रेट को समर्थ बनाती है। शिकायत की जाती है कि इस उपबंध का पालन

में कम, भंग में अधिक उपयोग होता है और पुलिस वास्तव में अन्वेषण में बहुत लम्बा समय लेती है। संदिग्ध वैधता की परिपाटी बहुत बढ़ गई है, जिसके द्वारा पुलिस प्रारम्भिक या अपूर्ण आरोप-पत्र फाइल करती है और धारा 344 के अधीन प्रतिप्रेषण के लिए न्यायालय में समावेदन करती है। इस धारा का उद्देश्य अन्वेषण के प्रक्रम पर लागू होना नहीं है जबकि कुछ मामलों में अन्वेषण में विलम्ब की गलती से हो सकता है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे भी असली मामले हो सकते हैं, जिनमें 15 दिन में अन्वेषण पूरा करना साध्य न हो। आयोग ने सिफारिश की थी कि यह अवधि 60 दिन कर दी जाए किन्तु यदि ऐसा किया जाता है तो 60 दिन की अवधि एक नियम बन जाएगी और इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि उल्लिखित अवधि परिपाटी के रूप में नहीं चलती रहेगी। विचार किया गया है कि इस समस्या का सबसे समाधानप्रद हल 15 दिन से अधिक निरोध की अवधि बढ़ाना होगा जब कभी उसका समाधान हो जाए कि ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त आधार है।" (वर्तमान संहिता की धारा 304 की तत्स्थानी पुरानी संहिता की धारा 344)।

20. नए परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि अन्वेषण अभिकरण 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं कर पाता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार है। अन्वेषण अभिकरण के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को कानूनी तौर पर संहिता के अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए इस अध्याय के अधीन रिहा किया समझा जाएगा। ऐसा स्वयं धारा 167(2) के परन्तुक में उपबंधित है। पहले तो इसका अर्थ यह है कि बंधपत्र और प्रतिभुओं विषयक उपबंध लागू होते हैं। धारा 441 बंधपत्र पर छोड़े जाने के लिए आदिष्ट व्यक्तियों द्वारा प्रतिभुओं सहित या के बिना बंधपत्र के निष्पादन के लिए उपबंध करती है। बंधपत्र विषयक उपबंधों में से एक धारा 445 है जो न्यायालय को प्रतिभुओं सहित या के बिना बंधपत्र के निष्पादित करने के लिए अपेक्षित रीति द्वारा बंधपत्र के निष्पादन के बदले धनराशि स्वीकार करने में न्यायालय को समर्थ बनाती है। यदि बंधपत्र निष्पादित कर दिया जाता है (या उनके लिए निक्षेप

स्वीकार कर लिया जाता है) तो अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर करने वाले न्यायालय से उस जेल के भारसाधक अधिकारी को रिहाई का आदेश जारी किया जाए, जिसमें ऐसा अभियुक्त व्यक्ति रखा गया है। सिविल प्रक्रिया संहिता के शब्दों में धारा 441 और 442 अभियुक्त व्यक्तियों के जमानत पर छोड़ने के आदेश के निष्पादन के उपबंधों की प्रकृति की है। महत्वपूर्ण यह है कि ऐसी कोई काल-सीमा नहीं है, जिसके भीतर जमानत पर छोड़ने के आदेश के बाद उसे निष्पादित किया जाए। प्रायः जमानत पर रिहा करने के आदेश के तुरन्त बाद बंधपत्र देना अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। ऐसा प्रायः अभियुक्त व्यक्तियों की गरीबी के कारण होता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि विभिन्न कारणों से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पेश किए गए प्रतिभू न्यायालय को स्वीकार्य न हों और ऐसी हालत में न्यायालय में नए प्रतिभू पेश करने पड़ें। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा एकदम जमानत न दे पाने के कारण उन्हें जमानत पर छोड़ने के आदेश की प्रसुविधा से वंचित नहीं किया जाएगा। जमानत पर छोड़ने के आदेश तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक की धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन आदेश न किया जाए। ये दोनों उपबंध उस मजिस्ट्रेट को जिसने अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा है या सेशन न्यायालय को या उच्च न्यायालय को जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति को गिरफ्तार का निदेश देने में और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द करने में समर्थ बनाते हैं। ये दो उपबंध उस चीज के बारे में हैं, जिसे हम आम बोलचाल की भाषा में जमानत रद्द करना कहते हैं। चूंकि धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर छोड़ना अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ना समझा जाता है, इसलिए धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़ने का आदेश धारा 437(5) और 439(2) के उपबंधों के भी अधीन है और इनमें से किसी भी उपबंध के अधीन आदेश करके उसे निर्वाचित किया जा सकता है। ऐसा हो सकता है कि जिस व्यक्ति को प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया है, वह बाद में प्रतिभू बना रहना न चाहे। धारा 444 ऐसे व्यक्ति को किसी भी समय पूर्णतया या जहां तक उस प्रतिभू से संबंधित है, बंधपत्र को प्रभावोन्मुक्त किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट से आवेदन करने में समर्थ बनाती है। ऐसा आवेदन किए जाने पर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि वह यह निदेश देते हुए गिरफ्तारी का

वारंट जारी करे कि ऐसे छोड़े गए व्यक्ति को उसके समक्ष लाया जाए। ऐसे व्यक्ति के हाजिर होने पर या उसके स्वयं अभ्यर्पण पर मजिस्ट्रेट उस बंधपत्र को या तो पूरी तरह या वहां तक जहां तक वह प्रतिभू से संबंधित प्रभावोन्मुक्त किए जाने का निदेश दे और ऐसे व्यक्ति से दूसरा पर्याप्त प्रतिभू खोजने के लिए कहे और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह उसे जेल के सुपुर्द कर सकेगा (धारा 444)। बंधपत्र के उन्मोचन पर प्रतिभू का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और अभियुक्त व्यक्ति उसी स्थिति में आ जाता है, जिसमें वह बंधपत्र के निष्पादन से ठीक पहले था, जमानत पर छोड़ने का आदेश समाप्त नहीं होता और प्रतिभू के उन्मोचन से तथा नया प्रतिभू सीधे पेश करने में अभियुक्त की असमर्थता से विफल नहीं होता है। अभियुक्त व्यक्ति एक नया स्वीकार्य प्रतिभू पेश करके जमानत पर छोड़े जाने के आदेश का फायदा उठा सकता है। बिहार राज्य के विद्वान् काउन्सेल का तर्क था कि जमानत पर छोड़ने का आदेश अभियुक्त के दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) के अधीन अभिरक्षा में वापस भेजे जाने पर समाप्त हो जाता है। इस निवेदन में कोई भी सार नहीं है। धारा 309(2) "यदि अभियुक्त अभिरक्षा में है तो उसे प्रतिप्रेषित करने में" न्यायालय को समर्थ बनाती है। यह न्यायालय को उस समय अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने में सशक्त नहीं करती जब वह जमानत पर है। यह धारा न्यायालय को जमानत रद्द करने में समर्थ नहीं बनाती। ऐसा धारा 437(5) और 439(2) के अधी नहीं किया जा सकता है। जब किसी अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर की जाती है, चाहे धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन या अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन तो जिस एकमात्र ढंग से जमानत रद्द की जा सकती है, वह है धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन कार्यवाही करना।

21. **नटबर परिडा** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] में न्यायालय ने धारा 167 (2) के परन्तुक की अपेक्षा के आज्ञापक स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया था कि यदि अन्वेषण साठ दिन के भीतर पूरा नहीं होता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार है। न्यायालय ने कहा था–

> "किन्तु तब परन्तुक (क) में विधानमंडल का समादेश यह है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और उसे

[1] [197]3 उम. नि. प. 2184 = ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1465

> 60 दिन से अधिक की अवधि के लिए निरुद्ध नहीं रखा जा सकता चाहे अन्वेषण तब भी चल रहा हो । अन्तर्राज्यिक गिरोहों या वैसे ही लोगों द्वारा आपराधिक षड्यंत्रों, हत्याओं, डकैतियों, लूटों का गम्भीर मामलों में पुलिस के लिए ऐसी परिस्थितियों में जो हमारे देश के विभिन्न भागों में विद्यमान हैं, 60 दिन की अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव नहीं भी हो सकता है । फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि विधानमंडल का आशय न्यायालय को विवेकाधिकार देने का नहीं है और उस (न्यायालय) के लिए अभियुक्त को जमानत पर छोड़ना आज्ञापक बनाना है । निस्संदेह परन्तुक (क) में यह उपबंध किया गया है कि धारा 167 के अधीन जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन और उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए छोड़ा गया समझा जाएगा । यह बात जमानत पर उसे छोड़ने वाले न्यायालय को यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता हो तो यह निदेश करने के लिए सशक्त कर सकती है कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए और ऐसी अभिरक्षा में रखा जाए जैसा कि अध्याय 33 में आने वाली धारा 437 की उपधारा (5) में उपबंध किया गया है । यह भी स्पष्ट है कि संज्ञान करने के पश्चात् प्रतिप्रेषण की शक्ति का प्रयोग नई संहिता की धारा 309 के अधीन किया जाता है । लेकिन यदि 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव न हो तो गम्भीर और भयंकर प्रकार के अपराधों में भी अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार होगा । ऐसी विधि "अपराधियों के लिए स्वर्ग" हो सकती है किन्तु निश्चित रूप से ऐसा नहीं होगा जैसा कि कभी-कभी न्यायालयों के कारण ऐसा समझ लिया जाता है । यदि ऐसा होगा तो वह विधानमंडल के समादेश के अधीन होगा ।"

बशीर बनाम हरियाणा राज्य[1] वाले मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या कोई व्यक्ति जो धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़ा जा चुका है, बाद में मात्र इसलिए अभिरक्षा में भेजा जा सकता है कि चालान बाद में फाइल किया गया था । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि उसे इस प्रकार अभिरक्षा में नहीं भेजा जा सकता । किन्तु यदि उस

[1][1978] 4 उम. नि. प. 219 = [1977] 4 एस.सी.सी. 410

न्यायालय का यह निष्कर्ष हो कि चालान फाइल किए जाने के बाद विश्वास करने के लिए यह पर्याप्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करने तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है तो धारा 437(5) के अधीन जमानत रद्द की जा सकती है। न्यायालय ने कहा था–

"धारा 167 की उपधारा (2) और उसके परन्तुक (क) में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्ति के निरोध को साठ दिनों से अधिक की कुल कालावधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा। साठ दिनों की समाप्ति के बाद अभियुक्त व्यक्ति को उस दशा में जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत दे देता है। यहाँ तक कोई भी विवाद नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार से छोड़े गए व्यक्ति की स्थिति तब क्या होगी जबकि पुलिस बाद में चालान फाइल करती है।"

"धारा 437 की उपधारा (5) महत्वपूर्ण है। उसमें यह उपबंध किया गया है कि ऐसा कोई न्यायालय जिसने उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया है, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, वह निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाए और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द कर दिया जाए। चूँकि धारा 167 (2) के अधीन, ऐसे व्यक्ति के बारे में, जिसको इस आधार पर छोड़ा गया है कि साठ दिनों से अधिक की कालावधि तक अभिरक्षा में रहा है, यह समझा जाना चाहिए कि उसे धारा 437 (1) या (2) के अधीन छोड़ा गया है। धारा 437 (5) के अधीन न्यायालय यह निर्दिष्ट करने के लिए सक्षम है कि इस प्रकार से छोड़े गए व्यक्ति को उस दशा में गिरफ्तार किया जा सकता है, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है। यदि न्यायालय ऐसा आवश्यक समझे, तो जमानत रद्द करने संबंधी उसकी शक्ति, उन मामलों में परिरक्षित रहती है जिनमें किसी व्यक्ति को धारा 437 (1) या (2) के अधीन जमानत पर छोड़ दिया गया हो और यह उपबंध ऐसे व्यक्ति को लागू होते हैं जिसे धारा 167 (2) के अधीन छोड़ दिया गया

है। धारा 437 (2) के अधीन जबकि ऐसा व्यक्ति जांच होने तक इस आधार पर छोड़ दिया जाता है कि यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है कि उसने अजमानतीय अपराध किया था, तो उसे उच्च न्यायालय द्वारा अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जा सकेगा जिसने उसे जमानत पर छोड़ा था, यदि उसका समाधान हो गया है कि जांच समाप्त होने के बाद ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है। चूंकि धारा 437 (1), (2) और (5) के उपबंध ऐसे व्यक्ति को लागू होते हैं, जिसको धारा 167 (2) के अधीन छोड़ दिया गया है, इसलिए मात्र यह तथ्य कि उसके छोड़े जाने के बाद चालान फाइल किया गया है, उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के वास्ते पर्याप्त आधार नहीं है। इस मामले में जमानत रद्द कर दी गई और अपीलार्थियों को गिरफ्तार करने तथा उन्हें अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने का आदेश इस आधार पर किया गया था कि बाद में आरोप-पत्र फाइल कर दिया गया था और यह कि धारा 167 (2) के अधीन अपीलार्थियों को छोड़े जाने के लिए निर्दिष्ट करने के पूर्व सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय ने जमानत संबंधी उनके पिटीशनों को गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया था। यह तथ्य कि धारा 167 (2) के अधीन आदेश पारित किये जाने के पूर्व अभियुक्तों के जमानत संबंधी पिटीशन गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिए गए थे, धारा 437 (5) के अधीन कार्यवाही करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है। और न ही यह विधिमान्य आधार है कि अपीलार्थियों के छोड़े जाने के बाद पुलिस ने चालान फाइल किया था। अभियुक्तों को गिरफ्तार करने और उन्हें अभिरक्षा में सुपुर्द करने के लिए निर्देश देने के पूर्व न्यायालय को धारा 437 (5) के अधीन ऐसा करना आवश्यक समझना चाहिए। यह ऐसे न्यायालय द्वारा, जोकि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है किया जा सकता है कि चालान फाइल किए जाने के बाद पर्याप्त कारण है, कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया था और यह कि यह आवश्यक है कि उसे गिरफ्तार किया जाए और

अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जाए। वह उसे गिरफ्तार करने और अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के लिए भी इन आधारों पर आदेश दे सकेगा जैसे कि साक्ष्य में हस्तक्षेप करना या यह कि उसको छोड़ना न्याय के हित में नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी चाहिए कि उसके बारे में यह समझा गया है कि उसे धारा 437(1) और (2) के अधीन छोड़ा गया है।"

तलब हाजी हुसैन बनाम मोंडकर[1] जो पुरानी संहिता के अधीन उत्पन्न मामला था, न्यायालय ने उन आधारों पर विचार किया था, जिन पर जमानत रद्द की जा सकती है। न्यायालय ने कहा था—

"न्याय के उद्देश्यों की ऋजु विचारण की निर्विघ्न प्रवृत्ति से अधिक महत्वपूर्ण कोई अपेक्षा नहीं हो सकती ; और इसी ऋजु विचारण के चालू रखने के लिए अभियोजन पक्ष उन मामलों में उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का सहारा लेना चाहता है, जिनमें यह अभिकथन किया जाए कि अभियुक्त व्यक्ति, या तो कूट साक्ष्य प्रेरित करके या साक्षियों को तंग करके ऋजु विचारण की सुचारु प्रगति में बाधा डाल रहे हैं। इसी प्रकार यदि अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाए, जमानत का उल्लंघन करके विचारण से बचने के लिए विदेश भागने का प्रयास करता है, तो पुनः एक ऐसा मामला होगा जिसमें अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग करना न्यायोचित होगा ताकि अभियुक्त ऋजु विचारण में पेश होने के लिए मजबूर किया जा सके और वह इस तथ्य का लाभ उठाकर कि उसे जमानत पर छोड़ दिया गया है, किसी दूसरे देश में फरार होकर उसके परिणामों से न बच सके। दूसरे शब्दों में, यदि जमानत पर छोड़े जाने के बाद अभियुक्त व्यक्ति का आचरण स्वयं ऋजु विचारण की प्रगति में बाधक बन जाता है और यदि ऐसा कोई दूसरा उपचार नहीं है जो अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ कारगर ढंग से इस्तेमाल किया जा सके तो ऐसे मामले में उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का सहारा लेना विधिसम्मत होगा। अजमानतीय अपराधों के संबंध में ऐसी शक्ति का सहारा लेना आवश्यक नहीं है क्योंकि धारा 497 (5) में ऐसे मामलों का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख है।"

---

[1] ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 376.

22. हमारे विवेचन और निर्णयज विधि का सारांश इस प्रकार है–

"धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन दिया गया जमानत पर छोड़ने का आदेश समय बीतने पर, आरोप-पत्र फाइल करने से धारा 309 (2) के अधीन अभिरक्षा में भेजने से विफल नहीं होता। फिर भी, जमानत पर छोड़ने का आदेश धारा 437 (5) या धारा 439 (2) के अधीन रद्द किया जा सकता है। आमतौर पर जमानत को रद्द करने के आधार मोटे तौर पर ये है ; न्याय के प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप का प्रयास, अथवा न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास अथवा उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग। न्याय के सम्यक् अनुक्रम में साक्षियों को परेशान करके या कूट साक्ष्य प्रेरित करके, अन्वेषण में हस्तक्षेप करके साक्ष्य आदि का वर्जन करके या उसे गायब करके हस्तक्षेप किया जा सकता है। न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास, देश को छोड़कर या भूगत होकर या अन्यथा अपने आपको प्रतिभुओं की पहुंच से बाहर करके किया जा सकता है। वह भी इसी प्रकार की या अन्य अविधिपूर्ण कार्यवाहियों में भाग लेकर दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर सकता है। जहां 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर की गई है, वहां आरोप-पत्र फाइल करके दोष को दूर करने के बाद अभियोजन-पक्ष इस आधार पर जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है। अंतिम वर्णित स्थिति में वस्तुतः बहुत दृढ़ आधार होने चाहिए।

23. प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय ने और उच्च न्यायालय का अनुसरण करते हुए विशेष न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जमानत पर छोड़ने का आदेश आरोप-पत्र फाइल करने के बारे में समय बीतने के साथ-साथ निष्प्रभाव हो गया था। हम यह बता चुके हैं कि यह मत सही नहीं है। अब प्रश्न यह है कि समुचित आदेश क्या किया जाए ? जमानत पर छोड़ने का आदेश गुणागुण पर किया गया आदेश नहीं था बल्कि व्यतिक्रम पर दिया गया आदेश कह सकते हैं, जो एक ऐसा आदेश होता है जिसका दोष ठीक करने के बाद विशेष कारणों से परिशोधन किया जा सकता है। यह आदेश बहुत पहले किया गया था किन्तु किसी न

किसी कारण अभियुक्त अनेक महीनों तक उस आदेश का फायदा नहीं उठा सका। संभवतः उसी कारण अभियोजन अभिकरण ने इस मामले में पैरवी नहीं की और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने यह मान लिया कि वह आदेश आरोप-पत्र फाइल करने से निष्प्रभाव हो गया है। प्रश्न यह है कि क्या अब हमें इस मामले को उच्च न्यायालय के पास भेजना चाहिए ताकि वह अभियोजन-पक्ष को जमानत रद्द करने के लिए उस न्यायालय में समावेदन करने का अवसर दे सके। सम्पूर्ण परिस्थितियों को जमानत का आरम्भिक आदेश किए जाने के बाद बहुत लम्बा समय बीतना, परिणामस्वरूप परिस्थितियों और स्थिति में परिवर्तन, तथा इन निदेशों को जो हमने मामले का तेजी से विचारण करने के लिए अब दिए हैं, ध्यान में रखते हुए हम नहीं समझते कि हम इस प्रक्रम पर इन मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके न्यायोचित कार्रवाई करेंगे। अतः विशेष इजाजत अर्जियां खारिज की जाती हैं।

क०   विशेष इजाजत अर्जियाँ खारिज की गईं।

———